ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। **शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान**

१ 12 03 1987 पुष्प 56 महर्षि विश्वामित्र का राम लक्ष्मण द्वारा धनुर्याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी मे उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है वे परमपिता परमात्मा अनन्त हैं। वह यज्ञोमयी स्वरूप है और संसारकी कोई वस्तु ऐसी नहीं है जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हो, वह सर्वज्ञ है। कोई भी पर्वतों की गुफा ऐसी नहीं हैं, जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हो, वह सर्वज्ञता में विद्यमान है। हमारा वेदमन्त्र यह उच्चारण कर रहा है कि हम उस उस परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें और उसकी अनन्तमयी महिमा के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्त और सदैव मानव जीवन में रत्त रहने वाला है, जिसके ऊपर मानव सृष्टि के प्रारम्भ होने से वर्तमान के काल तक उसके ऊपर अनुसन्धान करता रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा। क्योंकि परमपिता परमात्मा अनन्त है और उसके ज्ञज्ञन और विज्ञान की उड़ानें मानव के मस्तिष्क में सदैव रत्त रहती हैं। तो इसीलिए उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाते हुए अपने मानव जीवन को ऊंचा बनाना चाहिए क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक और आध्यात्मिकवेत्ता भी हुए हैं परन्तु उसकी महिमा का वर्णन करते हुए अन्त में मौन हो गये। आज का हमारा वेदमन्त्र कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए, अपने को ऊंचा बनाए क्योंकि जितना भी मानव संसार में क्रिया कलाप करता है चाहे वह भौतिक रूप में हो, चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञान में ले जाने वाला हो, नाना प्रकार के जो अनुष्ठान हैं उन सर्वज्ञ अनुष्ठानों का एक ही अभिप्राय रहता है कि मेरा कल्याण हो जाएं और में प्रकाश के मार्ग में चला जाऊं, अन्धकार मेरे समीप न आ जाए। परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ से ही यह क्रिया कलाप मानवीय मस्तिष्कों में सदैव पनपता रहा है और विचार करते

रहे हैं कि हमारा जीवन अन्धकार में न चला जाए।

ऋषियों ने एक ही वाक्य कहा कि जो समाधिष्ट होते हैं या संसार की ऊर्ध्वा में गति करने लगते हैं उनका एक ही मन्तव्य होता है कि हमें आनन्द की, प्रकाश की प्राप्ति हो जाए और अन्धकार हमारे समीप न आये। हम सदैव प्रकाश में रत्त रह करके उस परमपिता परमात्मा के ज्ञानमयी विज्ञान जगत् को जानते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे यहाँ, परम्परागतों से होता रहा है। हमारे एक याग का नाम है जिसे हम अश्वमेध याग कहते हैं परन्तु एक धनुर्याग होता है। धनुर्याग का अभिप्राय यह है कि अस्त्रों शस्त्रों की शिक्षा में हम परणित हो जाएं, हम यागों मे परणित हो करके अपने जीवन को सुगन्धित बनाए, क्योंकि यह भी मानव के मस्तिष्क में सदैव आता रहा है कि जितने भी धनर्याग हैं जैसे कि हमारे यहाँ महामुनि विश्वामित्र महाराज हुए। विश्वामित्र मुनि महाराज इस धनुर्याग में बड़े पारायण थे और धनुर्याग के ऊपर बड़ा उनका अध्ययन रहा। जिस स्थली पर वह विद्यमान होते थे वही कुछ न कुछ उनका स्वाभाविक क्रिया कलाप धनुर्याग के सम्बन्ध में रहा परन्तु वह काल हमें स्मरण आ रहा है जिस काल में बेटा! त्रेता के काल में ऋषि मुनियों का एक समूह एकत्रित हुआ था और ऋषि मुनियों ने यह निर्णय लिया कि क्या इस समय यहाँ धनुर्याग की आवश्यकता है? हमें धनुर्याग करना चाहिए। मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ ने कहा क्या तुम धनुर्याग के सम्बन्ध में जानते हो? तो ऋषियों ने, वेद के मन्त्रों में प्रवेश होने वालों ने, अपना निर्णय दिया, हम जानते हैं, परन्तु अक्षरों से जानते हैं, क्रिया कलाप में नहीं जानते हैं। उन्होंने कहा कि आप अक्षरों में बोद्धित करें तो उन्होंने मुनिवरों! यह कहा कि धनुर्याग का अभिप्राय यह कि राष्ट्र में धनुर्विद्या होनी चाहिए मानो धनुर्विद्या वह जिससे युवक ब्रचिंरी छात्र छात्राएं धनुर्याग में परणित हो जाए और धनुर्याग इतना अनूठा होना चाहिए जिस धनुर्याग को लेकर के हम राष्ट्र का और समाज का कल्याण कर सके।

मेरे प्यारे! ऐसा मुझे स्मरण आ रहा है कि महर्षि विश्वामित्र को सब ऋषि मुनियों ने कहा कि इस समय यह त्रेता का काल है परन्तु रघुवंश में नाना राजा हुए हैं, परन्तु

सर्वज्ञ राज्यों ने धनुर्याग को विशेष माना है और धनुर्याग के सम्बन्ध में बहुत सी चर्चाएं भी हमने की है। परन्तु विचार क्या कि यहाँ रघुवंश में महाराजा दिलीप जी हुए हैं और दिलीप जी ने मानो देखो, महाराजा दिलीप ने अपने राज्य में, प्रत्येक विद्यालय में, प्रत्येक स्थलियों में, उन्होंने धनुर्याग का प्रचलन किया है और महाराजा दिलीप जी ने यहाँ तक कहा है कि जिस राजा के काल में, जिस समाज में धनुर्याग ऊंचा होगा उस राज्य में राजा भी पवित्र बनेगा। प्रजा तो उन क्रिया कलापों से महान होगा ही, परन्तु राजा का राष्ट्र भी महान बनता चला जाएगा और राजा को भी धनुर्विद्या में इतना पारायण होना चाहिए जिससे राजा अपनी मनोभावनाओं को छात्र छात्राओं में प्रकट कर सकें। प्रत्येक विद्यालय में जब इस प्रकार का क्रिया कलाप राजा के राष्ट्र में होता है उस समय राजा का राष्ट्र पवित्र बनता है। मेरे प्यारे! दिलीप जी की यह वार्त्ता आचार्य और महर्षि सोम केतु ने वर्णन की। इसी सम्बन्ध में महाराजा रघु के यहाँ भी यह क्रिया कलाप चलता रहा। परन्तु अजय से दशरथ के काल में इस धनुर्विद्या का दूसरे रूपों में परिवर्तन हो गया। मुनियां ने कहा कि धनुर्विद्या का पुनः प्रसार होना, उसकी प्रतिभा को जानना चाहिए। महर्षि विश्वामित्र ने वहाँ से गमन किया क्योंकि ऋषि मुनियों का समाज समाप्त हो गया और मुनिवरों! देखो, भ्रमण करते हुए महाराजा विश्वामित्र हिमालय में पहुंचे। हिमालय में महाराजा शिव का राज्य तपायमान था, उनकी जो प्रजा थी वड़ी महानता और कुशलता में सदैव परणित रहती थी। महाराजा विश्वामित्र महाराजा शिव के द्वार पर पहुंचे। महाराजा शिव अपने आसन पर विद्यमान थे। उन्होंने कहा ऋषिवर! कैसे आगमन हुआ? उन्होंने कहा कि ऋषि मुनियों ने मुझे आज्ञा दी है कि धनुर्याग का प्रचार करो। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम महाराजा शिव से बोले कि महाराज! यह धनुर्याग क्या है जिस धनुर्याग के सम्बन्ध में ऋषि मुनियों ने मुझे यह बल दिया कि धनुर्याग होना चाहिए। महाराजा शिव उन्हें एक विद्यालय में ले गए और विद्यालय में उनके यहाँ धनुर्याग का प्रसार होता रहाता था। वह उस आश्रम में पहुंचे जहाँ धनुर्विद्या में ब्र0 भिन्न भिन्न प्रकार की शिक्षाओं का और धनुर्याग का अपने में अध्ययन कर रहे थे। अध्ययन करते हुए प्रातःकालीन जो दिवस में अध्ययन करा रहे हैं शायं के काल

तक उन्हें क्रियाओं में लाने के लिए महाराजा शिव के यहाँ मानो देखो, एक परमाणु विद्या, एक विज्ञानशाला, उस विज्ञानशाला में अग्नि अस्त्रों का, जल अस्त्रों का, नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण और यन्त्रों की प्रतिभा और यन्त्रों की क्रियात्मक में लाना, नाना प्रकार का अभ्यास होता रहता था। उस अभ्यास में महाराजा वह शिव शंकाओं का निदान करते रहते थे। मेरे प्यारे! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को भी यन्त्रों से प्रायः दृष्टिपात करते रहते थे। उन्होंने कहा हे विश्वामित्र! यह मेरे यहाँ धनुर्याग चल रहा है और बहुत समय हो गया है धनुर्याग करते हुए हम प्रातःकाल से सायंकाल तक इसमें इतने रत्त रहते हैं कि ब्रह्मचारी महान बन करके अपनी प्रतिभा इस संसार में प्रसारण कर सके। हमारे समीप एक ही उद्घोष होता है कि मानव समाज ऊर्ध्वा में पवित्र बने। राष्ट्रवेत्ता राष्ट्र को ऊंचा बनाने के लिए धनुर्विद्या जानें। उन्होंने यह वाक्य वर्णन कराया तो महाशिव शिव से, आज्ञा पा करके महाराजा विश्वामित्र अयोध्या में विराजमान हो गए और विचारा कि दंडक बनों में अपने आश्रम में धनुर्याग करूंगा। अयोध्या के राष्ट्र गृहों में उनका प्रवेश हुआ। राजा दशरथ ने स्थान को त्याग दिया और कहा आइए महाराज विराजिए। वह विराजमान हो गए उन्होंने कहा भगवन! आज आपका बिना सूचना के अयोध्या में पदारपण हुआ है इसका क्या कारण है? मुझे इस प्रकार का निर्णय कराएं अन्यथा मैं अपने को अभागा ही स्वीकार करूंगा क्योंकि बिना सूचना के एक ब्रह्मवेत्ता का आगमन होना, यह बड़ा आश्चर्य है। उन्होंने कहा कोई बात नहीं, राजन! मैं इसलिए आया हूँ कि मैं दंडक वनों में एक याग कर रहा हूँ और धनुर्याग याग के सम्पन्न कराने के लिए राम और लक्ष्मण को ले जाना चाहता हूँ। महाराजा दशरथ ने कहा, प्रभु! यह मेरे बाल्य किशोर हैं। मेरा हृदय से दूरी नहीं करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, राजा दशरथ ने जब ऐसा कहा उन्होंने भी कहा मेरा भी हृदय है, क्योंकि राष्ट्र में हृदय है और सबका राजा हृदय है और राजा के लिए प्रजा हृदय है, प्रजा हृदयग्राही है। राजा के लिए तो पुत्र और साधारण प्रजा एक ही तुल्य होती है। जब राजा अपने राष्ट्र में न्याय करता है मानो न्याय में एक पक्ष में उसका पुत्र है एक पक्ष में मानो समाज है या समाज का प्राणी है और राजा अपने न्यायालय में

न्याय करता है और न्याय में दोषी उसका पुत्र है तो उसे दण्ड देना चाहिए क्योंकि न्याय में और प्रजा के हित में, राष्ट्र के कल्याण के लिए पुत्र और समाज का पक्ष एक तुल्य हो जाता है। महाराजा दशरथ ने कहा, यह तो सत्य है। महर्षि विश्वामित्र ने यह कहा, तुम जब यह स्वीकार करोगे कि यह जो मेरा हृदय है मानो मैं परमात्मा का हृदय हूँ और परमात्मा के राष्ट्र में ममता नहीं होती, मोह नहीं होते परन्तु देखो, हमें यह नहीं करना चाहिए इस प्रकार देखो, तुम्हारा जो चरण है वह पवित्रता की वेदी पर होना चाहिए मेरे प्यारे! देखो, ऋषि के वाक्यों को पान करके राजा ने कहा, वाक्य तो आपका यथार्थ है, परन्तु मेरे हृदय में, मस्तिष्क में यह वाक्य समाहित नहीं हो रहा है। उन्होंने कहा राजन् इसलिए समाहित नहीं हो रहा है क्योंकि तुम्हारे बहुत काल में संतान का जन्म हुआ है, जिन सन्तानों का जन्म बहुत समय के पश्चात् होता है उनसे प्रायः मोह हो जाता है। राजा को आध्यात्मिकवाद का न होना, आध्यात्मिकवाद की जो प्रतिभा है विचित्र है क्योंकि आध्यात्मिकवाद किसे कहते है? आध्यात्मिकवाद कहते हैं बाह्य जगत और अन्तरीय जगत दोनों में अपने कर्त्तव्य का पालन करना है मानो जैसे हमारा अन्तरीय जगत है इस प्रकार हमारा बाह्यजगत भी होना चाहिए। जैसे अन्तरीय जगत में मानों किसी प्रकार का कोई आक्रमण करता है, आक्रमण करने के पश्चात् हमारा हृदय दुःखित होता है और हम जब किसी के ऊपर आक्रमण करते हैं तो मानो उसे कष्ट होता है। दोनों का एक स्थान में कष्ट हो जाने का नाम हमारे यहाँ बेटा! कर्त्तव्यवाद का पालन है जैसे मुझे नष्ट होता है ऐसे ही समाज को होता है तो हम नाना प्रकार के अन्तरीय जगत् में अपने को पवित्र बनाते रहते हैं जैसे मानो एक मिथ्या उच्चारण कर रहा है और मिथ्या उच्चारण करने वाला वह श्रवण कर रहा है तो जब वह दोनों एक सूत्र में आ जाए कि वह मिथ्या को त्याग दें और वह मिथ्या उच्चारण करने का त्याग देता है तो वह कर्त्तव्यवाद कहलाता है। जब ऋषि ने यह निर्णय कराया कि तुम्हें मोहनहीं होना चाहिए। प्रेम होना चाहिए। इस प्रकार वर्णन किया राजन्! जो तुम मोह कर रहे हो, व्यर्थ है, मोह नहीं करना चाहिए, प्रेम करना चाहिए। परन्तु देखो, आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं मानो दर्शन उसी को कहा जाता है जो मानव किसी न किसी करूणा से,

देह से दुःखित हो रहा है और उस की दुःखिता को मानव रूप में परणित कर देता है, मुनिवरों! दर्शनों के यप में परणित कर देता है तो करूणता उसकी समाप्त हो जाती है। ऋषि ने कहा विचार आता रहता है, हे राजन्! मुझे राजकुमारों को प्रदान करो। परन्तु राजा दशरथ ज्ञान होते हुए भी अज्ञान में परणित हो गए, राजलक्ष्मीयों ने जब यह श्रवण किया कि आज महाराजा विश्वामित्र का आगमन हो रहा है तो महाराजा विश्वामित्र के मानो नामोकरण को पाकर के तीनों राजलक्ष्मीयां मुनिवरों! देखो, वह वहीं पर आग ई जहाँ महाराजा विश्वामित्र और राजन् विराजमान थे। राजा से याचना कर रहे हैं राजा उस याचना को स्वीकार नहीं कर रहा है। उन्होंने बेटा! नमस्कार कर जब चरणों की वन्दना की, महाराज से महारानी कौशल्या ने कहा, कहो ऋषिवर! आज आपका आगमन कैसे हुआ है बिना सूचना के? उन्होंने कहा कोई बात नहीं देवी। हे प्रभु! कैसे आगमन हुआ है? उन्होंने कहा कि मैं राजकुमारों को ले जाना चाहता हूँ। राजा मुझे अर्पित नहीं कर रहे हैं। उन्होंने कहा, कोई वाक्य नहीं भगवन्! राजकुमारों को अवश्य ले जाएं और धनुर्याग को पूर्ण कीजिए आपका धनुर्याग पूर्ण होने के पश्चात् राजकुमार अयोध्या में वापिस आने चाहिए।

राजा ने कहा, देवी मुझे इन राजकुमारों का मोह आ रहा है। उन्होंने कहा आप मोह ममता में न जाए क्योंकि धनुर्याग तुम पूर्ण नहीं कर सकते हो। राजा नहीं कराए तो तुम्हारे राजकुमार करा सकते हैं। मुनिवरों! दशरथ ने कहा हम क्यों नहीं करा सकते तो कौशल्या ने कहा, क्या तुम धनुर्याग को नहीं जानते हो। उन्होंने कहा, देवी मैं जानता हूँ, परन्तु पूर्ण क्यों नहीं करा सकता। उन्होंने कहा, जब राजकुमार इस विद्या को जानेंगे और इस विद्या में अपने जीवन को क्रियात्मक बनाएंगे तो वह भविष्य की राष्ट्रीयता के लिए महान कहलायेंगे।

मेरे प्यारे! देखो, जब कौशलया ने यह कहा तो राजा निरूत्तर हो गए और राजा ने राजकुमारों को कहा तुम ऋषि के द्वार पर ऋषि के साथ जाओ। इनका याग पूर्ण कराओ। मेरे प्यारे! वहाँ से उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए जब वह कुछ दूरी पर पहुंचे तो राम ने कहा, हे ऋषिवर! हे भगवन! आप याग कहाँ करेंगे? उन्होंने कहा

दण्डक वनों में, जहाँ मेरा आश्रम है, जहाँ ऋषियों ने मुझे आज्ञा दी थी। जाओ, तुम उस स्थली पर रहना, मैं वहीं अपना याग करूंगा। राम और लक्ष्मण दोनों राक्षसों को दण्ड देते हुए और महापुरुषों की सेवा करते हुए, भ्रमण करते हुए वनों में उस स्थली पर आ गए जहाँ महर्षि विश्वामित्र ने अपने याग का क्रिया कलाप बनाया था। अब वह उन क्रिया कलापों में सदैव रत्त रहते थे। मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने कहा यह मेरी स्थली है और मेरे याग को पूर्ण करो। ऋषि विश्वामित्र के वाक्य को श्रवण कर राम ने कहा, प्रभु! यह बड़ा आश्चर्य हो रहा है क्योंकि आप धनुर्याग कर रहे हैं और हमारी रक्षा चाहते हैं यह विचार नहीं आ रहा है। महाराजा विश्वामित्र बोले तुम नहीं जानते कि मेरे धनुर्याग का अभिप्राय यह कि मेरे यहाँ नाना प्रकार की सामग्री है इसस यन्त्रों का निर्माण करके उसको क्रियात्मकता में लाने का प्रयास करो। जब उन्होंने यह वाक्य कहा तो राम बड़े प्रसन्न हुए और राम ने कहा प्रभु! आप तो बड़े महान हो, मानो हमें यह प्रतीत नहीं था, आप धनुर्विद्या को क्रियात्मक में लाते रहते हो। राम और लक्ष्मण प्रातःकालीन गुरुजन के समीप हो करके देव पूजा करते रहते। प्रातःकालीन उनका ब्रह्मयाग तो होता रहता था। ब्रह्म का चिन्तन करना और मनन करना परन्तु देव याग होता और देव याग के पश्चात् यह धनुर्याग करते थे। धनुर्याग का अभिप्राय यह कि उनके यहाँ अस्त्रों शस्त्रों की विद्याओं का प्रायः क्रियात्मकता में अध्ययन होता रहता।

विश्वामित्र अपना निर्णय कराते रहते थे। एक समय जब वह धनुर्विद्या में ब्रह्मचारियों को पारायण बना रहे थे तो मुनिवरों! देखो, कहीं से महर्षि भारद्वाज और ब्रह्मचारी सुकेता भ्रमण करते हुए महाराजा विश्वामित्र के आश्रम में पधारे। विश्वामित्र और राजकुमार धनुर्याग में परणित थे और उन्हें किसी वृक्ष को लक्ष्य बनाना था, किन्हीं पत्तियों को लक्ष्य बनाना था। जब आश्रम में पधारे तब ऋषि ने बड़ा स्वागत किया। महाराजा राम और लक्ष्मण दोनों ने ऋषिवर के आगमन का गान गाया। ऋषिवर के आगमन का गान गा करके उनके चरणों की वन्दना की और महाराजा भारद्वाज मुनि महाराज ने कहा ऋषिवर! क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा धनुर्विद्या को पारायण कर रहा हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रिय, धनुर्विद्या की कोई सीमा नहीं है कि वह कितनी सीमा में जा सकता है,

कितना महान बना सकता है? परन्तु हम जानना चाहते हैं तुम कौन से धनुर्याग के अंग को लेकर के चले हो। उन्होंने कहा कि मैं उस अंग को ले करके चला हूँ जिससे आतातायियों का विनाश हो जाए। आतातायी सब शान्त हो जाएं और कर्त्तव्य परायण पुरुष राष्ट्र में, समाज में रहने चाहिए और देखो, इन्हीं क्रियाओं में मैं लगा हूँ कि यन्त्र होने चाहिए परन्तु यन्त्र विशाल हो।

तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा विश्वामित्र की यज्ञशाला में मानो उस विज्ञानशाला में ऐसे ढेसे यन्त्र उन्होंने निर्माणित किए, जिन यन्त्रों में विराजमान हो करके तुम लोकों का भ्रमण कर सको, मानो लोक लोकान्तरों में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण महाराजा विश्वामित्र बड़े बड़े क्रियाकलापों में परणित हो गए। उन्होंने कहा भगवन! मैं आपके क्रियाकलापों से बड़ा चकित हो रहा हूँ। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि आप यह जो याग कर रहे है, क्या मानो यह परमपिता परमात्मा के वेद का अंग लेकर के चले हो? उन्होंने कहा मैं द्वितीय अंग भी लेकर चल रहा हूँ। प्रातःकालीन में ब्रह्मयाग होता है और देवयाग होता है अग्निहोत्र और उसके पश्चात द्वितीय क्रियाकलाप में धनुर्विद्या में पारायण कर रहा हूँ। ऋषिवर बड़े प्रसन्न हुए। राजकुमारों को दृष्टिपात करके भारद्वाज ने कहा हम याग को समय समय पर अपना सहयोग दे सकेंगे। उन्होंने वैसे कहा धन्य है प्रभु! महाराजा विश्वामित्र के आश्रम में भारद्वाज मुनि ने यह कहा कि तुम राजकुमारों को उर्ध्वा में ले जाओ और ये इतने पारायण होने चाहिए कि अपने राष्ट्र और समाज को ऊंचा बना सके क्योंकि जब धनुर्विद्या महान होती है तो उस राजा के राष्ट्र में वैज्ञानिक होते है, आध्यात्मिकवेत्ता भी होते हैं और राजा के राष्ट्र में इतने मानो आध्यात्मिकवेत्ता रहते हों और बुद्धिजीवी प्राणी जो याज्ञिक होते रहते हैं ऐसे राजा का राष्ट्र तो भगवन! पवित्र बन करके रहता है क्योंकि समय समय पर वह विद्या का अध्ययन कराते रहते हैं। ऋषि धनुर्विद्या में पारायण कराते रहें। उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था, इस यन्त्र का निर्माण द्वापर के काल में भी हुआ। यह त्रेता के काल में भी महाराजा शिव और भी नाना विज्ञानवेत्ताओं की सहायता से यन्त्र का निर्माण किया था। जिस यन्त्र में एक मछुक नाम का यन्त्र निर्माण किया और उस यन्त्र को

ऊर्ध्वा में एक यन्त्र में स्थित कर दिया और वह यन्त्र परिक्रमा करने लगा वह और मुनिवरों! देखो, एक सूक्ष्म समय में बहुत सी परिक्रमा कर जाता। एक सूक्ष्म समय में वह सात हजार सात सौ ब्यालीस परिक्रमा कर जाता था मानव के एक सांस की गति जितने समय में प्राणी एक सांस लेता है उतने समय में मुनिवरों! देखो, वह इतनी परिक्रमा कर जाता था। भगवान् राम से कहा कि यह जो यन्त्र है इसको अपने अस्त्रों से तुम्हें छेदन करना है। तुम्हें छेदन करके इसे अन्तरिक्ष में, अन्तरिक्ष से पृथ्वी तल पर आना है। राम ने कहा बहुत प्रिय भगवन्! यह तो आपकी अनुपम कृपा है कि आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं। जब उन्होंने यत्र का छेदन किया तो वह विचार में निहारते रहे, निहारते निहारते यन्त्र पहुंचा तो मछुक नाम का यन्त्र था उसका छेदन हो गया और वह पृथ्वी पर आ गया। अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर आ गया। यन्त्र निर्माण महाराजा विश्वामित्र ने महर्षि भारद्वाज की सहायता से प्राप्त किया था। उसमें ऐसी विशेषताएं कहीं गई है। आज मैं बेटा! विज्ञान के युग में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज तुम्हें मैं उच्चारण करने आया हूँ कि राजा के राष्ट्र में, प्रत्येक विद्यालय में आचार्य के समीप विराजमान हो करके धनुर्विद्या का प्रसार होना चाहिए। धनुर्विद्या अपने में अनूठी रहती है जहाँ प्रातःकाल ब्रह्मचारी जन याग का वर्णन करते हैं। याग का चलन हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के बड़ा अनूठा क्रियाकलाप माना है, बड़ा क्रियात्मक मानने से मानव के जीवन का कल्याण हो जाता है विचार हमारा क्या कह रहा है? हम यह उच्चारण कर रहे हैं कि हमारे यहाँ विद्यालयों में तीन प्रकार के याग होने चाहिए। ब्रह्म का चिन्तन, प्रत्येक ब्रह्मचारी प्रातःकालीन अपने आसन से पृथक हो करके आचार्य उनको ब्रह्मयाग का अभ्यास कराएं और उसके पश्चात् क्रियात्मक जीवन बनाने से क्रियात्मकता में लाने के लिए उन्हें देव पूजा जैसे विश्वामित्र मुनि महाराज के आश्रम में प्रातःकालीन देव पूजा, देव याग का चलन होता था। इसी प्रकार राजा के विद्यालयों में धनुर्विद्या अस्त्रों शस्त्रों का निर्माण हो। जिन यन्त्रों में ब्रह्मचारी जन विद्यमान हो करके लोक लोकान्तरों में जा सके और नाना प्रकार के रूपों को अपने में धारण करने वाले हों। जब ऋषि ने यह निर्णय कराया तो वह सान्त्वना को प्राप्त हो गए। उन्होंने राम और

लक्ष्मण को पारायण कराया, पारायण करा करके अपने में ध्यान करते रहते थे। तो आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम अपने समाज को, अपनी मानवीयता को ऊंचा बनाए। हमारे यह शब्द उद्गीत रूप में गाए जा रहे थे। प्रातःकालीन जब ब्रह्मयाग होता रहता तो महाराजा विश्वामित्र ब्रह्मचारियों की शिक्षा देते रहते। उनसे कहते कि तुम धनुर्विद्या को जैसे अपने में धारण कर रहे हो ऐसे मानव को आत्मा का भी कल्याण करना चाहिए। आत्मा का कल्याण कैसे होता है? उन्होंने कहा जैसे विज्ञान के वाङ्गमय में अस्त्र शस्त्र अपनी सीमा में कटिबद्ध हो करके उसे अपने लक्ष्य तक वैज्ञानिक पहुंचा देता है। अणु परमाणु सब अनुशासन में रहते हैं। इसी प्रकार मानव को भी अपने जीवन का एक लक्ष्य बना करके इन्द्रियों को संयम में लाकर के हमें उसे क्रियात्मकता में लाना है, जब वह क्रियात्मकता आएगी उसी समय मानव का कल्याण होता है। मानव का कल्याण तभी होता है जब मन का लक्ष्य संकल्प बनाया जाता है। मन उसका प्रतिनिधित्व करने वाला है और प्राण का सहयोग लेकर के उसको क्रियात्मकता में लाता है। आत्मा का सहयोग हो करके उसमें आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों प्रकार का विज्ञान उसमें परोक्ष होता है यह आन्तरीय जगत् और बाह्य जगत् को दोनों को जब तक अनुशासन में नहीं लाता क्रियात्मकता में नहीं लाता है तब तक वह अपने में महान नहीं कहलाता है, अपने में महानता का दर्शन नहीं कर सकता है। अपने मानवत्व का भी दर्शन नहीं कर सकता है। मानव को विचारना है कि हम अपने जीवन को ऊंचा बनाने के लिए राजा के राष्ट्र में प्रत्येक विद्यालय में बेटा! आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान क्रियाकलाप में रहना चाहिए। मानव का आन्तरिक विचार बाह्य जगत् को सजातीय बना देता है। बाह्यजगत जो इसका निर्माण किया गया है वह मानव के अन्तरीय जगत को ऊंचा बना देता है जैसे एक स्थली पर तपस्वी रहता है और उसके चले जाने के पश्चात् भी मानव उस तपस्वी के आसन को क्यों जाते हैं? क्योंकि मानव उस तपस्वी के विचारों की तरंगें मानो उस स्थली पर तरंगित हो रही हैं और तरंगित होने से वही तरंगें आध्यात्मिकवाद में अपने हृदय को पवित्र बना देती हैं।

इसीलिए मानव को विचारना चाहिए कि हम अपने में कितना ऊंचा बनाना चाहते हैं। याग कदापि भी अशुद्ध नहीं हुआ करता है। धनुर्याग में भगवान राम बड़े अहिंसा में रहे हैं। सदैव उसका जीवन अहिंसा में परिवर्तित रहा है। अहिंसा में रमण करता रहा है और उनका उद्गीत था कि मानव को अहिंसा परमो धर्म होना चाहिए। हिंसक न हेते हुए मानव वह लक्ष्य का विचार लेता है। अहिंसा का पालन वह कर सकता है जो मानव अपने हृदय में दूरिता के विचारों को न आने दें। वह मानव अहिंसा का पालन करता है। परन्तु राजा को राजा को कैसे अहिंसा में रहना चाहिए। परन्तु यह प्रश्न बड़ा विचित्र आता है। राजा जहाँ यह चाहता है कि राष्ट्र को विशाल बनाऊं, वहीं यह है कि मैं अस्त्रों शस्त्रों में पारायण हो करके, अपने में बलिष्ट बन करके दुष्टों को दण्ड देने वाला बनूं तो राजा के हृदय में नाना प्रकार की कल्पना जागृत होती रहती है। हमारे हृदय में भी, विचारकों के हृदय में भी यह प्रायः देखो, नाना प्रकार के अबंदनीय विचार आते रहते हैं और यह विचारते रहते हैं। राजा कैसे अपने में अहिंसा परमो धर्मी बन सकता है? तो राजा राम को महाराजा विश्वामित्र ने वर्णन कराया कि राजा के हृदय में सत्य और प्रजा की रक्षा की भावना होनी चाहिए। वह जो रक्षा की भावना है वह सतोगुण आध्यात्मिकवाद और दर्शनों से और विचारों से इसका समन्वय रहता है परन्तु राजा के राष्ट्र में यह होना चाहिए। जब राजा के हृदय में शान्ति नहीं रहेगी पद की लोलुपता नहीं रहेगी और क्रान्ति नहीं रहेगी इसे वह ईश्वर की धरोहर स्वीकार करता है तो राजा यहाँ आकर के अहिंसा परमोधर्मा बन जाता है। जब तक नहीं जानेगा कि यह राष्ट्र की धरोहर है मैं तो केवल कर्त्तव्य करने को आया हूँ। जब प्रत्येक मानव अपने में यह स्वीकर कर लेता है कि यहाँ मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए आया हूँ यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होकर के अग्नि के मुखार बिन्दु में नाना प्रकार का साकल्य प्रदान कर रहा है केवल यही इच्छा रहती है, यह जो विचार है मेरे हृदय में जो स्वाहा उच्चारण कर रहा हूँ इसमें मेरा आध्यात्मिकवाद हो रहा है। मन कर्म एकाग्र करके अपने शब्दों को द्यौ लोक में पहुंचा रहा हूँ द्यौ लोक से शुद्धिकरण हो करके वह प्रजा के हितकर होता है। वह एक माला बना रहा है निःस्वार्थ। इसका स्वार्थ नहीं पड़ता है। वह

चाहता है कि वेद मन्त्रों की एक माला बना करके अपने कण्ठ में धारण करने वाला बनूं और याज्ञिक भी। प्रत्येक स्वाहा मेरा जो शब्द है इस एक एक शब्द का मनका बन करके और अन्तरिक्ष में अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके समाज महान बन जाए तो मेरे प्यारे! देखो, यज्ञमान जैसी कल्पना कर रहा है, इसी प्रकार यज्ञमान जानता है कि अग्नि स्वरूप प्रभु है। वह महान है, मुझे उसकी धाराओं को अपने में धारण करना है और मनकों के सूत्रों से मैं इसको भोगने वाला बनूं। महाराजा विश्वामित्र प्रातःकालीन जब याग करने के पश्चात् इस प्रकार की धारणा देते थे कि नाना प्रकार का साकल्य अग्नि में परणित कर रहे हैं और अग्नि में परणित हो करके, अग्नि तो इसकी माला बना देती है। वाह रे प्रभु! तेरा विज्ञान कितना पवित्र है प्रत्येक शब्द मानो माता के रूप में भ्रमण कर रहा है। प्रत्येक शब्द मानव के आकार के रूप में परमाणुओं में भ्रमण कर रहा है। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा नहीं प्रकट करने आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ केवल परिचय देने के लिए चला आता हूँ और वह परिचय क्या है? देखो महाराजा विश्वामित्र धनुर्याग सम्बन्धी प्रातःकालीन चर्चाएं करते रहते थे। राजा अहिंसा परमोधर्मी उस काल में बनता है, उस समाज के कर्त्तव्य का पालन करने के लिए वह प्रभु की इच्छा स्वीकार करता है कि यह प्रभु मेरा देव है और मैं प्रभु का आश्रित हूँ। यह प्रजा, यह राज्य प्रभु का है मैं भी प्रभु का हूँ। मैं सदैव कर्त्तव्यवाद में रत्त रहूँ और कर्त्तव्यवाद मेरी भूमिका बन जाए। मेरा हृदय भी कर्त्तव्यवादी बन कर के बाह्य जगत से मिलान करके दोनों मनकों को एक सूत्र में पिरोकर के इस संसार से पार हो जाना चाहिए। मैं तुम्हें विशेष चर्चा नहीं प्रकट करने आया हूँ। तो विचार क्या मुनिवरों! महाराजा विश्वामित्र धनुर्याग कराते रहे। उन्होंने धनुर्याग का अभ्यास कराया। महाराजा विश्वामित्र ने राम को और लक्ष्मण को दोनों की दीक्षा दी। जो ऋषिमुनियों का विचार है वह हम कल प्रकट कर सकेंगे। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए और परमपिता परमात्मा को सर्वज्ञ अहिंसा, अहिंसा परमोधर्मी में दृष्टिपात करते रहे और परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का यशोगान गाते रहे। यह है बेटा! आज का वाक्। कल जब मुझे समय

मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त होता है अब वेद मन्त्रों का पठन पाठन होगा। दिनांक 12 3 87 स्थान चौधरी रामपाल लूम समय दोपहर 3 00 बजे।

२ 15 05 1988 पुष्प 56 महर्षि महानन्द जी के प्रेरणात्मक विचार

जीते रहो! मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह हमारा पुरोहित है और यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है। उसी की आभा में हम सदैव निहित रहते हैं। उस परमपिता का याग आयतन है गृह है व सदन हैं वह उसी में वास करता रहता है। इसीलिए हमें उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसको अपना पुरोहित स्वीकार करते हुए उसकी महिमा का गुणगान करना चाहिए

आज का हमारा वेद मत्र यह उद्गीत गा रही है कि यागाम् भविताम् ब्रह्मणां लोकाः अर्थात हम याज्ञिक बनें। याज्ञिक बनने का अभिप्राय यह कि हम मन वचन और कर्म से सदैव सात्विक वायुमण्डल में गमन करते रहें। एक दूसरे में आभायित होते हुए अपने मानवत्व को विचित्र बनाते हुए याज्ञिक बन जाएं। याग का अभिप्राय यह कि अपनी प्रतिभा को ऊर्घ्वा में ले जाना है। जितना भी सुकर्म है, वह सर्वत्र यज्ञमयी स्वरूप माना गया है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा था कि जब हम देवपूजा में रत्त होते हैं और देवपूजा करने लगते हैं तो देवता बन जाते हैं। ब्रह्म चरिष्यामि बनते हैं तो ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं अतः हम ब्रह्म की प्रतिभा में सदैव रत्त रहें।

आज का हमारा वेद का मन्त्र हमें उस क्षेत्र में ले जा रहा है जहाँ गुरू और शिष्य विद्यमान हो करके अग्नि का चयन करते रहते हैं और अग्नि के ऊपर अपनी विवेचना करते रहते है। हे अग्ने स्वरूप परमपिता परमात्मा! तू प्रकाश का द्यौतक हैं। प्रकाश तेरा आयतन है। प्रकार दोनों गुरू शिष्य प्रातःकाल अपने प्रभु की महिमा का गुणगान गाते

है और कहते हैं तू अखिलेश्वर है। तू सत्य में रहने वाला है। हे प्रभु! तू अग्निमय स्वरूप है। कही तो तू गार्हयपथ्य नाम की अग्नि बन करके रहता है और कहीं तू वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके रहता है। संसार में भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नियों का चयन हो रहा है। तू अग्नि स्वरूप कही अणु परमाणु बनके रहता है। प्रत्येक परमाणु की प्रतिभा में एक अग्नि है। विचार यह चल रहा है कि अग्नि तू प्रकाशमयी है और प्रकाश को देने वाली है।

एक समय यमाचार्य ने ब्रह्मचारी नचिकेता से कहा था कि हे उद्दलक गोत्रीय! यह जो अग्नि है यह जो अग्नि है यह प्रकाशयी है। यह अग्रणीय कहलाती है। जैसे समाज में नेतृतव करने वाला समाज का नेतृतव करता है और वह अग्नि स्वरूप माना गया है अग्निमय माना गया है। वह प्रजा का नेतृतव करता है। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा अग्निस्वरूप और अग्नि में रत्त रहने वाला सर्वत्र ब्रह्माण्ड का नेतृतव करने वाला है। इसी प्रकार आत्मा शरीर के प्रत्येक अंग का नेतृतव कर रहा है। नेतृतव कैसे कर रहा है। नेतृतव में ज्योति है। घ्राण में सुगन्ध है, श्रोत्रों में शब्द हैं, जिह्वा में रस है और त्वचा में स्वाद माना गया है। आत्मा यदि चला जाता है तो मानव का शरीर शून्यवत को प्राप्त हो जाता है। नेतृतव करने वाला कौन है नेतृतव करते वाला आत्मा है। वेद का ऋषि कहता है कि तू आत्मा को जानने का प्रयास कर। वह अिग्न स्वरूप है। एक चेतना है, उसी चेतना के रूप में मानव को रक्त हो जाना चाहिए। आत्मा को जाने बिना कल्यान नही हो सकता। इसीलिए तुम आत्मा को जानो। आत्मा को जानने वाला पूण याज्ञिक कहलाता हैं। हे यज्ञोमयी स्वरूप परमात्मन्! तू संसार का अधिपति कहलाता है।

यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में परमात्मा ब्रह्मा है। आत्मा यज्ञमान है। पञ्चमहाभूतों में कोई पुरोहित है, कोई अध्वर्यु और कोई उद्गाता है। विचार विनियम यह कि संसार में नित्यप्रति के क्रिया कलापों में सात्विकता होनी चाहिए जिससे मानवीयता ¬ऊँची बने। हमारे यहाँ दो प्रकार का जगत है। एक चैतन्य है और एक जड़वत है जहाँ ज्ञान और प्रयत्न के साथ में जगत क्रीड़ा कर रहा है। जो ज्ञान और प्रयत्न ये शून्य रहता है, वह जड़ जगत कहलाता है। दोनों प्रकार के जगत के मूल में,

ब्रह्मिण्ड के मूल मे वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। वह जड़ जगत में भी है और चैतन्य जगत के गर्भ में भी निहित रहने वाला है।

हमारे यहाँ मृत्यु को विजय करने वाले मृत्यञ्जय बनने के लिए परम्परागतों से नाना प्रकार के अन्वेषणा करते रहे हैं। यह विचार ऋषि मुनियों के मध्य में रहा है कि मृत्यु क्या वस्तु है जिसके ऊपर मानव रुदन करता रहता है। मृत्यु के सम्बन्ध में बड़ी ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ी गई गई हैं। परन्तु अन्त में एक ही वाक्य आया है कि मृत्यु अज्ञान के रूप में रत्त रहती है। अज्ञान का नाम मृत्यु कहलाता है। मैं विशेष विवेचना न देता हुआ तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ प्रत्येक मानव मृत्यु से विजय होने के लिए तत्पर है और मृत्यु से पार होना चाहता है। मृत्युञ्जय बनना मानो हमारा एक मानव नृत्य कहलाता है। अन्धकार में रमण करने वाले मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। मृत्युञ्जय वही होता है जो अनुष्ठान करने वाला होता है और जो अपनी अन्तरात्मा को महान बनाता है।

मृत्युञ्जय बनने के लिए मानव अपने को तपायमान करता रहता है। अग्नि स्वरूप को जान करके वह अग्निमयी बन जाता है ब्रह्मचारी अग्नि में तपायमान होकर विद्यालय को तपायमान करता है। जब विद्यालय तपायमान हो जाते हैं तो राष्ट्र ऊंचा बना करते हैं। जब राष्ट्र ऊंचा बनता है तो राजा के राज्य में कर्त्तव्यवादी प्राणी होते हैं। जब कर्त्तव्यवादी प्राणी होते हैं तो राष्ट्र में सुख होता है। जब आनन्द और सुख की दृष्टि होनी प्रारम्भ हो जाती है।

अपने को ब्रह्मसूत्र में पिरोने वाला ब्रह्मचारी देवताओं की सभा में सुशोभनीय हो जाता है। ब्रह्मचारी वही कहलाता है जो प्रत्येक श्वास को ब्रह्मसूत्र में पिरोता है और ब्रह्मसूत्र में पिरोकर ब्रह्म और चरि दोनों को जानता है।

आज का हमारा विचार यह भी कह रहा है कि हम एक दूसरे के ऋणी न रहें। एक दूसरे के जब ऋणी रहेंगे तो हमारी जीवन ऋणी बना रहेगा। अयोध्या के राष्ट्र में जब भगवान राम राष्ट्र का पालन करने लगे तो यह घोषणा की गई कि प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए। ऋणों से उऋण होना चाहिए। राष्ट्र वह पवित्र होता है जिस राजा के राष्ट्र

में एक दूसरे का ऋण न लेकर वेद मन्त्रों की ध्वनियाँ आती हों और उनके साथ अग्नि होत्र करने वाला होता है।
मानव दो प्रकार से ऊंचा बनता है। एक मानवीय विचारों की सुगन्धि है और दूसरी बाहरीया क्रिया कलापों की सुगन्धी है। दोनों सुगन्धियों का जब मिलान हो जाता है तो सुगन्ध होकर पृथ्वी के विज्ञान को जान लेता है। पृथ्वी विज्ञान को जान करके अग्नि में रत्त होकर मृत्यु से विजय हो जाता है।
जहाँ प्रत्येक मान एक दूसरे की सम्पत्ति से रहने वाला हो से स्वर्ग कहते हैं। स्वर्ग कहाँ होता है? जहाँ व्यवहार कुशलता होती है। जहाँ मानव एक दूसरे का ऋणी नहीं रहता। भिन्न भिन्न प्रकार का ऋण है। आज हम देववत् याग में परणित हो जाएं तो हम ऋणों से उऋण हो जाएं। अपने जीवन को ऋणों से मुक्त करते हुए इस सागर से पार हो जाए। विचार यह चल रहा था कि यह संसार एक दूसरे में पिरोया हुआ है। मानव यज्ञशाला के रूप में विद्यमान है। प्रत्येक मानव यहाँ याग कर्म करने के लिए आया है। याग का अभिप्राय यह कि अपने सुक्रिया कलापों में रत्त रहना है, मानव सुकर्म करने के लिए आया है। आत्मीय प्रेरणा को स्वीकार करता हुआ सागर से पार होने के लिए आया है। हमें आत्म प्रेरणा को स्वीकार करना चाहिए। अब मैं यहाँ अपने विचारों को विराम दे रहा हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।
पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गरुदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गम्भीर विचारों में रत्त हो रहे थे। हमें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इन्हीं विचारों मे रत्त न हो जाएं। इनके विचारों में गागर और सागर की कल्पना की जाती है। जैसे एक मानव गागर में सागर को परणित कर देता है, उसमें दृष्टिपात करता है। इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। व्यष्टि और समष्टि की चर्चा कर रहे थे।
हमारी जहाँ यह आकाशवाणी जा रही है, हमारी विचार धारा प्रसारित हो रही है, उस स्थली पर एक याग की सम्पन्नता की घोषणा हुई है। सम्पन्नता का घोष सुनकर मेरी आत्मा बड़ा प्रसन्न हुआ है। जब हम साम गान गाने लगते हैं तो हमारा अन्तर हृदय

विभोर हो जाता है। विभोर होकर हम स्वीकर करते हैं कि हम साम गान गा रहे हैं। हमारा प्रत्येक जो स्वर है वह साम गान गा रहा है। जैसे यज्ञमान के हृदय में सोम के वाक्य की पिपासा निहित रहती है, इसी प्रकार सर्वत्र यागमय स्वरूप माना गया है। विचार यह कि आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। प्रत्येक इन्द्रिय में ब्रह्मण्ड है। प्रत्येक इन्द्रिय के ज्ञान और विज्ञान में यह ब्रह्मिण्ड निहित रहता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी बहुत सी वार्त्ताएं प्रकट कर रहे थे। हमने यह प्रेरणा दी कि याग के सम्बन्ध में अपना विचार प्रगट किया जाए तो पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी अपने विचार व्यक्त किए। मैंने कई काल में यह वर्णन किया है कि यह जो काल है, यह ऐसा काल है जिसे हम वाम मार्ग का काल कहते हैं। प्रायः यूं तो प्रत्येक काल में सुन्दरता और पवित्रता परम्परागतों से चली आ रही है। इसे कोई प्राणी नष्ट नहीं कर सका। परन्तु विचार आता है कि जो आत्मने अग्नम् ब्रह्मे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वर्णन कर रहे हैं, मैं भी उद्गीत गाता रहूँ।

यह काल वाम मार्ग का काल है। वाम मार्ग के काल में प्रत्येक मानव भ्रमित हो रहा है, प्रत्येक प्राणी भ्रमित हो रहा है। भ्रमित होकर उसे न मानवता के दर्शन होते हैं और न ही सात्विक विज्ञान का दर्शन होता है। विज्ञान का दर्शन भी होता है तो उसका दुरूपयोग होता हुआ दृष्टिपात आता है। मान वाम मार्ग से ही कल्पना करता है। हे पूज्यपाद गुरुदेव! यह जो जगत मुझे दृष्टिपात आता है, यह वाम मार्ग है। यहाँ प्रत्येक मानव सुरा, सुन्दरी और पद की लोलुपता में लगा हुआ है। विचार आता है कि मानव उसी की लोलुपता लगा हुआ है। विचार आता है कि मानव उसी की लोलुपता में अपने जीवन को न्यौछावर कर रहा है। परन्तु जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि मेरे यज्ञमान के यहाँ देव पूजा के रूप में गान गाया जा रहा है। प्रत्येक शब्द के साथ में अग्नि विद्यमान है और वह शब्द द्यौ लोक को जा रहा है। पूज्यपाद गरुदेव मुझे वर्णन कराते रहते हैं। मेरा तो एक ही मन्तव्य है कि मानव को अपनी मानवीयता में तत्पर रहना चाहिए। विचार आता रहता है कि जो मानवीयता के आधार पर आत्मा की प्रेरणा से

आत्मीयता को विचारता है, वही तो गान गा रहा है, वही साम गान गा रहा है। पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल साम गान के सम्बन्ध में कई प्रश्न किए, परन्तु पूज्यपाद शान्त हो जाते हैं। मैं मन में साम गान के सम्बन्ध में विचारता रहता हूँ। मैंने कई काल में वर्णन किया कि महाराजा! नल जब साम गान गाते थे, प्राण को अपान में स्थिर करके जब गान गाते थे तो साम गान गाते गाते गृहों में दीपमालिका के दीप प्रदीप्त हो जाते थे। प्राण को अपान में, अपाण को प्राण व समान में प्रवेश करके यह गान गाया जा सकता है। प्राणों को एकाग्र करने से लघु मस्तिष्क में एक लल्लाहट आ जाती है। उनमें अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। उस अग्नि के प्रकाश से शब्दों में वही शब्द ध्वनि है जो गान के रूप में गाई जाती है तो दीपमालिका बन जाती है।

मैं यह कहता रहता हूँ कि हे ब्राह्मण जनों, विद्वानों! तुम आओ, राजा को संकेत दो और राजा से कहो कि तू अपने राष्ट्र को दीपमालिका बना। तू अपने राष्ट्र को महानता में परणित कर। मेरा अन्तरात्मा जो यज्ञमान के साथ रहता है। मैं यह कहा करता हूँ कि हे यज्ञमान! जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह गृह बड़ा सौभाग्यशाली है। हे यज्ञमान! मेरा अन्तरात्मा प्रायः तेरे साथ रहता है। तेरे हृदय में अग्नि के प्रकाश की पिपासा जागरूक रहे। तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरी विचार धारा महान बनी रहे। तू अपने मार्ग से विचलित न हो जाएं, ऐसी यज्ञमान के सम्बन्ध मे मेरी कामना रहती है।

पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत ऊर्ध्वा में अपना उपदेश दिया। आधुनिक काल में राष्ट्र में तथा समाज में नाना प्रकार से जो हो रहा है वह बड़ा विकृत हो रहा है। इस प्रकार राजा तथा प्रजा ऊर्ध्वा को प्राप्त नहीं होंगे। राजा के राष्ट्र में नर संहार उस काल में होता है जब विज्ञान का दुरूपयोग होना प्रारम्भ हो जाएगा। इसलिए हे राजन! तेरे राष्ट्र में विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। मेरे पुत्रियां के अश्लील चित्रों में जब छात्रों की वृत्ति प्रवेश कर जाती है तो राजा के राष्ट्र में रक्तभरी कान्ति स्वाभाविक मानी गई है। जब राजा रसना की अथवा पद लोलुपता की ओर अग्रसर हो जाएगा, अग्रणीय बन जाएगा तो वहाँ प्रमाद आ जाएगा। प्रमाद के पिछले भाग में मानवता विद्यमान रहती

है।

मैंने कई काल में अपने गुरुदेव से प्रार्थना करते हुए कहा कि आधुनिक काल में निर्वाचन प्रणाली बड़ी विचित्र है। प्राचीनकाल में जब भी निर्वाचन होता है तो ऋषि मुनि प्रश्न करते। उद्गाता, ब्रर्ि, पुरोहित आदि से प्रश्न किए जाते तो वे उनका समाधान करते। उस समाधान के गर्भ में उज्ज्वलता विद्यमान रहती। इसलिए मैं कहता हूँ कि हे राजन! अपने राष्ट्र को ऊंचा बना। जिस काल में राष्ट्र की पवित्र निर्वाचन प्रणाली बन जाती है, उसी काल में राष्ट्रीय समाज ऊचा बन जाता है। राष्ट्र का निर्वाचन पठित समाज द्वारा होता है। राजा जो क्रिया कलाप करता है, प्रजा वही किया करती है। प्रजा वैसा ही करने लगती है जैसा राजा किया करता है।

यदि राजा दुरिता में प्रवेश कर गया है तो वह राष्ट्र तथा समाज की प्रणाली को ऊंचा नहीं बना सकता। मैं यज्ञमान के सम्बन्ध में विचार देता रहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरा जीवन महान ज्योतिमय बना रहे और समाज और राष्ट्र के लिए तेरी निष्ठा बनी रहे राष्ट्र में यह विचारधारा वाले प्राणी रहने चाहिए जिससे राष्ट्र में शान्ति स्थापित हो सके। राष्ट्र में प्रत्येक सम्प्रदाय में रूढ़िवाद नहीं रहना चाहिए। रूढ़िवाद राष्ट्र के लिए अग्नि कांड लाता है। एक प्राणी दूसरे प्राणी का भक्षक बन जाता है। नाना प्रकार के सम्प्रदायों तथा रूढ़िवाद को राजा द्वारा नष्ट किया जाना चाहिए।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, पूज्यपाद गुरुदेव ने भी मुझे स्मरण कराया कि एक समय राजा रावण के काल में नाना प्रकार के सम्प्रदाय हो गए। सम्प्रदायों के आचार्यों से विद्वानों का शास्त्रार्थ करवाया और स्वयं मध्यस्थता की। सम्प्रदायों को शान्त करके एकोकी धर्म किया। बहुत समय तक ऐसा ही चलता रहा। परन्तु वैद्यराज सुधन्वा और राजा रावण के मध्य में पश्चात् के काल में जब विरोधाभ्यास हो गया तो उस काल में लंका अग्नि का काण्ड बन गई।

विचार केवल यह है कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अग्रणीय बना रहा हूँ। वर्तमान काल में पृथ्वी मण्डल पर यह दशा हो रही है कि प्रत्येक सम्प्रदाय अपने को राष्ट्रीय

स्वीकार कर रहा है। प्रत्येक सम्प्रदाय के हृदय में एक दाह बनी हुई है कि राष्ट्र मेरे सम्प्रदाय का होना चाहिए। मेरी रूढ़ि का होना चाहिए। अरे, मानव! राष्ट्र तो मानवीय दर्शनों का होता है। दर्शनों का राष्ट्र होता है। जब राजा अपनी आभ में विचित्र बन करके राष्ट्रीयता को मानवीय क्षेत्र में परणित करा देता है तो राष्ट्र ऊर्ध्वा को प्राप्त हो जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेंने कई काल प्रकट किया कि यदि आज कोई निमटारा कर सकता है तो राजा महान और ओजस्वी बन करके कर सकता है। प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्य से शास्त्रार्थ होना चाहिए। मानव को अपना करके राजा अपने राष्ट्र को विशुद्ध बना सकता है। अब मैं अपने विचारों को विराम दे रहा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे इतना ही समय प्रदान किया था।

नूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार व्यक्त किए। इनके हृदय में राष्ट्रीयता व मानवीयता की अग्नि जागरूक रहती है। मैं प्रभु से प्रार्थना करता रहता हूँ कि आगे वह काल आए जो महानन्द जी की पिपासा शान्त करे। प्रत्येक रूढ़ि के प्रति इनकी एक दाह बनी हुई है। आज का विचार समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन।

३ 22 07 1988 पुष्प 56 प्राण विद्या

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिसपवित्रवेद वाणी में परमात्मा का गुण गान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी है। जितना भी जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है हमारे यहाँ दो प्रकार के जगत की विवेचना की जाती है। सबसे प्रथम चैतन्यमयी जगत और द्वितीय जगत जड़वत माना गया है। चेतना की विवेचना का मापदंड ज्ञान और प्रयत्न रहा है और विचारवेत्ता प्रत्येक वेदमन्त्र के ऊपर विचार विनिमय करते रहे है। उसमें चेतनता की विवेचना कहीं कहीं गतिवान मानी गई है और गति के साथ ज्ञान और प्रयत्न को

चेतना का मूल कहा जाता है। जड़ जगत में गतियां भी हैं, पिं रूप में दृष्टिपात आने वाला यह जड़ जगत है परन्तु इसमें परमपिता परमात्मा महत्ती युक्त विद्यमान रहते हैं। इसके पश्चात् भी वह जड़वत माना गया है। जड़ का अभिप्राय यह कि इसमें ज्ञान और प्रयत्न नहीं है इन दोनों के न रहने से वह संसार जड़वत कहलाया गया है। यह कैसी विचित्रता है कि दोनों के स्वरूप में यह परमपिता परमात्मा विद्यमान रहते हैं वे चेतन में भी और जड़वत में भी है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना अनुपम है। तो मुनिवरों! ज्ञान और प्रयत्न चेतनता की विवेचना कर रहा है परन्तु जो ज्ञान औरप्रयत्न से रहित है वह जड़वत माना गया है।

हमारे यहाँ वैदिम साहित्य में भिन्न भिन्न प्रकार का विचार विनिमय होता रहा है। हमारे यहाँ दर्शन और मानवीयता सदैव एक आभा में निहित रही है और मानव इस चिन्तन में मग्न रहा है।परमपिता परमात्मा के अनूठे जगत पर प्रायः अनुसन्धान होता रहा है।वेद मंत्रों द्वारा जहाँ मानव याग और मनन करने का एक विषय बना लेता है वहाँ प्रत्येक वेदमन्त्र में ज्ञान औरविज्ञान कीविवेचना होती रही है, जड़ और चेतनता की विवेचना होती रही है। हमारे यहाँ यह नहीं माना गया कि इसको केवल हम पूजा की स्थली में निहित करने लगें।वेद मन्त्रामें में पूजा का स्थल एक विशेषरहाहै यह माना गया है कि प्रत्येक वेदमन्त्र एक पूजा की स्थली में निहित रहता है परन्तु यहाँ पूजा के बड़े विशेष वर्णन हैं और विचारा जाता है कि पूजा का स्थान जहाँ है वहाँ पूजा के अर्थों में मानव भिन्न भिन्न प्रकार की कल्पना करता रहा है और विचारता रहा है कि प्रत्येक वेदमन्त्र पूजा स्थलियों में विद्यमान रहता है। यागों में जितना भी कर्मकांड है, चाहे वह कर्मकांड मानवीयतव से निहित हो, चाहे याग यद्यति में हों, चाहे पारायण में हो, चाहे किसी भी आभा में निहित रहने वाला जो पूजा पद्यति है चाहे वह प्राण के द्वारा हो, चाहे मुनिवरों! आत्म तत्त्व मेंवह निहत रहने वला हो परन्तु पूजा की थली में इसे बड़ा विशेषत्व माना गया है। आज हम तुम्हें पूजा के अर्थों में ले जाना चाहते हैं क्योंकि प्रत्येक मानव पूजा के अभिप्रायों को जान नहीं पाता। इसीलिए हमारा वैदिक साहित्य एक सूक्ष्म सी क्रियाओं में निहित रह जाता है। पूजा का अभिप्राय यह है कि उसे अपने में साकार

रूप बनाना है। प्रत्येक वेदमन्त्र में जो ज्ञान और विज्ञान है अथवा परम विद्या है उसे साकार रूप में लाना है और साकार रूप में ला करके उसे पूजा में निहत कर देना है। पूजा का अभिप्राय यह है कि जिस विद्या को हमने अध्ययन किया है, उसे क्रियात्मकता में निहित करने का नाम उसकी वह पूजा पद्यति बन जाती है, वही पूजामयी मानी गई है।

मुझे स्मरण आता रहता है हमारे यहाँ प्राण विद्या बड़ी विशिष्ट रही है और प्राण विद्या संकल्पमयी प्राण रहा है। हमारे यहाँ क्रियामय शरीर शारीरिक पद्यति में बड़ा विचित्र बन कर रहा है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिसमें प्राण विद्या बड़ी विशिष्ट और महानता में परिणत होती रही है। जिस काल में प्राण विद्या के ऊपर ऋषि मुनि एक पंक्ति में विद्यमान होकर के विद्यालयों में ब्रह्मचारियों को पवित्र विद्या रूप प्रदान की जाती थी और वह पूजा की पद्धतियों में निहत रहा है। प्राण विद्या को अपने में जानना बहुत अनिवार्य है, जिस प्राण विद्या से मानव बहुत से विशाल से विशाल कार्यों को क्रियात्मक रूप देने के लिए तत्पर हो जाता है। त्रेता के काल में महाराजा बाली के पुत्र मेघनाथ(अंगद) ने जिस विद्या का अध्ययन किया वह विद्या अपने में बड़ी विशिष्ट रही है। अपने पुत्र सेएक समय बाली ने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम कौन सी विद्या को अध्ययन में लाना चाहते हो? उन्होंने कहा, हे पिता ब्रह्मणे! मैंने वेद मन्त्रों में प्राणविद्या के ऊपर विद्यालयों में बड़ा अध्ययन किया है। यह प्राण मानव को क्या क्या क्रियात्मक में लाने को तत्पर रहता है उस विद्या को मैं अपने में धारण करना चाहता हूँ, उस विद्या को अध्ययन करने के लिए मुझे ऐसाआचार्य निहित कराइए पिता। इस विद्या को महाराजाशिव के पुत्र गणेशजी भलीभांति जानतेथेपरन्तु महर्षि स्वाति ऋषि जी महाराज के यहाँ वे भी प्राणविद्या का अध्ययन करते थे। वेद मन्त्रों के सूक्तों में एक प्राण सूक्त भीहै जो अपने मेंप्राण विद्या को धारयामि बनाएं रहता है। इस विद्या के द्वारा मातायें अपने गर्भ स्थल े अपने पुत्रों! को प्राणविद्या को अध्ययन कराती रहती थी। आज मैं एक बड़ा आश्चर्यजनक वाक्य प्रगट करने लगा हूँ। हमारे यहाँ वेद मन्त्रों का अध्ययन करने वाली मेरी प्यारी मातायें, जिस समय माता के गर्भ में बाल्य सप्त माह का होता

है, उस काल में मातायें साधारण प्राण संकल्प प्राणायाम के द्वारा अपने में ऊर्ध्वा में बाल्य को प्राण विद्या को प्रायः प्रदान करती रही हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जहाँ ऋषि मुनियों के यहाँ जहाँ विद्या अध्ययन की जाती है वहाँ प्राण विद्या भी अध्ययन का विषय बनी रही है।उस प्राण से सप्त माह में बाल्य प्राण को विद्या को माता के गर्भस्थल में ही धारयामि बना लेता है। जब माता के गर्भस्थल से वह पृथक होता है, बाह्य जगत में आता है, माता पृथ्वी की गोद में आता है, यह वसुन्धरा बन करके नाना खाद्य और खनिज पदार्थों के द्वारा उसका पालन करती है। माता जब उसे लोरियों कापान कराती रहती है उस समय वह विद्या प्रदान करती रहती है। हे बाल्य! तुझे प्राण विद्या को अध्ययन करना है। यह प्राणविद्या बड़ी विशिष्ट है जैसे आज के हमारे वैदिक साहित्य में अग्नि का वर्णन आ रहा था। यह प्राणविद्या अग्नि से संबंधित रहती है। यह प्राण विद्या है जो अग्नि प्रदीप्त कर देती है। ऐसा प्राण भी है जो अग्नि को शान्ति कर देता है।

दोनों प्रकार के प्राणायाम के द्वारा मानव अपने में गतिवान होता रहा है। देखो, जब यह अग्नम् ब्रह्मया व्रातः प्रव्हे, यह अग्नि अपने में प्राणस्व को लेकर के ही अग्नि वायु का शमन करने लगती है औरजब शमन करती हैं तो उसी में रत्त हो करके एक प्राण अपने में शक्तिशाली बन करके एक प्राण जो अग्नि काष्ठों में रहने वाली है, प्रदीप्त हो करके वही अग्नि काष्ठों में जैसे यज्ञशाला में काष्ठमयी अग्नि अपने में साकल्य को भस्म कर देती है। इसी प्रकारयह प्राण ब्रह्मे, देखो, यह प्राण साकल्य के अपने में भस्म करके केवल प्राण की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो जाता है। मैं विशेष विवेचना इस सम्बन्ध में देना नहीं चाहता हूँ। हम उच्चारण कर रहे थे कि मेरी प्यारी माता अपने पुत्रों! को प्राण विद्या को प्रायः प्रदान करती रहती तो उस प्राण विद्या को धारण करने वाला मानव अपने में जैसे बाह्य जगत में आया और जैसे ही वह अप्रतम ब्रह्मः संपर्क ऋषि मुनियों का प्राप्त हुआ, आचार्यजनों का हुआ तो उस माता के गर्भस्थल में जिस विद्या का परमाणुवाद रूप में परमाणुओं में वह प्रतिष्ठित हो गया था, उसका साकार रूप बनना प्रारम्भ हो

जाता है।

जब वह संपर्क में आता है जब वह नैमित्तिक प्रवृत्तियों में प्रवेश करता है तो वह विद्या उभर करके मानव के समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है, उसका प्रत्यक्षवाद हो जाता है केवल संकेत मात्रों से। संकेत ही एक मानव की प्रतिभा कहलाई जाती है जैसे दमन किए हुए संस्कारों का उपलब्ध करना है। वह उपलब्ध जभी होते हैं जब मानव उसके समीप नैमित्तिक प्रवृत्तियों में प्रवृत हो जाता है। उसी सम्पर्क से मानव उस विद्या को पुनः से साकार रूप बना करके उसका वह पूजन करना प्रारम्भ कर देता है। इसी प्रकार मैं तुम्हें त्रेता के काल की वार्त्ताप्रगट कररहा था जब बाली ने एक समय अपने पुत्र अंगद से यह कहा, हे बाल्य! तुम प्राण विद्या को अपने में ग्रहणकरना चाहते हो। राजा बाली ने स्वाति ऋषि महाराज के यहाँ अपने पुत्र को प्रवेश कराया और प्रवेश कराते उन्होंने कहा प्रभु! यह प्राणविद्या का ब्रह्मचारी बनना चाहता है। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। तो स्वाति ऋषि महाराज ने उसे अपने में प्रवेश कर लिया और वे नित्यप्रति प्राण विद्या को हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में बहुत से प्राणसूक्त हैं जो आज के हमारे वैदिक पठन पाठन में भी कुछ वर्णित किए जा रहे थे, वही प्राण विद्या को लेकर के ब्रह्मचारी अंगद जब अपने में अध्ययन करने लगा और अध्ययन करते करते ऋषि ने इतना पारायण बनाया कि जिस अंग में वह सर्वस्व शरीर के प्राणों को लाना चाहता था उसी में वह प्रवेश हो जाता है।

उसी में वह प्राण सत्ता एकत्रित हो करके इतनी बलवती हो जाती है कि मानव आश्चर्य में चकित हो जाता है। महर्षि स्वाति ऋषि महाराज ने उन्हें वर्णन कराया। उनको लगभग 12 वर्ष का इस प्रकार का अभ्यास कराया कि वे प्राण की संकल्पीयमयी प्राण की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो गए कि संकल्प से प्राण को अपान में, अपान को प्राण में अपान और प्राण को समान में, समान को वह व्यान में और व्यान को वह उदान में प्रवेश करा करके, वे जिस अंग में लाना चाहते थे उसी अंग में वह प्राणप्रतिष्ठित हो जाता था। उसी में इतना गुरु को धारण कर लेता था जिसको बलिष्ठ से बलिष्ठ प्राणी भी उसे एक स्थली से दूसरी स्थली पहुंचाना चाहे वह उसमें इतना बल नहीं आ पाता था।

वह एक पग में सर्वत्र प्राण को लाना एक भुज में लाना चाहता तो एक भुज में वह प्राण आ जाता है।
प्राण विद्या हमारे वैदिक साहित्य में बड़ी विशिष्ठ और महानता में परणित होती रही है। मुझे वह काल स्मरण आता रहा है जहाँ ऋषिवर ब्रह्मचारियों को इस प्रकार की विद्याओं को प्रदान करते रहते थे कि प्राण को इतना सूक्ष्म बना लेना कि वह प्राण के द्वारा वायुमण्डल में भी गमन करने लगता था जैसे रेचक और कुम्भक प्राणायाम करता हुआ पूरक में प्रवेश करके वायुमण्डल में गमन करने लगता है। बाली पुत्र में यह दोनों विशेषता कहलाती थी कि वह वायु मण्डल में भी गमन करता रहता था और पृथ्वी स्थल पर भी। जिस अंग में लाना चाहता उस अंग में पांचों प्राणों का एकोकीकरण करके वह अपनी बलिष्ठता में सदैव बलिष्ठ होता रहा। बारह वर्ष के इस प्रकार अभ्यास करने से प्राण शक्ति को जलों अंगों में परणित कर देना जैसे दीपावली को एक दीप मालिका बन जाती है इसी प्रकार जो प्राणायाम के द्वारा बाह्य प्राण को और आंतरिक प्राण का दोनों को एकीकीकरण कर देता है।
जब प्राण विद्या से मानव प्राण को एकाग्र करके जब वह गान गाता है रपाण के द्वारा, तो मुनिवरों! एक दीपावली बन जाती है, दीपमालिका बन जाती है। वो दीपमालिका जैसे मैंने तुम्हेळें कई कालों में वर्णन कराया था। महाराजा अंगद के यहाँ भी ये विद्यायें प्रायः उनके हृदय में समाहित होती रही है। महर्षि तत्त्व मुनि महाराज को रात्रिकाल में जब अपने गृह में दीपमालिका बनानी होती थी तो उस समय वे प्राण को अपान को दोनों को एक सुर में लाकर के व्यान की जग उसमें पुट लग जाती है तो उस समय वो गान गाता है ललाट के द्वारा ब्रह्मरंध्र में, बेटा! देखो, इगला पिंगला सुष्मना नाड़ी के द्वारा तो उस गृह में दीपमालिका बन जाती है। जिस भी काल में उसविद्या को लाना चाहते वह विद्या अपने में परणित होती रही है। वह विद्या पूजा में परणित रही है वह पूजा की स्थलियों में पूजनीय मानी गई है। तो इसीलिए इस विद्या का प्रायः अध्ययन करना और इसे क्रियात्मक रूप देना यही पूजा का अभिप्राय माना गया है। पूजा का अर्थ केवल इतना है कि प्रत्येक विद्या को कायर्य में लाना उसे कार्य रूप देना

उसकी पूजा कही जाती है।
महर्षि स्वाति मुनि महाराज के द्वारा ब्रह्मचारी यह विद्या क्रियात्मकता में अपने में अध्ययन करते रहे और अध्ययन की परम्परा यह मानी गई कि अंगद का जीवन हमें भीस्मरण है उनके जीवन में प्रायः जहाँ वे प्राण विद्या का अध्ययन करते थे वहाँ वे मृत्यु को मात्र खिलवाड़ स्वीकार करने लगते थे।एक समय बाली पुत्र विद्यालय से अवकाश पा करके और दीक्षा ले करके आए तो उससमयमहर्षि तत्त्व मुनि महाराज ने अपना दीक्ष्ज्ञान्त उपदेश दिया और यह कहा हे ब्रह्मचारी! तुमने इसविद्यालय में इस आश्रय में प्राण विद्या का अध्ययन किया है इस प्राण विद्या को तुम्हें कार्य रूप देना है।
हे ब्रह्मचारी कार्य में क्रियात्मक रूप देकर अपने जीवन को महान बनाना है परन्तु इस विद्या का दुरूपयोग करना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है जहाँ बहुत ही विशेष कार्यों में तुम्हें इस विद्या को क्रिया रूप देना है वहाँ दुरूपयोग नहीं होना चाहिए। यदि विद्या का दुरूपयोग हो गया तो विद्या, विद्या न रह करके उसका पूजा का स्थान नहीं रहता है उसमें केवल विकृतियां आ जाती है। हे ब्रह्मचारी! अब तुम अपने इस विद्यालय को त्याग रहे हो। इस विद्यालय में तुमने प्राण विद्या को, अपान को और अपान को समान में और समान को ब्यान में और ब्यान को उदान में प्रवेश ककिया है। इस विद्या का प्रायः तुम्ळारे अध्ययन होता रहना चाहिए। यह अध्ययन की परम्परा तुम्हारे जीवन में, देखो, इसमें विज्ञान इसमें मानवीयतव, क्रिया में लाना तुम्हारा कर्त्तव्य माना गया है। यदि इसका दुरूपयोग हो गया तो वैदिक विद्या का ह्रास हो जाएगा वेद मन्त्रों का ह्रास हो जाएगा। इसीलिए हे ब्रह्मचारी! मैं तुम्ळें दीक्षा दे रहा हूँ। इस विद्या को तुम्हें क्रिया रूप देने के लिए जहाँ तुम क्रिया रूप दोगे वहाँ तुम मृत्युञ्जयबन जाओगे जहाँ तुम सात्विकता से रहोगे वहीं तुम्हारा जीवन पवित्र बनेगा।
हे ब्रह्मचारी! तुम्हें इस विद्या को लेकरके माता की आज्ञा का पालन करना है। माता की सेवा करना है, तुम्हें ऋणी नहीं रहना है कि मैंने इसविद्या का अध्ययन कर लियाहै तो मैं ऋणी रहता चला जाऊं। हे ब्रह्मचारी! देखो, वह प्राणी संसार में ऋणी होते हैं जो माता और पितरों की आज्ञा का पालन नहीं करते, जो अपनी परम्पराओं को स्वीकार

नहीं करते हैं वे मानव ऋणी कहलाते है। जो याग इत्यादि क्रियाओं में रत्त नहीं रहते हैं वे देवताओं के ऋणी कहलाते है। तुमने जिस विद्या का अध्ययन किया है कोई दिवस ऐसा नहीं रहा है, ब्रह्मचारी! जब तुमने याग न किया हो। तुमने प्राण विद्या को जानने के लिए याग का आश्रय लिया है। वास्तव में तुम्हें याज्ञिक बनना है। याग का अभिप्राय यह है कि सुगन्धको देना और दुर्गन्ध को नष्ट करने का नाम याग माना है याग का अभिप्राय यह हे कि तुम्हें अपने विचारों से सुगन्धी देना है, वैदिक साहित्य से तुम्हें सुगन्धी देना है। उसी सुगन्धी के द्वारा तुम्ळारा जीवन और गृह पवित्रता में परिणाम होता रहता है।

आचार्य ने, स्वाति ऋषि महाराज ने यह उपदेश देते हुए कहा इस विद्या को तुम्हें अणु और परमाणुओं में निहित करना है जिससे तुम्ळारा जीवन वैज्ञानिक बन जाएं और इसके पश्चात् तुहें अपने जीवन को आध्यात्मिकवाद में परणित कर देना है। आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं कि मौन रहना और मौन रह करके आत्मा में आत्मा का मनन करना है। मनन करते हुए, मौन रह करके, तुम्हें प्राण विद्या का अभ्यस्त बना रहना चाहिए तुम्हारा जीवन कभी सार्थक बनेगा। इसमें आध्यात्मिक वाद परणित होता रहे, बिना आध्यात्मिकवाद के प्राण विद्या को अपने में धारण नहीं कर सकते, यह अपने से दूरी हो जाएगी। इसलिए आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं? आध्यात्मिकवाद उसे कहते है कि आत्मा, आत्मा में समन करने वाला उसी में रत्त रह करके। मेरे शरीर में एक आत्म चेतना है जिसके आश्रित यह प्राण रहता है यदि आत्मा शरीर से निकल जाता है तो प्राण का भी ह्रास हो जाता है। यह प्राण गतियों में गति हो बन करके रह जाता है ज्ञान और प्रयत्न इसके द्वार से चला जाता है।

यह विद्यायें ऋषि मुनियों ने बड़े गम्भीर रहस्यतम से जानने का प्रयास किया। तो स्वाति मुनि ने अपना दीक्षांत उपदेश देते हुए कहा कि तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम आध्यात्मिकवादी बनो। आत्मा का चिन्तन करना, आत्म वेदना को जान लेना, ज्ञान और प्रयत्न दोनों का मिलान करते हुए प्राण इसमें जब समाहित हो जाता है तो प्राण विद्या तुम्हारे में सार्थकबन करके रहेगी और तुम अपने में सौभाग्यशाली बन जाओगे।स्वाति मुनि ने

कहा कि मेरे विचार में तो यही आ रहा है कि तुम दीक्षा लेरहे हो आज तुम दीक्षित बन रहे हो। दीक्षा का अभिप्राय यह है कि जब आचार्य के, जब गुरु के द्वार से जब ब्रह्मचारी का विच्छेद होता है अथवा वह आचार्य गुरुजनो के विद्यालय को त्यागता है तो उस समय वह दीक्षा ले करके गमन करता है। वह दीक्षा आचार्य देता है और दीक्षा का अभिप्राय यह हकि जिस विद्या का तुमने अध्ययन किया है, जिस विद्या को जाना है, उसको साकार रूप देना और साकार रूप देकर वके सत उपयोग में लाना यह तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हें अभिमान नही होना चाहिए क्योंकि यह जो विद्या है यह परमात्मा की धरोहर है।

एक एक परमाणुवाद में यह विद्या गमन कर रही है एक एक मानव के शरीरों में यह विद्या गमन कर रही है परन्तु यह परमात्मा की धरोहर है। जो इसविद्या को परमात्मा की धरोहर स्वीकार करता है वह महान बन जाता है औरजब इस विद्या को जान करके मानव में अभिमान आ जाता है, अभिमान में परणित हो जाता है, यह विद्या उससे दूरी चली जाती है और वह निष्क्रिय बन करके, अभिमानी बन करके, अपने अभिमान के कारण ही वह मानव मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ऋषि ने उपदेश देते हुए अन्त में एक वाक्य कहा कि तुम इसका अभ्यास करना और अभ्यास के साथ साथ तुम्हें अपमान से नहीं रहना है, तुम्हें अपने मानवत्व से रहना है। स्वाति ऋषि ने जब यह वाक्य प्रगट किया तो अंगद बड़े प्रसन्न हुए और ऋषि के चरणों की वन्दना करने लगे और ऋषि से कहा प्रभु! मेरे ऊपर आपकी करुणा होनी चाहिए जिस करुणा से मैं करुणामयी बना रहूँ मेरे में अभिमान न आये। क्योंकि अभिमान जब आता है जब विद्या और द्रव्य दोनों साथ साथ होते हैं। और द्रव्य का अभिमान होना ही द्रव्य को हीनता में पहुंचाना है और विद्या को अध्ययन में ला करके विद्या के ऊपर अध्ययन करना है तो आत्म तत्त्व से विमुख हो जाना है। ब्रह्मचारी ने यह वाक्य अन्त में कहा प्रभु! मैं चाहता हूँ आपकी करुणा मेरे ऊपर होती रहे, मैं प्रभु के राष्ट्र में अपने को स्वीकार करता रहूँ और मेरे हृदय में यह निष्ड्राबनी रहे कि यह संसारप्रभु का राष्ट्र है और प्रभु के राष्ट्र में न कोई

अभिमानी है, न कोई बुद्धिमान है।
परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान बड़ा नितांत माना गया है। वह इतना नितांत है कि मानव जन्म जन्मान्तरों में अध्ययन करता रहे तो उसकी प्रतिभा को जान नहीं पाता है। यह वाक्य गुरु और शिष्य परस्पर चर्चा करते हुए आचार्य के कुल को उन्होंने त्याग दिया। त्यागने के पश्चात् भ्रमण करते हुए अपने राष्ट्र में आ गए औरराष्ट्र में उस समय यह परम्परा मानी गई, हमारे यहाँ वैदिक परम्परा बड़ी विचित्र मानी गई है, जब ब्रह्मचारी अपने विद्यालय से सर्वत्र विद्या का अध्ययन करके जग गृह में प्रवेश करता है, ब्रह्मचारी बुद्धिमान हो करके जब आचार्य के कुल से गृह में माता पिता के कुल में प्रवेश करता है तो माता पिता उसका आदर करते हैं, माता पिता उसका स्वागत करते है। माता दीप के द्वारा उसका पूजन करने लगती है। पूजन का अभिप्राय वही आ रहा है कि उसका सत उपयोग करना।
ब्रह्मचारी ने आचार्य बन करके बुद्धिमान हो करके गृह में प्रवेश किया है। मातापिता आदर सहित उसका पूजन करते है। वे विद्यमान हो जाते है। हमारी वैदिक परम्परा में जो व्यवहार माना गया उसी प्रकार अंगद का पूजन हुआ। गृह में वह उस विद्या का अध्ययन भी करते रहे। प्रातः काल अध्ययन करके अपनी क्रियाओं में रत्त रहते थे।
मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब राम और रावण कासंग्रह हुआ था। बेटा! तुम्हें यह प्रतीत है जब वह संग्राम हुआ तो दूत के रूप में महाराजा अंगद रावण के राष्ट्र में पहुंचे थे। उन्होंने कहा यही विचारा थाकि राम और रावण दोनों का परस्पर एकोकीकरण हो जाए। क्योंकि विवाद के मूल में एक धृष्टता थी, निर्लज्ञता थी जो रावण के कुल को कलंकित कर रही थी। उसी आभा को ले करे जब वह पहुंचे तो उन्हेंने वहाँ, बलम ब्रह्मे दम्ब्रहे, जब रावण ने एकोकीकरण को स्वीकार नहीं कियातो उन्होंने कहा हे रावण! तुम्हें यह अभिमान आ गया है कि मेरे में बड़ा बल है और मेरे राष्ट्र में बड़े बलिष्ठ क्षत्रिय है, लो मेरा पग तुम दूरी करो। एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थित करो अंगद ने उसी बिद्या का प्रयोग किया था जिस विद्या का उन्होंने बारह वर्ष तक

ऋषि के आश्रम में अध्ययन किया था।

सर्वत्र प्राण को प्राणायाम के द्वारा ला करके उन्होंने अपने पग को स्थिति कर दिया। तो राजा रावण के राष्ट्र में कोई ऐसा बलिष्ट क्षत्रिय नहीं था जो उस पग को एक स्थान से दूसरे स्थान पर परणित कर सके। बहुत समय हो गया तो राजा रावण ने कहा कि मैं भी अपने बल को यहाँ प्रयोग करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा नहीं भगवन्! आप राजा हैं मैं दुत हूँ। राजा को अधिकार नहीं है कि वह दूत के पग को स्पर्श कर सके। रावण वहीं अपनी स्थली पर स्थित है और अपने में आश्चर्यचकित हो गए। देखो, इसको प्राणविद्या कहते है। वैदिक साहित्य में भिन्न भिन्न प्रकार की विद्याओं को वर्णन आता रहा है। मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा यहाँ एक विद्या नहीं प्राण की विद्या में परणित होने वाला ही दीपावली एक राग माना गया है, जिसे हम गान विद्या कहते है। उसी के गर्भ में एक मल्हार राग की प्रतिभा निहित रहती है। विद्या जब अध्ययन में लाई जाती है वैदिक मंत्रार्थ जब क्रियात्मक में लाया जाता है तो उसमें महानता का एक स्रोत बहता रहता है जिसको धारण करके मानव अपने में अमृत को प्राप्त करने लगता है।

मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देने नहीं आया हूँ विचार क्या? आज का हमारा वेदमन्त्र प्राण विद्या के सम्बन्ध में अपनी विवेचना कर रहा था। प्राण विद्या अपने में बड़ी सत्रिय बन करके रही है। प्राण विद्या के द्वारा नारद जी एक लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते थे। प्राण विद्या से ही परमाणुओं के एकत्रित करने से यन्त्रों का निर्माण किया जाता है और इन यन्त्रों के द्वारा एक दूसरे लोक में मानव प्रवेश करता रहा है। यन्त्रों के द्वारा भी इस प्रकार की प्रतिभा आई है। तो आज का हमारा विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में निरभिमानी बन करके मन्त्रों के द्वारा वैदिक विद्या का अध्ययन करते हुए परमपिता परमात्मा को जड़ और चैतन्यता में, दोनों में स्वीकार करके उसका जितना और मनन करना चाहिए, उसे अपने में धारण कर लेना चाहिए। मेरे प्यारे! आज का यह विचार क्या कह रहा है कि वैदिक विद्या केवल पूजा की पद्धति रही है और पूजा का अर्थ यह

है कि इस विद्या का अध्ययन करना, क्रियात्मकता में लाना यही उसी पूजा पद्धति मानी गई है। मेरे पुत्रों! देखो, अग्न्याध्यान करना, दोनों अग्नियों का समन्वय करना वही अग्नि का ध्यान करना है।

वही अग्नि के द्वारा मानव को अग्नि रूप बन करके उसको क्रियात्मक रूप देकर अपने अग्नि को धारण कर लेना है। वही अग्नि ब्रह्म अग्नि बन करके रहती है वह अग्नि प्राण के द्वारा, येचर्चाएं मैं कल तुम्हें प्रगट कर सकूंगा कि यह अग्नि ब्रह्म विद्या बन कर रहती है। ये चर्चाएं मैंने कई कालों में की भी है आगे भी करता हरूंगा। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं मैं तुम्हें कल प्रगट करूंगा। आज का विचार यह क्या कह रहा है कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, प्राण विद्या को अपने में साकार रूप देते रहे। प्राण विद्या से योगेश्वर बन जाता है लोक लोकान्तरों को अपने में धारण करने लगता है, बाह्य जगत में जाता है तो लोकप्रियता में परणित हो जाता है। यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं तो कल प्रगट करूंगा कि इस प्राण के द्वारा अग्नि के द्वारा यह ब्रह्म विद्या अग्नि को स्वीकार करके कैसे मानव पूजक बनता है। ये चर्चाएं मैं कल प्रगट करूंगा आज के विचारों का अभिप्राय यह कि जितना भी यह जड़ जगत और चैतन्य जगत है सर्वत्र में वहपरमपिता परमात्मा विद्यमान है उस परमपिता परमात्मा की महती अनन्तता को जान करे मानव को भी अनन्तवान बनना चाहिए। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। निवास स्थान : एन. एस. देसवाल ई 296, देवनगर 22 7 1988

४ 24 07 1988 पुष्प 56 सात्विक विचारों से वायुमण्डल की पवित्रता

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना जो संसार का नियंता अर्थात् निर्माणकरने वाला है उसकी महिमा का प्रायः वर्णन करते चले जा रहे थे क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसके गुणों

का गुणवादन कर रहा है, अथवा उसकी महिमा का गान गा रहा है। इसीलिए प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसकी अनंतता का वर्णन किए जा रहा है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है और याग उसका आयतन है उसका गृह है उसका सदन है यह उसी में निहित रहता है। मानो जितना भी जड़ जगत है औरचैतन्य जगत है इन दोनों के गर्भस्थल में वे परमपिता परमात्मा अपने यज्ञोमयी स्वरूप का वर्णन करते रहते हैं अथवा उसमें से एक प्रतिभा का जन्म होताहै जिसको जान करके मानव अपने में अनुभव करने लगता है कि प्रायः वह परमपितापरमात्मा का एक अनुपम स्रोत है जो वह रहा है अथवा जो गतिवान हो रहा है और उस गति की यह संसार अपने में धारण कर रहा है। प्रत्येक मानव गतिवान है परमाणुवाद भी गतिवान है। इसीलिए यहाँ प्रत्येक वस्तु गतिवान हो रही है तो इसीलिए उस परमपिता परमात्मा को गतिवान कहा गया है, यज्ञोमयी कहा गया है क्योंकि आज का हमारावेद मन्‍ा याग के सम्बन्ध में वर्णन कर रहा था। हमारे यहाँ वैदिक साहित्यमें जहाँ यागों का चयन होता रहा है वहाँ यह भी वर्णन होता रहा है। विश्वम् ब्रह्मणाम ब्रही व्रणास्यताः मानो यह संसार एक प्रकार की आभा में निहित हो रहा है और उसके ज्ञान और विज्ञान को अपने में धारण कररहा है और उसको बाह्य रूप में भी लाने का प्रयास करता रहा है। तो मुनिवरों! देखो, आज का हमारावेदमन्त्र जहाँ ज्ञान और विज्ञान की और परमात्मा की महिमा का गान गाने के लिए सदैव तत्पर रहा है वहाँ कई समय से प्राण के ऊपर हमारा विचार विनिमय प्रारम्भ होता रहता है क्योंकि प्राण अपने में बड़ा अनूठा है, परमात्मा की सर्वत्रता में निहित रहने वाला है। हमारे यहाँ प्राण का बड़ा महत्त्व माना गयाहै। जब हम वैदिक साहित्य में अथवा हम जब ज्ञान औरविज्ञान में रमण करने लगते हैं तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात आता है कि यह संसार सर्वत्र एक प्राण से गुथा हुआ है जैसे मानव का जीवन प्राण से गुथा हुआ है वह गतिवान है, गति देतारहता है और उसी की गति से गतिवान हो करके मानव ज्ञान और प्रतिभा में सदैव रत्त रहता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने परम्परागतों से प्राण के ऊपर बड़े उल्लेखनीय विचार दिए

हैं।

मुझे भारद्वाज मुनि का काल स्मरण आता रहता है जहाँ उनके आश्रम में प्राण विद्याके ऊपर बड़ा अन्वेषण होता रहा वहाँ प्राण को अपान और अपान को प्राण में समन्वय करने की प्रतिक्रियाओं में सदैव रत्त रहा है। आचार्यजन प्रातः कालीन ब्रह्मचारियों के मध्य विराजमान होकर यह कहा करते थे कि यदि हम परमपिता परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं और अपने मानवीयतव को जानना चाहते हैं तो प्राण की प्रतिक्रियाओं में रत्त रहना होगा। उसी में निहित हो करके हम यह विचार कर सकते है।

प्राण कहीं कहीं संकल्पमयी प्राण अपने में गमन करता रहता है। योगेश्वर संकल्प करता है और संकल्प करके मानो संकल्पीमयी प्राण का अभ्यास करता है। वह जब अभ्यास करता है तो अभ्यस्त होता हुआ सकल्पीमयी इस सर्वत्र जगत को अपने में स्वीकार कर लेता है। यह प्राण ही है जो एक दूसरे से प्रीति और गमन कर रहा है। प्रीति में गमन कर रहा है जैसे संकल्पोमयी प्राण है संकल्पोमयी जगत है क्योंकि वह सकल्प में एक प्रकार का सूत्र है जैसे ब्रह्मसूत्र में यह ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है ब्रह्म सूत्र में एक एक मण्डल एक एक परमाणु पिरोया हुआ है, इसी प्रकार प्राणसूत्र में मानव का जीवन पिरोया हुआ है और एक दूसरे में श्रद्धामयी जगत पिरोया हुआ है क्योंकि ज्ञान और प्रयत्न दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते है।

एक दूसरे की आभा में सदैव निहित रहते हैं। इसी प्रकार एक यज्ञमान अपने गृह में संकल्प कर रहाहै कि मैं अपने गृह में एक याग का आयोजन करना चाहता हूँ। तो वह जब संकल्प करता है वह संकल्प दूसरों के प्रति प्रतिभाषित होने लगता है। जहाँ प्राणकी प्रतिभा है, वहां मन को भी गमन कर सकते हैं परन्तु गमनम् ब्रहे प्राणः वह जो गमन है वह प्राणके द्वारा होता है और मन ज्ञान की प्रतिभा को लेकर के गमन करता है। यह प्राण ही है जो संकल्प का एक स्रोत माना गया है संकल्प ही इस जगत में महान बनाता है।

जब किसी भी काल में ऋषि मुनियों ने प्राण के ऊपर अध्ययन प्रारम्भ किया वहाँ ज्ञान के ऊपर भी अध्ययन प्रारम्भ किया है परन्तु ज्ञान और क्रिया दोनों एक सूत्र में आ

करके संकल्पोमयी बन जाते है। यह जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड हैयह सब एक संकल्प मात्र है। परमपिता परमात्मा का, जो चैतन्य देवतवम् देवतववान हो रहा हैवह भी एक प्रकार का संकल्प है। माता पिता भी संकल्प में निहित रहते हैं, पति पत्नी भी संकल्प में निहित रहते हैं, राजा और प्रजा भी संकल्प में निहित रहते हैं जितना भी यह जगत है यह सब एक संकल्प मात्रमाना गया है। और वह संकल्प तीन वस्तुओं से मानो तीन रूपों में उसका जन्म होता है। सबसे प्रथम ज्ञान है, ज्ञान के पश्चात् क्रिया है और दोनों के मध्य में गमनम् ब्रह्माः व्रतः ज्ञान और प्रयत्न देखो, अपने में गमनता को प्राप्त होते रहे हैं और यही मूलमयी बन जाते हैं कि जितना यह जगत है यह दोनों ही तरंगों में निहित रहता है इसे हम ज्ञान और प्रयत्न कहते हैं। इनमें ही ज्ञान है इसमें ही प्रकृति का सर्वत्र स्वरूप विद्यमान रहता है। प्राण का भी सर्वस्व रूप विद्यमान रहता है जिससे ज्ञान और प्रयत्न को ल करके आत्मा इनसे स्पर्श मात्र केवल सन्निधान मात्रसे यह संसार एक गमनता को प्राप्त हो रहा है। मेरे प्यारे! देखो, इसी प्रकार यज्ञों का संकल्प होता है यज्ञमान अपने पुरोहित से कहता है कि आओ भगवन्! मैं आपको कुछ समर्पित करना चाहता हूँ। पुरोहित कहता है।

कि जो तुम्हारी इच्छा हो वह प्रदान करो। तो यज्ञमान संकल्पों में उसे दक्षिणा प्रदान करता है। दक्षिणा जो स्वरूप हमारे यहाँ माना है आचार्यों ने, बड़ी ऊँची कल्पनायें की हैं और आचार्यों ने बड़ा संकल्प किया है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस समय राजा सगर के यहाँ अश्वमेध याग हुआ था। जब वे दक्षिणाप्रदान करने लगे, तो उस समय कपिल मुनि महाराज उस याग के ब्रह्म बने थे, तो उन्होंने यही स्वीकार किया कि मैं तुम्हारे राष्ट्र में अहिंसा परमोधर्म चाहता हूँ, तुम्हारा यह याग अश्वमेध है और इसे राजा करता है प्रजा के सुखार्थ के लिए और अपने सुखार्थ के लिए। देखो! यागों से कैसा सुखद उत्पन्न होता है क्योंकि राजा की कीर्ति होनी प्रारम्भ हो जाती है। जितना भी राष्ट्र ब्रह्मवेत्ता होगा ब्रह्मज्ञानी हागा और ब्रह्मज्ञानी के साथ साथ उसका क्रिया कलाप परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को निहारने वाला होगा उतनीराष्ट्र की कीर्त्ती बलवती होती चली जाती है, कीर्ति बलवती हो जातीहै। राजा जितना ब्रह्मज्ञान

से दूरी रहता है यशोधर्वा से अहिंसा से दूरी रहता है उतनी ही राष्ट्र की अपकीर्ति होती है राजाके राष्ट्र में अनुशासन की हीनता हो जाती है। और राष्ट्र में जब अनुशान की हीनता हो गई तो राष्ट्र की प्रवृत्तियां समाप्त हो जाती है राष्ट्र अपने में मृत्यु की प्राप्ति हो जाता है।

मेरे पुत्रो! देखो, मैं तुम्हें विचार देता हुआ दूरी चला गया हूँ। विचार केवल यह प्रारम्भ हा रहा था कि महाराजा! सगर से और उनके पुत्र सुखमंजस से महर्षि कपिल ने यह वाक्य कहा था कि मैं तुम्हारे राष्ट्र में अहिंसापरमोधर्म चाहता हूँ। क्योंक हिंसा का प्रारम्भ वाणी से होता है। इसलिए राजा के राष्ट्र में वाणी सजातीय होनी चाहिए, वाणी मकें माधुर्यपन वाणी में केवल मानवीय दर्शन होना चाहिए। द्वितीय अहिंसा का स्वरूप यह कि वाणी के अनुसार राष्ट्र में वह प्रवृत्ति होनी जिससे वह गमन कर सके उससे राष्ट्र में अनुशासन की प्रवृत्ति बनी हरती है। परन्तु देखो! तृतीय ध्वनि के ऊपर अनुसन्धान करने वाले विज्ञानवेत्ता होने चाहिए। यह वाणी, ये शब्द, ये ध्वनि अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके कहाँ कहाँ चली जाती है? यह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके द्यौ भू भूवः और स्वहुः ये तीन प्रकारके लोक कहलाते हैं मानोंये तीनों उस शबद से सजातीय हो जाते है।

यही असजातीय बन जाते हैं यदि वपाणी में, ध्वनि में पवित्रता नहीं है, ध्वनि में दर्शन नहीं है, तो यह ध्वनि भूर्भुव स्वहः इन तीनों लोकों को दूषित कर देती है। उससे वायु मण्डल अपवित्र बन जाता है। वायुमण्डल के अपवित्र होने पर यह समाज निष्क्रिय बन जाता है। तो विचार विनिमय क्या? वायुमण्डल दूषित नहीं होना चाहिए। वायुमण्डल के दूषित होने के कारण एक ध्वनि है, एक शब्द है, वह गृह में, जैसा मैंने तुम्हें कई कालों में प्रकट करतो हुए कहा था जैसे एक स्थान एक गृह है यदि उस गृह में दर्शनों का अध्ययन होता हो, दर्शनों का उद्गीत गाया जाता हो, राजा वहाँ ब्रह्मज्ञान के लिए अध्ययन करने वाला हो तो वह आसन, वह गृह, वह आश्रम सुपवित्र होता है। देखो! उसी ध्वनि के कारण उनके विचारों से यह पवित्र बनता रहा है। यदि उसी विचारधारा को न ले क रके द्वितीय विचारधारा जब बलवती हो जाती है, हिंसा की प्रवृत्ति उसी आसन पर

आ जाती है, दुरिता में विचारी आने प्रारम्भ हो जाते हैं, वहाँ सदैव अश्रुपात होते है। तो उस आसन पर कदापि पवित्रता नहीं होती और वह वायुमण्ठल उसका दूषित रहा है।

मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने तुम्हें कई कालों में प्रकट कराते हुए भी कहा था, एक समय महर्षि कामभुषुण्ड जी के मन में यह आई कि हम अपने ऐसे आसन पर विद्यमान हो जहाँ ऋषि मुनियों का गमन होता रहा हो, जहाँ उनकी तपस्वी स्थली बनी रही हो। ऐसे आसन पर विचार विनिमय करने के लिए महर्षि लोमश मुनि महाराज के द्वारा पहुंचे उन्होंने कहा, हे प्रभु! मेरे हृदय की ऐसी कामना जागरूक हो रही है कि हम तपस्वी बनें और तपस्या के लिए ऐसा आसन चाहिए, जहाँ हम एक स्थली पर विद्यमान हो करके परमात्मा का चिन्तन करते वायु मण्डल को, वायुमण्उल हमसे पूर्व ही मान हो और उस वायुमण्डल में विराजमान हमसे पूर्व ही महान हो और उस वायुमण्डल में विराजमान हो करके हम तपसवी बनें। वे ऐसे आसन को जानने के लिए तत्पर हुए परन्तु वह बहुत दुषित होने के पश्चात् एक ऐसे आसन पर चले गएं जहाँ विराजमान हो गए और विराजमान हो करके, क्योंकि उन्होंने तरंगवाद के ऊपर बड़ा अनुसन्धान किया हुआ था, वह तरंगबाद वृत्तियों में रत्त रहते थे, जैसे ही वहाँ विराजमान हुए वह जब साधना में परिणाम होने लगे प्राण और मन को एक क्रियावान बनाना चाहते थे तो वहाँ तरंगें उन्हें स्पर्श करने लगीं। वे तरंगें कैसी थी? वहाँ कोई तपस्वी नहीं आया था। वहाँ एक दुराचारिणी प्राणी रहता था जो नाना मांसों का भक्षण करता था वह तमोगुणी प्राणी था उसकी तमोगुणी तरंगें, उस वायुमण्डल में गमन करती रहती थीं। जब महर्षि कागभुषुण्ड जी तपस्या के लिए परणित होने लगे तो रात्रि समय वह तरंगें उन्हें स्पर्श करने लगीं। वे शब्द उनके शब्दों में गमन करने लगे, उनकी तपस्या समाप्त होने लगी। उनकी तपस्या ने जहाँ होना था वहाँ तपस्या क्षीण होने लगी तो उन्होंने कहा ब्रह्मणे! हे प्रभु! हे लोभ हे ऋषिवर! यहाँ तो तरंगवाद बड़ा दूषित है। महर्षि लोमश बोले कि हां यह तपस्वियों की स्थली नहीं रही है यहाँ से हमें गमन करना चाहिए। जहाँ तपस्विनयों की स्थली हो वहाँ गमन करना चाहिए। तो वहाँ एक गन्धर्व

उनके समीप आया तो गन्धर्व से कागभुषुण्ड जी ने कहा कि महाराज! तुम्हारी बहुत विशाल आयु है। तुम यह निर्णय दे सकते हो कि जहाँ हम विराजमान हैं यहाँ कौन गमन करता था? उन्होंने कहा प्रभु! यहाँ 50 वर्ष पूर्व एक भीलोस्त रहता था और यहाँ हिंसा करता था और अपनी कामोपूर्ति और अपनी रसना की पूर्ति में लगा हुआ था, वहीं तरंगें यहाँ हमें भी स्पर्श की थी। महर्षि लोमश इत्यादि ने कहा कि विचार बड़े विकृत है, इस आसन को त्याग देना चाहिए। महर्षि कागभुषुण्ड जी और लोमश जी ने उस आसन को त्याग दिया। त्याग देने के पश्चात् वे उस आसन पर पहुंचे जहाँ महर्षि रेवक के महापिता सोमतिति महाराज तपस्या करते थे। वे जब उस आसन पर विराजे तो वहाँ एक गऊओं का रक्षक उस आसन पर विराजमान होता था और न्याय करता था, वह गऊओं को प्रीति से स्नेह करता था। जब कागभुषुण्ड जी ने उस आसन को ग्रहण कर लिया, रात्रि समय वहाँ वास किया तो तपस्वियों की तरंगें आने लगी। तो विचार विनिमय क्या? देखो, विचारधारा से यह वायु मण्डल यह राष्ट्र, यह समाज, गृह सब विचारधारा से ऊंचे बनते हैं। इसीलिए राजा के राष्ट्र में राजा को बुद्धिमान होना चाहिए और ऐसी स्थलों को चुनौती प्रदान करनी चाहिए जहाँ वे अहिंसा परमोधर्म को राष्ट्र में स्थापित कर सके। अहिंसा परमोधर्मः का अभिप्राय यह है कि वह अपनी कामना पूर्ति न करता हुआ ब्रह्मज्ञान में सदैव रत्त रहना चाहिए। ब्रह्मज्ञान ही मान को ऊर्ध्वा में, देवतव में ले जाता है यदि ब्रह्मज्ञान नहीं है तो उसका देवतव नहीं रह पाता। इसीलिए हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने सृष्टि के प्रारम्भ में याग की रचना की है याग का एक क्रियाकलाप बनाया है जो देवतव है। इन याग को हमारे यहाँ देवतव कर्म कहते हैं वह सर्वत्र क्रियाकलापों में महान है। हमारे यहाँ ऋषि मुनि जब भी तपस्या के लिए गमन करते तो वहाँ याग करते थे। वहाँ साकल्य भयंकर बनों से एकत्रित करना और वहाँ साधना के लिए वे मन्त्रों का उद्घोष करते, अग्न्याधान करके अग्नि का चयन करते थे क्योंकि अग्नि ही ऐसा एक वाहन है जिस वाहन पर शब्द विद्यमान हो करके द्यौ में प्रवेश कर जाता है। उस वाहन कोहमें विचारना है। वह अग्नि अब्रतम ब्रह्मा अग्ने व्रतम देवाः वह याग का वाहन बना हुआ है, देवताओं का मुखार बिन्द बना हुआ है, प्रकृति

की हवि बनी रहती है। तो इसलिए हमें विचारों में यागम ब्रह्मा लोकाम यह जो याग है यही मानव को ऊंचा बनाता है। इसलिए प्रत्येक मानव अपने विचारों से याग करने वाला हो।

एक समय महर्षि याज्ञवल्क मुनि महाराज के यहाँ कुछ ब्रह्मचारी जन पहुंचे और ब्रह्मचारियों ने यह प्रश्न किया कि महाराज! याग हम कैसे करें। तो महर्षि याज्ञवल्क मुनि महाराज ने यह उत्तर दिया कि याग के द्वारा सब साकल्य होना चाहिए, यज्ञशाला का निर्माण होना चाहिए, यज्ञशाला में वह त्रिवर्धा होना चाहिए ज्ञान, कर्म और उपासना ही तीन प्रकार की मेखला होनी चाहिए। समुद्राणि ब्रह्मः देखो, जलाशय होना चाहिए। जलाशय भी जैसे यह प्रकृति एक प्रकार की है यह पृथ्वी यज्ञशाला है इसके अन्तर्गत मेखला के रूप में समुद्र विद्यमान है वह जो विष उगलने वाली पृथ्वी है यह अपने में धारण करने वाला धारयामि बनाने वाला समुद्र है, जो इसके विष को अपने में शमन करता रहता है, अपने में ग्रहण करता रहता है तो इसीलिए उसकी वृत्तियों में रत्त रहना चाहिए। जब ऋषि ने यह वाक्य प्रगटम् ब्रहे व्रतम ब्रह्मचारियों ने जब यह कहा तो ऋषि ने कहा कि तुम विराजो। वे विराजमान हो गए। उन्होंने कहा, अब तुम प्रश्न करो, क्या चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! हम याग कैसे करें? उन्होंने पुनः पूर्व भी यह उत्तर दिया कि याग यदि करना है तो तुम्हें सर्वत्र मेखला के रूप होना चाहिए और मेखला बन करके तुम्हारे यहाँ प्रोक्षण होना चाहिए, पात्र होना चाहिए साकल्य समिधा होनी चाहिए सर्वत्र विचार होना चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए। ब्रह्मचारियां ने उपस्थित होकर कहा, प्रभु! यदि ये वस्तु न हों और याग हमें करना है। उन्होंने कहा ये न हो तो जल के तट पर विराज हो करके तुम जल के द्वारा स्वाहा कह करके आहुति प्रदान कर सकते हो। उन्होंने कहा प्रभु! उस्कम ब्रह्माः इससे पूर्व तुम अग्नि के द्वारा, समिधा को जागरूप करके तेजोमयी बना करके समिधा की आहुति प्रदान कर सकते हो। उन्होंने कहा प्रभु! समिधा न हो तो जलम् ब्रह्माः देखो, जल की आभा और यदि जल भी कहीं प्राप्त न हो तब क्या करें? ऋषि ने कहा यदि जल भी न हो, समिधा भी न हो, सर्वस्व साकल्य भी न हो तो उसके पश्चात् तुम एकांत स्थली में विद्यमान हो करके वाणी से उद्घोष करो

और वाणी के द्वारा यज्ञ के मन्त्रार्थों का पठन पाठन करो और उसके द्वारा स्वाहा उच्चारण करते रहो। यह जो स्वाहा शब्द है यह वायु मण्डल को पवित्र बनाता है। क्योंकि वायुमण्डल में जो तरंगे होती है और मानव के हृदय की तरंगे दोनों को समन्वय हो जाता है और दोनों का समन्वय हो करके अपने में प्रतिवृत्तियों में रत्त रहती है। उन्होंने कहा प्रभु! यदि हम ऐसा भी न कर सकें? उन्होंने कहा कि मन ही मन में उद्घोष गाते रहो वेद मन्त्रों का उच्चारण करते रहो। यह भी न हो तो तुम किसी स्थली पर दर्शनों की चर्चा करते रहो जिससे तुम्हारी वाणी का दुरूपयोग न हो और और वाणी का सतउपयोग हो करके वह यज्ञ में परणित हो जाएं। ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो ब्रह्मचारियों ने ऋषि के चरणों की वन्दना की। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! मेरे पुत्रों! देखो, विचार विनिमय क्या कि हम याग में परणित हो जाएं। इसीलिए राजा के राष्ट्र में एक नियमावली होनी चाहिए और रजा स्वयम आदि साकल्य से अग्नि के द्वारा भी याग न करने वाला हो तो वह प्रातःकालीन अपने में चिन्तन व मनन करता हुआ ब्रह्मज्ञान का अध्ययन करता हुआ साकल्य संकल्पोमयी बनता चला जाएं कि यह प्रजा मेरी संकल्प है। जैसे परमपिता परमात्मा का यह सृष्टि चक्र है वह संकल्प मात्र माना गया है। इसी प्रकार यह भी मेरी संकल्प मात्र माना गया है। ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो अपने में मौन हो गएं तो विचार क्या कि प्रत्येक मानव अपने में मानवीयता का अध्ययन करता रहे, मानवीयता की चर्चा करता रहे। जब मेरे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् देवः हिरण्यम रथमः वायु गतम मन्त्रः वाचनं नमः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे मानो उसमें परणित कर रहे थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के विचारों की परम्परागतों से बड़ी विचित्र उड़ानें उड़ी जाती हैं और याग के सम्बन्ध में इनका बड़ा अध्ययन रहा है। परम्परागतों से ही, भिन्न भिन्न प्रकार के यागों के चयन की इनकी प्रवृत्ति बनी रही है। आज मैं याग के सम्बन्ध में केवल इतना उच्चारण करना चाहता हूँ कि आज जहाँ हमारी यह वाणी प्रवेश कर रही है, मृतमण्डल में जा रही है, वहाँ एक

याग को मैंने दृष्टिगत किया है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ कि मेरा अन्तरात्मा यज्ञमान के साथ रहता है और मैं यह कहता रहता हूँ हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे क्योंकि यह जो काल चल रहा है यह बड़ा भिन्न चल रहा है। यह जो वायुमण्डल गमन कर रहा है बड़ा विचित्र है क्योंकि आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव राष्ट्र के लिए अपना विचार दे रहे थे कि राजा को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए राजा को ब्रह्म ज्ञान में प्रवृत्ति होनी चाहिए जिससे समाज में उसकी प्रतिष्ठा हो परन्तु आधुनिक जगत बड़ा विचित्र है। इसमें ब्रह्मज्ञान तो बहुत ही दूर है अपने नित्य प्रति के क्रियाकलापों में भी मानव उसका भी नहीं जानता कि हमें किस प्रकार प्रातःकाल अपने आसन को त्यागना चाहिए, किस समय त्यागना चाहिए और त्याग करके हमें क्या क्या करना चाहिए उसको उसमें भी भिन्नता है। क्योंकि मैंने यह वाक्य बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रकट कराए थे। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव याग के सम्बन्ध में राजा सगर के सम्बन्ध में उच्चारण कर रहे थे। महाराजा सगर सूर्य उदय होने से पूर्व तारा मण्डल की छाया में अपने आसन को त्यागते और वे गमन करते गमन करके, गतिवान हो करके, अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, प्रभु का चिन्तन और मनन करते, ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में अध्ययन करते रहते थे, अध्ययन की प्रतिक्रियाओं में सदैव महानता में गमन करने वाला विचार रहता और वह ब्रह्मज्ञान ही राजा का नम्र बना करके प्रजा को महान बनाता और यागों में प्रवृत्ति बना देता है। परन्तु आधुनिक काल का जो राष्ट्र, आधुनिक काल की जो राष्ट्र प्रणाली है, वह उससे बड़ी भिन्न है। ब्रह्मज्ञान तो देवताओं का मार्ग है और दैत्यों का जो मार्ग है वह आहार और व्यवहार को अपवित्र बनाना ही अकृतियां कहलायी जाती है। यह अराष्ट्रीय विवेचना है आज इसीलिए राजा के राष्ट्र में प्रत्येक मानव दुखित हो रहा है। द्रव्यपति भी दुखित है, द्रव्यहीन भी दुखित है, बलिष्ठ में दुखित है, और जो बलहीन है वह भी दुखित हो रहा है। उसके मूल में क्या है? क्योंकि राजा स्वयं दुखित रहता है। जब राष्ट्र प्रणाली दुखित रहती है विचारधारा दुखित रहती है तो प्रजा उसी के अनुसार बरतती रहती है। देखो! आहार व्यवहार दोनों दूषित होने से मानव दुखित हो रहा है। यह विचारधारा मैंने कई काल में प्रकट की कि

राजा यदि अपने राष्ट्र को आधुनिक काल में भी ऊंचा बनाना चाहता है तो एक विचारधारा से प्राणी रहने चाहिए, विचारों में भिन्नता रहती है परन्तु उसके साथ साथ क्रियाकलाप एकोकीकरण में रहना चाहिए, यदि राजा का राष्ट्र ऊंचा बनना चाहता है तो! परन्तु इस आभा में प्रत्येक मानव आधुनिक काल का जगत, भगवन्! इससे दूरी गमन कर रहा है।

यज्ञमान के प्रति मेरा अन्तर्हृदय रहता है। हे यज्ञमान! तेरे गृह में द्रव्य का सत उपयोग होना चाहिए जितना भी द्रव्य का सत उपयोग होता रहेगा उतना तेरा गृह पनपता रहेगा। प्रत्येक मानव के गृह में द्रव्य का सतउपयोग होना चाहिए। प्रत्येक मानव के गृह में द्रव्य का सतउपयोग होना चाहिए। सतउपयोग ये कि देवतव के लिए द्रव्य का उपयोग किया जाएं जिससे देवतव भावना हृदय में, अन्तरिक्ष में, भरण हो जाएं जिससे अशुद्धता को निगल जाएं और अशुद्धता का वह शमन कर सके। आज का विचार ये कि हे यज्ञमान! तेर जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे ऐसी मेरी सदैव कामना रहती है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो बड़ी विचित्र उड़ान उड़ते रहते हैं पुरातन काल की, कहीं राजा सगर की। मैं तो इस आधुनिक काल की भी उड़ान पूर्णरूपेण नहीं उड़ सकता क्योंकि बड़ा विचित्र जगत चल रहा है। आज का विचार केवल इतना कि प्रत्येक मानव को अपने में विचारशील बन करके द्रव्य का सदुपयोग करना चाहिए। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे मानव!ीयता सदैव तेरे अन्तर्हृदय में प्रवेश करती रहे। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बड़े सुन्दर भव्य विचार प्रकट किए आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम अपने मानव और अपनी वृत्तियों को ऊंचा बना करके वायुमण्डल विचारों से पवित्र बनता है और उन विचारों में याग भी आता है। इसलिए प्राण, ज्ञान और प्रयत्न के मध्य में प्राण व्रते, प्राण गमन करता रहता है। इसी लिए प्राणायाम के द्वारा मन को एकाग्र करना, योगेश्वर बनना है। जितने तपस्वी और योगी समाज में होंगे उतना ही समाज पवित्र बनेगा, राष्ट्र ऊंचा बनेगा। आज का वाक् अब समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। समाप्त श्री

नफेसिंह देसवाल करोल बाग, नई दिल्ली 24 7 1988

५   22 09 1988 पुष्प 57 जड़ भरत

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोह रवेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गएं हैं कोई वस्तु ऐसी नहीं है जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हो। हमारे यहाँ उस परमपितापरमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है जो इस संसार का रचियता है, नियन्ता है, निर्माण करने वाला है। उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गान एक एक वेद मन्त्रगा रहा है और एक एक तरंग मानो उसकी महानता का वर्णन कर रही है। एक तरंग चन्द्रमा से गमन करती है और वही तरंग सब पृथ्वी के ऊपर अमृत को बखेरती है और वही तरंगे सूर्य से गमन करती हैं, वे इस पृथ्वी पर ऊर्ज्वा को बखेर देती है। मानो, वह चन्द्रमा और सूर्य दोनों की प्रतिभा एक दूसरे से ओत प्रोत हैं। वैज्ञानिक जन अपनी परिनिधी में जब विराजमान हो करके विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं तो एक तरंग का जब विभाजन करते हैं, तो एक परमाणु का विभाजन करते हैं, उस एक परमाणु में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। यन्त्रों के द्वारा एक परमाणु में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ जाना हमें यह सिद्ध करता है। कि परमपिता परमात्मा का जो अनन्तमयी जगत है मानो, एक एक परमाणु में यहीं एक एक तरंग में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। जैसे मानव का एक एक शब्द है उस शब्द में हो उसका चित्र है, उसका क्रिया कलाप है मानो, वही उसमें ओत प्रोत हो रहा है और वही उसमें गमन कर रहा है। बेटा! वे परमपिता परमात्मा कितना अनन्त और कितनी महिमा वाला है एक एक बिन्दु में चित्र दृष्टिपात आते हैं एक एक परमाणु में मानो सहस्त्रों चित्र दृष्टिपात आते हैं।

आज मुनिवरों! मे। विज्ञानके वांग्मय में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ यह तो एक ऐसा अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है, अनन्तमयी विचार है कि इस विचार विनिमय करते हुए मानव,

अपने में अपनेपन का ही भान करने लगता है, उसी में रत्त हो जाता है। तो मुनिवरों! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है? हे परमात्मन्! हे आनन्दमयी! श्रोत्रीय आभा में रत्त होने वाले देव हम आपकी महिमा का गुणगान गाते हैं और वेद का आश्रय ले करके हम अन्धकार को नष्ट करना चाहते हैं। मानो अन्धकार हमारे हृदयों में चला जाएं और हमारा जीवन प्रकाश में रत्त हो जाएं। तो मुनिवरों! हम उस परमपिता परमात्मा की महती का गुणगान गाते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार की महानता उसकी रचना के ऊपर सदैव विचार विनिमय करते रहते है और एक एक वेदमन्त्र का उससे समन्वय और मिन करते हुए अपने में हम यह स्वीकार करते रहते हैं कि प्रायः वह परमपितापरमात्मा एक महान अनन्तमयीज्योंति वाला है। हम ज्योतिवान को अपनी ज्योति में धारणाकरके अपने में ही मानो उस प्रभु में ध्यानावस्थित हो जाते हैं ऐसा बेटा! हमारा यह विचार वेद का मन्त्र कहता है। तो आओ मुनिवरों! आज मैं विशेषता में न जाता हुआ विचार केवल यह कि हम अपने उस प्रभु का गुणगान गाते हुए औरउसकी यज्ञोमयी प्रार्थनपा करते हुए, क्योंकि यह जो ब्रह्माण्ड है यह उस परमपिता परमात्मा का यज्ञोमयी स्वरूप हमें दृष्टिपात आता है और उस याग को दृष्टिपात करते रहते है जो याग प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया। मानो, उसकी उसको रचना में लाने के लिए तत्पर रहें।

मुनि, देखो, अग्नि अपने स्वरूप में क्रिया कलाप कर रही हे, आपोमयी ज्योति अपने में क्रिया कलाप कर रही है, पृवि अपने मं क्रिया कलाप कररही हे मानो, यह जो प्रथम ब्रह्म वायस्ताः, यह वायु अपने स्वरूप में गमन कर रही है तो हम उस परमपितापरमात्मा की महती को उसमें दृष्टिपात करते है कि एक दूसरे से कैसे कटिबद्ध हो रहे है। कैसे एक दूसरे से गुथा हुआ यह संसार, यह यज्ञोमयी जो श्रेष्ट क्रिया कलाप हो रहा हे, एक दूसरे से गुथा हुआ दृष्टिपात आताहे एक परमाणु है उस परमाणु में एक परमाणु गमन कर रहा है वह परमाणु अपने में गमनता को प्राप्त होता हुआ अपनी आभा में निहित हो रहा है। तो मेरे पुत्रों! देखो, हम जब यह विचार विनिमय प्रारम्भ करते है कि यह एक दूसरा परमाणु एक दूसरे में सुगठित हो रहा है, एक विचित्रता में गमन

कर रहा है, प्राणी प्राणी में गमन कर रहा है। यह बेटा! कैसी प्रिय यज्ञशाला है? जैसे एक साकल्य दूसरे साकल्य से मिलन करता हुआ एक दूसरे में मानो, कटिबद्ध हो रहा है, एक दूसरे में अभ्योउदय हो रहा है तो जब हम यह विचारते हैं कि हमारे मानवत्वम में भी इसी प्रकार है। मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! महर्षि शाकल्य मुनि आश्रम में एक समय एक अनुसन्धान हो रहा था। वह अनुसन्धान यह हो रहा था कि हमारे इस शरीर में कितने परमाणु, कितने हमारे वंशलजी के परम गुण विद्यमान है।
महर्षि शाकल्य मुनि महाराज के यहाँ महर्षि टोनिक ऋषि महाराज ने और स्वाम्भुक ऋषि महाराज ने बेटा! इन तीनों ने अनुसन्धान करना प्रारम्भ किया। अनुसन्धान करते रहे तो देखो, वहाँ महर्षि श्वेत मुनि महाराज जो उस समय अपने काल के बड़े विज्ञानवेत्ता थे, वे श्वेतु ऋषि महाराज आश्रम म ेपधारे। उनके यहाँ नाना प्रकारके यन्त्र भी विद्यमान थे। तो देखो, जब चित्त के मण्डल का अध्ययन करने लगे, चित्त के मण्डल को साक्षातकार लाने लगे तो उसमें जब अपने चित्रों का दर्शन करने लगे तो बेटा! अपने बहुत से बंशलजों का रक्त, रत्त का बिन्दु रक्त में परमाणु, परमाणु में चित्र और चित्र को यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात करने लगे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहाहै कि शाकल्य मुनि और श्वेतु मुनि महाराज का यह अपने में निर्णय किया हुआ एक सर्वोवृत्त था कि अप्रम ब्रेहे, मानों उन्होंने लगभग करोड़ों वंशलजों के प्रवाह शरीर में दृष्टिपात करते रहे। करोड़ों वंशलज करोड़ों पिता, महापिता पड़पिता इस प्रकार उन पिताओं के रक्त हमारे शरीर में गमन कररहे थे। इसीलिए बेटा! भिन्न भिन्न प्रकार की प्रतिभा, भिन्न भिन्न प्रकार के विचारों में मानव सदैव रत्त रहा है। यही साकल्यमुनि महाराज अपने में कितेने किंचित रहे और अध्ययन करते करते उन्हें बड़ा विशेष विवेक हो गया जब विवेक हो गया तो स्वातु मुनि महाराज तो विज्ञान की शिक्षा का अपने विद्यालय में अध्ययन कराते थे। मेरे पुत्रों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है कि वही शाकल्य मुनि महाराज सतो युग के काल कामानो देखो, उनकी प्रतिभा प्रायः दृष्टिपात आती रहीहे। उनका साहित्य, उनकाविचार बड़ा भव्य रहा। अन्त में जब उन्हें विवेक हो गया तो विवेक हो जाने के पश्चात् अप्रतम ब्रह्मणा व्रातेः सेवाः, वे मोक्ष के निकट चले गए। मानो, अपने में अध्ययन

करते करते अपने जीवन का और बाह्य आन्तरिक जगत् दोनें का अध्ययन करके दोनों से विवेक में प्रवेश करने पर मानो, मोक्ष की पगडंडी को जाने के लिए तत्पर हो गए तो मुनिवरों! देखो, अपने आश्रम में विश्राम से दनद्रहे, वे अपने में ही मानों अपना ध्यान करते रहते हैं।
एक समय एक दिवस ऐसा व्यतीत हुआ कि कौस्तक नाम के राजा भ्रमण करते हुए वह अप्रतम, किसी कारणवश वे माँसल प्रवहे प्राणियों के हनन करने की प्रवृत्ति बन गई। जब बन गई तो राजाने हिरणी के पिछले भाग में जब बाण गमन किया तो देखो, उनके बाणों की वृत्तियों से जब वह नष्ट हो गई तो उसके गर्भ में से एक बाल्य, उसके शरीर में से निकल करके वह शाकल्य मुनि के आश्रम में प्रविष्ट हो गया और वह वहाँ स्तुतियों में प्रवीण हो गया। जज प्रवीण हो गया तो राजा तो आगे चले गएं हिरणी के प्राण चले गये। जरायु में ओत प्रोत होने वाला वह प्राणी था। ऋषि ने विचारा कि यह क्या है? देखा उसमें उसका कोई एक स्वाँस को दृष्टिपात करते हुए उन्होंने जल के बिन्दु उसमें प्रवेश किये। उसमें और प्राण आ गया और गति आ गई, वह जीवित हो गया, वह बाल्य प्रणावृत हो गयां जब वह उनके आरम में प्रविष्ट हो या अब उस बाल्य से, ऋषि को मोह हो गया। देखो, जो ऋषि मोक्ष के निकट जा रहा है उसको ममता ने, मोह ने, बेटा! ऐसा प्रभावित कर दिया कि वह जो हिरणी का बाल्य था उसकी प्रथम भोज कराते और ऋषि उसके पश्चात् भोज करते जब ममता की बेला में ऋषिवर प्रवेश कर गएं तो कुछ समय के पश्चात् आयु प्रबल हो गई। 24 वर्ष का हिरणी का वह बाल्य हो गया था उसको तो देखो, वृद्धपन आना ही था वृद्धपन आनेपर उसका प्राणान्त हो गया। जब प्राणान्त हो गया तो ऋशि उसके मोह में इतना तल्लीन हो गए कि वह अपने को उस ममता से दूरीनहीं कर सके। न करने के कारण हिरणी के बाय से मोह होते उसे एक वेदना जागरूक हो गयी। एक विडम्बना जागरूक हुई और विडम्बना के जागरूक होने पर, कुछ समय के पश्चात्, शाकल्य मुनि महाराज का, उसने ममता के आँगन में प्राणान्त हो गया। शरीर और आत्मा का विच्छेद हो गया। आत्मा अपने उन्हीं मोह के संस्कारों को ले करके चित्त के मण्डल में प्रवेश कर गया। कुछ

समय के पश्चात् सतोयुग में एक मानकतिम नाम के राजा थे, मान कृतिक राजा के यहाँ, उनकी पत्नी शकुन्तला के गर्भ में उस आत्मा का प्रवेश हो गया। आत्मा के प्रवेश होने पर उसको अपना जीवन तो स्मरण था ही और जब माता के गर्भ को उसने दृष्टिपात किया जहाँ देखो, वह अग्नि की दाह है, प्राणों की गर्जना है और वहाँ नाना प्रकार के दाह उस नारकिक दृष्टिपात हुए तो वह आत्मा उस शरीर में कहता हे प्रभु! मुझे नारकिक क्षेत्र से दूरी कीजिए अब मैं आगे किसी जन्म में मोह नहीं करूँगा। प्रभु! मैंने मोह किया और उस मोह के कारा में माता के गर्भ में आ गया हूँ जहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की दाह मुझे सहन करनी हो रही है। हे प्रभु! यह असहनीय है, मुझे यहाँ से दूरी कीजिए। वह उस माता के गर्भ में प्रार्थना कररहा है। प्रार्थना करता बेटा! वह तो अपने समय पर बाह्य आना था वह 9 माह और 9 दिवस के पश्चात् माता के गर्भ से पृथक हुआ।

राजा ने जब यह श्रवण किया कि तुम्हारे पुत्रका जन्म हुआ है तो देखो, कहीं वेदों के पठन पाठन हो रहे हैं कहीं जटा पाइ में गान गाए जा रहे है। कहीं प्रत्यक्षवाद की आभा में अग्निहोत्र किए जा रहे हैं तो भिन्न भिन्न प्रकार के चयन राजा के राष्ट्र में विद्यमान है। मानो, सर्वत्र राष्ट्र में एक आनन्द छा रहा है। मुझे ऐसा स्मरण है कि राजा बड़ा हर्षित और उनकी देवी बड़ी हर्षित। बाल्य समय के पश्चात् प्रबल होने लगा। जब बाल्यप्रबल होने लगा तो वह ममता तो उसे स्मरण थी वे क्रिया कलाप उसे स्मरण थे, तो देखो, वह ब्रह्मण वृतहे, वह मूर्खों की भांति राजा को दृष्टिपात आता रहा जैसे वह धूर्त है धूर्तों की भांति दृष्टिपात आने लगा। पामरों की भांति, मानो देखो, न उसमें क्रिया है न वह मग्न हो रहा है। जो भी क्रिया कलाप है वह नाना पौधों नाना वृक्षों को वह नष्ट कर रहा है, कहीं पुष्पों को नष्ट कर रहा है। राजा के राष्ट्र में जब ऐसा हुआ तो उन्होंने मस्तिष्क विशेषज्ञों के द्वार, वैद्य राजों के द्वारा उसको प्रवेश कराया। उसका कोई दोषारोपण नहीं था, कोई रूग्ण नहीं था। इन त्यागजनों ने कहा राजन्! इस ब्रह्मचारी को कुछ नहीं है, यह तो बड़ा इसका हृदय, मस्तिष्क और क्रिया कलाप दस र्वत्र बड़ी ऊर्ध्वा में है। जब वह वापिस आ गए तो राजा ने वाटिका में, कि मन्द सुगन्ध वायु

इसके मस्तिष्क को नवीन बनाएंगी उसे वाटिका में स्थित कर दिया तो वह राजा की वाटिका को नष्ट करने लगा। जब नष्ट करने लगातो वह पुष्पम् जलम, ब्रहे कौस्तुस्ताह वे जोवाटिका के विशेषज्ञ औरउनके कर्मवेत्ता थे, वे राजा के समीप आये।राजासे कहा हे प्रभु! यह ब्रह्मचारी जो आपको पुत्र है, इसके पामरों वाले कर्म है। इसने सब वाटिका नष्ट कर दी है। राजा जब उनके समीप पहुँचे तो दृष्टिपात किया कि वास्तव में ऐसा है। राजाने यह कहा कि हे ब्रह्मचारी! जड़ भरत! आओ तुम मेरे राष्ट्र से दूर हो जाओ, मेरे राष्ट्र की सीमामें तुम्हें नहीं रहना हे। मुनिवरों! वहाँ से उन्होंने गमन किया। उन्होंने वाटिका को त्याग दिया और वे भयंकर वनों में चले गए। राजा अब अपने में विचारने लगे कि मुझे अब क्या करना चाहिए। यह बड़ा अपश्राप है तेरे यहाँ ऐसी सन्तान का जन्म होना भी अपश्राप है राजा इन विचारों में गमन होते और शोकातुर भी होते, शान्त हो जाते।

वह बाल्य भयंकर बन में चले गए और भयंकर बनों में देखो, वह आत्मा में लीन रहते थे। आत्मा में प्रभु का दर्शन करते रहत ेथे। माने ममता न रही, न राष्ट्र से मता है, न इस संसार से कोई उन्हें ममता का वृत्त रहा। कुछ समय के पश्चात्, महाराजा नहूप ने विचारा कि मैं अपने जेष्ठ पुत्र को राष्ट्र दे रकके भयंकरबन में किसी महान आचार्य स्वीकार करके मैं उनसे कुछ परमात्मा के चिन्तन में प्रवेश हो जाऊँ। महाराजा नहूप ने अपने यहाँ एक सभा की और सभा करने के पशचत् उसमें राजा महाराजा सभी एकत्रित हुए उसमें महाराजा शिव और पार्वती और भी राजा उसमें आ पहुँचे। उस सभा में महाराजा मयूष ने कहा कि मेरा जो यह जेष्ठ पुत्र है इस पुत्र का नाम सुकुस्तु नाम का राजा है। यह सुकुस्तु नाम का राजा राज्य का पालन करेंगे। और मुझे विवेक हो रहा हे मैं भयंकर बन को जा रहा हूँ। मैं प्रभु के आँगन में प्रभु का चिन्तन करूँगा और अपने क्रिया कलापों से मैं मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करना चाहता हूँ। सब राजाओं ने कहा प्रभु! यह तो बहुत प्रियतम है। परन्तु महाराजा शिव ने कहा हेराजन्! यह तो तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हारे हृदय में ऐसी प्रवृत्ति का जन्म हुआ है क्योंकि हमारीजो राष्ट्रीय परम्परा है या हमारी जो मानवीय परम्परा है वह प्रायः ऐसी रही है। हमारे यहाँ

एक एक अग्नि का चयन करने से, मानो दूसरी अग्नि जागरूक हो जातीहै। तुमने ब्रह्मचर्य रूपी जो गारपथ्यनाम की जो अग्नि हैउसे पूर्ण कर लियाहै, गृहपथ्य नाम की अग्नि में तुम पारायण हो गए हो, अब तुम अपने प्रभु के आँगन में प्रवेश करना चाहते हो तो यह तो हम सब का बड़ा सौभाग्य है। उनके राष्ट्रवेत्ताओं ने और राष्ट्र में रहने वाली प्रजा ने बड़ा धन्य हो और धन्य करते उनके वचनों को स्वीकारकरते सब मौन हो गए। राजा ने अपने जेष्ठ पुत्र को महाराजाशिव की अध्यक्षता में उनका राज्याभिषेक किया गया। राज्याभिषेक होने के पश्चात् अपनी पालिका में विद्यमान हो करके चार सेवकों के द्वारा उन्होंने राष्ट्र को त्याग दिया। राष्ट्र को त्यागने के पश्चात् वह भयंकर बनों में जा पहुँचे। भयंकर बनों में कहीं पर्वतों की असतो में उनका एक सेवक रुग्ण हो गया तो उन्होंने विचारा कि राजाको कैसे ले जाएं। सेवक जब एक मानव के लिए भयंकर बन में जब कहीं गमन करने ले तो कहीं जड़ भरत अपनी शान्त मुद्रा में आमा में लीन हुआ वह महापुरुष शान्त विद्यमान है। उन्हें वे लाए और लाकर के उस पालकी में एक आँगन में जहाँ वह रुग्ण आबृत कार्य नहीं कर रहाथा तो वह उसमें अवृत कर दिया। जब पालिका को ले करके गमन करने लगे तो वे जानते नहीं थे, कहीं ऊर्ध्वा में, कहीं ध्रुवा में, कहीं ऊर्ध्वा में। राजा को क्रोध आया। राजा को क्रोध जब आ गया तो पालिका को स्थिर करते हुए उन्होंने कहा अरे, धूर्त! यह क्याकर रहा है। राजाअपना एकशस्त्र, एक दण्ड ले रहा था, राजाने दण्ड से उसे आक्रमण करना प्रारम्भ किया। वह आक्रमण करता रहा। राजा जैसे शान्त हुआ तो जड़ भरत बड़े मग्न हुएऔर प्रभु से नमस्कार किया उन्होंने और जड़ भरत ने यह कहा हे प्रभु! जब तेरे द्वार पर ऐसे ऐसे पुरुष पहुँचेंगे तो प्रभु! उनकी क्या दशा करोगे आप? मैंने तो पूर्वजन्म में एक हिरनी के बाल्य से मोह किया था। हे प्रभु! मेरी तो यह गति हो रही है कि राजा ने मुझे अपने राष्ट्र से दूर कर दिया है, मुझे नाना प्रकार की यातनायें दी है। प्रभु! यह आपका ही तो कौतुक है। प्रभु! आपने ही तो यह दण्डित किया है। हे प्रभु! यह जो क्रोध भी करते हैं और कामना भी विशेष किया करते हैं, जब ये तेरे द्वार पर पहुँचेंगे तो इनकी क्या गति

होगी?

जब वे मग्न हो करके शान्त हुए तो राजा बड़े आश्चर्य हुए। मयूष ने कहा कि हे धूर्त तुम मग्न क्यों हो रहे हो? तुम्हें धूर्त मैं कह गयाहूँ परन्तु तुम तो मुझे विशेषप्राणी प्रतीत होते हो,

प्रभु! तुम कौन हो? उन्होंने कहा कि मुझे जड़ भरत कहते हैं और मैं अपने प्रभु से यह कह रहाहूँ कि पूर्व जन्म में साकल्यमुनि मेरा नामोकरण था। मैंने अपने जीवन में बड़ा परिश्रम किया, विज्ञान को जाना क्योंकि विज्ञान के जाने बिना कोई भी मानव प्रभु के राष्ट्र में विवेकी नहीं बन सकता। जो भी मानव विवेकी बनता है वह सबसे प्रथम अपनी इन्द्रियों का, जो इन्द्रियाँ भॉतिक जगत को दृष्टिपात करती है और भौतिक जगत में जिसकी निष्ठा रती है और भौतिक जगत में ही मानेअपने में विवेक उत्पन्न हो जाएं, इन्द्रियों का ज्ञान हो जाएं, इन्द्रियों का साकल्य बन जाएं और साकल्य उनके विषयों का बन करके अन्तर्हृदय में, हृदय मेंजो यगा करना जानता है वह भौतिक जगत को जान लेता है तो उस मार्ग से हो करके जब ऊर्ध्वा में गमन करता है तो प्रभु! के राष्ट्र में अपने को स्वीकार करता है और प्रभु के राष्ट्र में जब अपने को स्वीकार करता है तो उसे विवेक हो जाता है और विवेक होने पर वह मोक्ष की पगडंडी के निकट चला जाता है प्रभु के आँगन में भी चला जाता है। तो प्रभु! मैं मोक्ष की पगडंडी के निकट चला गया था और जब मोक्ष को पगडंडी के निकट चला गयातो मुझे हिरनी के बाल्यसे मोह हो गया। हे प्रभु! उस मोह के कारण माता के गर्भ में मुझे आना हुआ। मैं मोक्ष की पगडंडी के निकट से संसार में चला आया। मैं उस भौतिक जगत में चला गया जहाँ नाना प्रकार की यातनाओं में मानव सदैव रत्त रहता है। प्रभु! हे राजन्! मैं उसी आभा में एक माता के गर्भ में आयां राजाने मुझे अपने राष्ट्र से दूरी कर दियां मैंने प्रभु से यह संकल्प कर लिया कि मैं अब मोह नहीं करूंगा तो मैं प्रभु से यह प्रार्थना कर रहा हूँ। हे राजन्! तुममें देखो, मोह तो है ही परन्तु क्रोध भी हे और क्रोध की अग्नि में मानो कामना से बाह्य होकर के जो हुआ इससे क्रोध की अग्नि जागरूक है तो मैं प्रभु से यह कह रहा हूँ हे प्रभु! जब यह प्राणी तेरे द्वार पर पहुँचेंगे तो इसकी क्या गति होगी? क्या

दश बनेगी प्रभु! देखो, महाराजा मयूष अपने अन्तर्हृदय में शोकातुर हो गएं और ऋषि के चरणों में ओतप्रोत होकरयह कहा कि प्रभु! मुझे क्षमा कीजिए। मैं तो प्रभु! इस दृष्टि से चला था कि मैंने महाराजा जड़ भरत का नामोकरण मैंने स्वीकार किया मैं उनको आचार्य, अपना गुरु बनाऊँगा और आत्मा में लीन हो जाऊँगा जैसे वे लीन है। हे प्रभु! मुझे क्षमी कीजिए। उन्होंने कहा राजन! कोई बात नहीं यह तो कोई वाक्य नहीं यह तो जब आपके मन की इच्छा पूरी नहीं हुई तो क्रोध स्वतः आना है। क्योंकि क्रोध आता ही तब है जब मन की इच्छा पूरी नहीं होती है। जब तक मन की इच्छा पूरी होती रहती है मानव बड़ा प्रसन्न रहता है। एक ताता है, माता अपने पुत्र से उसकाल में क्रुद्ध होता है जबकि पूर्व आज्ञाकारी नहीं बनता है। यदि पिता यह स्वीकार कर ले कि अपने संस्कारों की आभा में यह पुत्र गमन कर रहा है और मैं अपने संस्कारों की आभा में, परिनिधि में गमन कर रहा हूँ तो क्रोधनहीं आ सकता। परन्तु क्रोधआता उस काल में है जब वह यह चाहता है कि मेरी इच्छा पूरी नहीं हो रही है इच्छा पूरी न होने से ही क्रोधाग्नि जागरुक हो जाती है और वह क्रोधाग्नि ही संसार में, मोक्ष के निकट से भी, इस संसार में लाने के लिए तत्पर हो जाती है।...

उन्होंने कहा राजन्! यह तो आपका स्वभाव बना हुआ है कि आपकी पालिका आपके मन के अनुगूल नही चल पायी तो आपको क्रोध तो स्वाभाविक ही आना था। हे प्रभु! आपको क्रोध आया आप जो अब तक करते रहे राज्य कार्य में कि दण्ड देना, वह दण्ड देना तो आपका स्वाभाविक गुण भी मैं नहीं कह सकता। इसको यह कह सकता हूँ कि आपको एक अभ्यास हो गया है उस अभ्यास के कारण आपको क्रोध आना था क्योंकि मन की इच्छा पूरी न होने से ही क्रोध की आभा जागरुक हो जातीहै, क्रोधाग्नि जागरुक हो जाती है और वही क्रोधाग्नि मानव को नारकिक क्षेत्र में ले जाती है।

राजा चरणों में ओत प्रोत हो गएं औरकहा, हे प्रभु! मुझे क्षमा करो। हे प्रभु! मैं बड़ा पातक हूँ, हे प्रभु! क्षमा कीजिए। महर्षि ने कहा, जड़ भरतने जो जड़ की भांति अपनी आत्मा में, वृत्तियों में रत्त हो रहे थे, उन्होंने यह स्वीकार कर लिया ब्रह्माम् ब्रवहे ऋतवहा वायु संभव प्रवहे, बातम नमम ब्रव्हे ऋत्तम बाह्या सवर्ति देवहाः, हे राजन्! अब तुम्हारा

कल्याण जब होगा जब तुमने राष्ट्र को त्यागा है, अपनी आत्मा में लीन हो जाओ। आत्मा में लीन वह प्राणी होता है जोएक एक कण में प्रभु को दृष्टिपात करता है औरअपने को यह स्वीकार करता है कि मैं प्रभु के राष्ट्र में विद्यमान हूँ, मैं इस सांसारिकराष्ट्र में नहीं हूँ। मैं पृथ्वी के राजा के राष्ट्र में नहीं हूँ मैं तो उस प्रभु के राष्ट्र में हूँ जिसने पृथ्वी का निर्माण किया है। जिसने सूर्यचन्द्र इत्यादियों का निर्माण किया है जो उसमें व्याप्त रहा है, देखो, जिसने हमारे अन्तःकरण को निर्माणित किया है जो उसमें व्यापरहा है, मैं उसके राष्ट्र में विद्यमान हूँ। हे राजन्! जब तुम यह स्वीकार करोगे तो तुम्हारा जो अंर्तहृदय है वह परमात्मा के हृदय से उसका समन्वय होना आरम्भ हो जाएगा और तुम पुनः से अपने नाना प्रकार के भौतिक जगत को त्याग करके तुम प्रभु के राष्ट्र में ही अपने को स्वीकार करने लगोगे। ऋषि ने जब इस प्रकार के वाक्य प्रगट किए तो उस समय राजा अपने में नत मस्तक हो गया। राजा ने कहा प्रभु! आपने मुझे क्षमा नही किया। उन्होंने कहा हमारे यहाँ तो क्षमा होती ही नहीं क्योंकि क्षमा कहते किसे हैं? राजाने कहा प्रभु! मैंने आपको दण्डित किया है। उन्होंने कहा यह दण्डतो आपने दिया यह तो आपका एक अभ्यासकृत है उस अभ्यास को त्याग दीजिए और प्रभु कीगोद में आजाईएं यही क्षमा का एक पातक बन जाएंगे। राजाउनके चरणों में ओत प्रोत हो गये, उनके वाक्यों को उन्होंने स्वीकार कर लिया। स्वीकार करते हुए उन्होंने सेवकों और पालिका को त्याग करके वे प्रभु में ध्यानावस्थित होने लगे। ऋषि का जैसा अभ्यास था, राजा का भी उसी के अनुसार अभ्यास बन गया। अभ्यास का परिणाम यह हुआ कि राजाअपने में महानता की वेदी पर गमन हो गये। राष्ट्रीय प्रणाली समाप्त होग ई, ऋषित्व की आभाम े परणित हो गये।

मेरे पुत्रों! देखो, यह जो आत्मा की चर्चायें हैं वे बड़ी विचित्र मानी जाती है। विचार यह कि जो साकल्यमुनि महाराज मोक्ष के निकट आ गएं थेवह एक बाल्य से मोह ममता में परणित हो करके कहाँ चले गये।

आज के हमारे वेदमन्त्र में यही आता है कि हम परमपिता परमात्मा की महती को अपने में धारण करते हुए अपने प्रभु का गुणगानगाते हुए इस संसार सागर से पारहोने का

प्रयास करें। राष्ट्रीय प्रणाली से चाहे वह कोई भी प्रणाली हो, हम प्रभु की प्रणाली को अपने में लाना चाहते हैं तो प्रभु! के गुणों को अपने में धारण करना होगा। हमें चेतना मय चेतना का भान करना होगा और चेतना का भान करके हम चेतनित बन करके प्रभ्ु के राष्ट्र में हम अपने को स्वीकार कर सकेंगे। मेरे पुत्रों! आज का विचार हमारा यह क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की आभा, मानो यह हमारे साहित्यिक, राष्ट्रीय प्रणाली में एक गाथा मैंने तुम्हें प्रकट की। यह गाथा यह है कि सर्वोपरि सत्यता की गाथा में मानव को अपने में रत्त हो जाना चाहिए। ऋषियों की ऐसी जीवनियाँ जब हमारे समीपआनी प्रारम्भ हो जाती है अथवा उनके क्रिया कलाप आते हैं तो मानव को एक दूसरे से शिक्षा प्राप्त होते हुए, एक दूसरे मेंयह विवेक सुगठित हो जाता है, मानों, एक दूसरे में ओत प्रोत हो करके मानव, अपने प्रभु को अपने में ही स्मरण, अपने में ओत प्रोत करके इस सागर से पार होने का प्रयास करता है। मेरे पुत्रों! देखो, मानव जब अपने क्रिया कलापों से, अपनी आभा से अपने कर्मबन्धन को त्याग करके वह प्रभु के राष्ट्र में अपने को स्वीकार करेंगे तो हमारा मानवीयतव उर्ध्वा में गमन करने लगेगा। और उर्ध्वा में गमन करते हुए प्रभु के राष्ट्र में हम चले जाएंगे।

मेरे पुत्रों! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? मैं आज तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नही आयाहूँ क्योंकि आज का एक वेदमन्त्र इस प्रकार आया जिसमें देखो, पुनरुक्ति इस संसार में आना और पुनरुक्ति जाना यह प्रायः देखो, वेद मन्त्रों की प्रतिभा में निहित हो, उस प्रतिभा में हम सदैव निहित रहते हैं और उसी आभा में गमन करते रहते है। जैसे परमाणु में जगत है और जगत में परमाणु है और परमाणु जगत में व्याप्त हो रहा है जैसे मानव एक दूसरे का सहयोगी बन करके, इस सांर में गतिवान हो रहा है। जैसे एक प्राणी है वह प्राणियों में गतिवान है जैसे स्थावर सृष्टि अंडज से ओत प्रोत है और अंडज सृष्टि जंगम से ओत प्रोत है और जंगम सृष्टि उद्भिज सृष्टि से ओत प्रोत हो रही है तो देखो, यह जगत ऐसे चल रहा है जैसे माला और माला के मन को में सूत्र है और सूत्र में मनके हैं, सूत्र और मनके दोनों के समन्वय का नाम ही माला बन जाती है। इसी प्रकारयह जो जगत है यह माला के सदृश्य है, यह माला बना हुआ है। कहीं

पिता है कहीं पुत्र है, कहीं पुत्री है, कहीं पुत्रवधू है। यह संसार एक दूसरे में पिरोया हुआ दृष्टिपात आता है। माताके गर्भ में जब शिशु होता है तो एक शिशु के कारण ही सर्वत्र ब्रह्माण्ड की एक माला बन जाती है और माला में यह ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड में माला है। अध्ययन करने वालों की, ऋषि मुनियों की, यह बड़ी विचित्र देन रही है कि पिण्ड में ब्रह्माण्ड है ब्रह्माण्ड में पिण्ड, मानों, पिण्ड विद्यमान रहता है।

मेरे पुत्रों! देखो, एक ऐसा अभ्योदय हो रहा है कि जब इसके ऊपर विचार करते है तो अन्त में मौन हो जाते है। प्रभु के राष्ट्र में अपने को स्वीकार करते हुए इस सागर से पारहो जाओ। यह है बेटा!आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपितापरमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। राशना (मेरठ) 22 9 88

६ 23 09 1988 पुष्प 57 राजा नल द्वारा गान विद्या अध्ययन

देखो, मुनिवरों! आजह हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और यह जो जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है यह उसी की महिमा है और वे ज्ञान व विज्ञानमयी स्वरूप माने गए है। संसार में मानव नाना प्रकार की उड़ानें उड़ता रहता है, कहीं गान विद्या हैं, कहीं वणिज विद्या है, कहीं दीपावली विद्या है। वह नाना प्रकार की विद्याओं के ऊपर अधिपथ्य करता रहा है परन्तु परमात्मा का जो ज्ञान है अथवा विद्या का वह जो भण्डार है, वह इतना अनन्त है कि वह वहाँ तक पहुँ नहीं पाता, मानव की इतनी सत्ता ही नहीं है। नाना प्रकारकी उड़ानें उड़ता रहता है विज्ञान में गमन करता है। माता के गर्भ स्थल में जो निर्माण हो रहा है परन्तु उसका एक द्वितीय रूपतो निर्माणित कर देताहै वह भी पूर्णरूपेण नहीं हो पाता। परन्तु वह इतना विज्ञान से ओत प्रोत है कि

मानव उसमें अन्त में मौन हो जाता है। रात्रि छा रही हैसूर्य नहीं रहा है और चन्द्रमा और रात्रि दोनों का सम्मिलन हो रहा है, दोनों गान गा रहे हैं ऐसा पवित्र गान गा रहा है, ध्वनि हो रही है। जब साधक जन उस ध्वनि को अपने में ध्वनित करते हैं तो साधक बन जाते हैं। और उसी ध्वनि को जब वैज्ञानिक जन श्रवण करते है, यन्त्रों मेंरत्त रहते हैं तो विज्ञान की नाना प्रकार की आभा में परणित हो जाते है। विचार यह कि कैसी पवित्र ध्वनियाँ हो रही हैं, कैसा गान गाया जा रहा है? जब मल्हार राग के गायक ध्वनि के ऊपर, उन शब्दों के ऊपर विचार विनिमय करते हैं तो साधक जन अपने प्रभु की प्रार्थना करता हुआ और उस मल्हार राग को अपने में साकर रूप बनाता है तो उसका समुद्रों से और शीतली प्राण से समन्वय रहता है। अपने में रत्त हो करके वह मल्हाराग का एक पथिक बन जाता है परन्तु गान विद्या परमात्मा के गर्भ में निहित रहती है। मेरे पुत्रों! मैं आज इस सम्बन्ध में यागान विद्या के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं देना चाहता।

आज हमारे वेद के पठन पाठन में भिन्न भिन्न प्रकार की विद्याओं का वर्णन आ रहा था कहीं दीपावली, दीप रागों के सम्बन्ध में हमारे वैदिक साहित्य में परम्परगतों से ही आता रहा है और मानव अनुसन्धान करता रहा है परन्तु मेरे प्यारे प्रभु की जो दीपमालिका है वह कितनी विचित्र है। रात्रि में अन्धकार छाया हुआ है परन्तु तारा मण्डलों की एक दीप माकि हमें दृष्टिपात आती है। लोक लोकान्तरों में एक अनूठा प्रकाश है उसमें मानव अन्धकार में भी पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है। मेरे प्रभ्ु की कैसी यह विचित्र मालिका है। इस मालिका को कैसे धारण किया जाता है?

मेरे पुत्रों! बहुत पुरातन काल हुआ जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत प्रोत रहते थे तो हमें दीप मालिका के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की चर्चायें और दीप के सम्बन्ध में वे नाना प्रकार की विद्या का अध्ययन भी कराते रहे परन्तु जब यह वाक् साकार रूप में लाया जाता है। तो बड़ा साधक प्राण को अपान, अपान को ब्यान और व्यान का समान में परणित करता हुआ एक दूसरे प्राण में प्राण की समावेश करता हुआ वह दीपमालिका का समन्वय औरवह उसकी आभा में रत्त होता है। दीपमालिका

हमारे यहाँ आचार्यों के गर्भ में रही है, वैदिक मन्त्रों े रहीहै परन्तु जैसे परमपितापरमात्मा की दीपमालिका आकाश गंगा के रूप में है, निहारिका के रूप में है, अवंतिका के रूप में विद्यमान है और नाना प्रकार के नक्षत्रों के स्वरूप में, जिसको सौर मण्डल के रूप में भी कहा जाता है। यह कैसी विचित्र दीपमालिका है जिससे ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण कर रहा है, विचार कर रहा है परन्तु प्रभु की वह जो दीप मालिका है वह कितनी विचित्र है। मानो देखो, दीपाम् ब्रहे व्राणस्यतम्, माने दीपमालिका अपना प्रकाश दे रही है मानव अन्धकार में अपनी पगडण्डी को ग्रहण कर रहा है। वह कैसा अनूठा प्रकाश है कैसी विचित्रता है उसमें। जब हम दीपमालिका के ऊपर विचार करते हैं तो यह बड़ा विचित्र रहस्यमय विषय बनता है, साधकों का यह विषय कहलाता हैं। मेरे पुत्रों! मुझे इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना नहीं देनी परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र जो कह रहा है उस सम्बन्ध में मैं तुम्हें ले जा रहा हूँ जहाँ वेद मन्त्रविज्ञान और दीपमालिका के सम्बन्ध में वर्णन कर रहा है वहाँ उस आभा में आज राष्ट्र के ऊपर कुछ मन्त्र आ रहे थे। मुनिवरों! देखो, मानव नाना प्रकार के राष्ट्रीय कर्मों का निर्माण करता है लेखनियाँ बद्ध करता है और यह कहता है कि राजा को यह करना चाहिए राष्ट्रदा राष्ट्रमयी देवत्र महान वृत्ति सेवहा मानो, हम राष्ट्र के प्रति कितने उज्वल रहे, ऐसा वेदमन्त्र आया।

हमारे यहाँ राहा जनक के राष्ट्र की चर्चा आती हैं राजा जनक के राष्ट्र में, जहाँ क्रिया कलाप होते रहते थे वहाँ ब्रह्म ज्ञान की गाथायें और ब्रह्मज्ञान में राजा को रत्त रहना, उसे जनक कहा जाता है। जनक कौन हैं बेटा!? जनक उसे कहा जाता है जिस राजा के राष्ट्र में प्रातःकालीन याग होता हो और याग के पश्चात् ब्रह्मवाद के ऊपर ब्रह्मा चर्चायें होती हों और ब्रह्मवेत्ता एक पक्ति में विद्यमान और शास्त्रार्थ होता हो एक एक वाद पर टिप्पणियाँ होती और राजा राजा उसकी मध्यस्ता करने वाला हो। इतना अध्ययन और साधना राजा की होनी चाहिए जो ब्रह्मज्ञानियों में ब्रह्मज्ञानी हो, राष्ट्रवेत्तओं में राष्ट्रवेत्ता हो, अनुशासन में अनुशासनता में हो परन्तु राजासे यह हो नहीं पाता। राजा जनक के सम्बन्ध में विचार आता रहता है उनके यहाँ नाना ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होता

रहा। ब्र वेत्त अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके अपनी चर्चायें करते रहते थे। जैसे चाक्राणी गार्गी ने भी एक समय यह कहा था हे राजन्! देखो, तेरा राष्ट्र ब्रह्मवेत्ताओं का, ब्रह्मवादी जब ऊँचा बनेगा जबकि मानव यह विचार, यह उपदेश देने वाला इतना क्रियात्मक जीवन हो कि नग्न प्राणी को वस्त्र हीन प्राणी को भी वस्त्रों से युक्त दृष्टिपात करने वाला तेरा समाज होना चाहिए। मेरे पुत्रों! वह कैसे हो जब मानव को इतना विवेक और इतना ज्ञान हो जाता है कि जैसे माता का प्रिय बालक है और वह बाल्य माता की लोरियों का पान कर रहा है, वह वस्त्रहीन है माता यह स्वीकार करती है कि मेरा बाल्य अबोध है, मेरा बाल्य तो प्राणोस्तव में रत्त हो रहा है। तो माता को नग्न प्रतीत नहीं हो रहा है क्योंकि उसे इस संसार का ज्ञान नहीं है। माता की लोरियों का ज्ञान है आत्मा का ज्ञान है मुनि प्रवर्त्ति वाला वह बाल्य है, अज्ञान में बाल्य है माता की गोद में और जब वह बालयज्ञान और विवेक में और मुनि प्रवर्त्ति बन गया तो प्रभु! का एक साधक बन गया है वह प्रभु की आभा में रत्त हो गया है। यह चाक्राणी गार्गी ने राजाजनक की सभा में कहा था परन्तु राजाजनक अपने में व्रतोः सम्भवाः राजा इतना अनुशासित हो परन्तु विचारा जाता है कि परमात्मा में अनुशासन के लिए वेद मन्त्रों में नाना प्रकार की उड़ानें ऋषि मुनियों ने उड़ी है, वेद मन्त्रों को विचारा है और यह कहा राष्ट्रतम राजम नमम ब्रहे वायु सर्वनस्तः जैसे वायु गमन कर रहा है और वायु परमाणु को ले करके गमन करता है इसी प्रकार राजा का कर्त्तव्य हे राजा जब गमन करता है तो जैसे सेना के सहित होता है ऐसे ही जो शरीर में आत्मा है यह मन के सहित इन्द्रियों के लेकर यह आत्मा गमन करता है और जब यह गमन करता है तो मन जितना अनुशासित है उतनी प्रजा इन्द्रियाँ अनुश सित है और देखो, यदि आत्मा का ज्ञान हो जाएं तो मन भी उसके गर्भ में परणित हो जाता है और परणित हो करके मन का अपना कोई अस्तित्त्व नहीं रहता वह केवल अपनी आत्मा में ही निहित रहता है, आत्म तत्त्व की आभा में रत्त रहता है तो उसको हमें विचार विनिमय करना चाहिए।

आज जब हम इन वाक्यों को ले करके अपने में मनन करने लगते हैं अपनी आभा में रत्त हो जाते हैं तो विचार आता रहता है ब्रह्मणाम् ब्रहे व्रसम वाचन नम ब्रह्माः क्रत

लोकाम् हम देखो, अपने में अभ्योदय होता रहता है। आज इस सम्बन्ध में भी विशेष चर्चा नहीं देनी परन्तु अनुशासन करने वाला जितना मेरा प्यारा प्रभु है, राजा एक राष्ट्र का पालन भी नहीं कर पाता, राजा उसमें भी अधूरे पन में रहता है अनुशासन में हीनता हो जाती है परन्तु परमपिता परमात्मा जो धीराज है वह इतना अनुशासित है इतना अनुशासन में ब्रह्माण्ड को अनुशासित कर रहा है कि उसमें मानव मौन हो जाताहै। राष्ट्रम् ब्रह्मा वे परमपिता परमात्मा परब्रह्म राष्ट्रपिता है। वह कैसा राजा है? उसकी कैसी प्रजा है बेटा!? सूर्य अपने समय पर उदय होता रहता है चन्द्रमा अपने समय पर उदय होता है रात्रि अन्धकार अपने समय पर आता है लोक लोकान्तर अपने समयपर क्रिया कलाप कर रहे हैं। वायु वेग में गमन कर रहा है, वृष्टि होने जा रही है तो विद्युत अपने में वायु से नमनकरता हुआ उसको वेग में परणित कर देता हैसमुद्रो से मिलान हो जाता है वह अपने समय से होता रहता है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना राष्ट्रवेत्ता है तेरे राष्ट्र की कोई सीमा नहीं है। तू कितना राष्ट्रपिता है तू कितना इसको अनुशसन में निहित करने वाला है। देखो, काष्ठों में अग्नि रहती है वह अपनी सीमा में बद्ध है। वही अग्नि ब्रह्मचारी के शरीर में प्रवेश हो करके परन्तु सीमा में बद्ध है। माता के गर्भ स्थल मेंएक अग्नि प्रदीप्त हो रही है वह अग्नि अन्न को तपा देती है और तपाम ब्रहे वही अग्नि, माता के गर्भ में जब हम जैसे शिशु होते हैं, उस अग्नि का और स्वरूप बन जाता है। वही अग्नि गृहपति के यहाँ ग्रहपथ्य नाम की बन करके रहती है। वही अग्नि, वैज्ञानिकों के गृह में एक अणु और परमाणु के रूप में परणित हो जाती हैं उसका इतना भयंकर इतना विशाल रूप बन जाता है कि यह भौतिक जगत को एक क्षण समय में भस्म कर सकती है परन्तु प्रभु का कितना अनुशासन है बेटा! सूर्य अपनी ऊर्ध्वा दे रहा है द्यौ से प्रकाश ले रहा है और प्रकाश ले करके प्रकाशमान बना रहा है। मेरे प्यारे! कैसा वह धीराज है? कैसा अनुशासन में कर रहा है? यह कैसा अनुशासन है? संसार का महान से महान् राष्ट्र भी, परमात्मा जो राष्ट्रपिता है उसके राष्ट्र के आगे, वह न होने के तुल्य बन जाता है।

विचार आता है कि उस परमपिता परमात्मा को हम अपना धीराज स्वीकार करते हुए

इस ब्रह्माण्ड की आभा में रत्त हो जाएं। देखो, संसार के राजा बड़े विचित्र होते हैं। संगवम् ब्रह्माः ये राजा अपने अनुशासन में रहते हैं तो उनकी भी कोई सीमा होती है। जब राम राज्य की, विष्णु राष्ट्र की हम कल्पना करते है मुझे स्मरण आता रहता है भगवान राम ने जब राष्ट्र को अपनाया तो अपना करके राष्ट्र को, स्वराष्ट्र का उन्होंने शोधन किया, अपने राष्ट्र का प्रसार किया। अपने को अनुशासन में करते हुए उन्हेंने अपनी प्रजा को अनुशसित किया। अपने जो अंग संग रहने वाले विधाता थे उन्हें अनुशासित किया परन्तु उनके अनुशासन का परिणाम यह हुआ कि वे इतने त्यागी बन गएं इतने तपस्वी बन गएं कि राष्ट्र और बन एक ही समान बन गया उनके लिए विचार आता रहता है किवे बन में चले गएं परन्तु वहाँ भी अपने को अनुशासन में, राष्ट्र को अनुशसन में और राष्ट्रीय प्रणाली को ऊँचा बनाने के लिए उन्होंने निषांद इत्यादियों को अपना करके राष्ट्र को अनुशासित किया। उन्होंने प्रत्येक राजा के राष्ट्र में, अपना जो अनुशासन, अपना जो क्रिया कलाप था उसको स्थापित कराया तो सर्वत्र पृथ्वी पर एक विष्णु राष्ट्र की स्थापना हो गई। मेरे पुत्रों! देखो, विष्णु राष्ट्र क्या है? जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में कहा थ, विष्णु राष्ट्र उसे कहा जाता है जो चतुर्भुज वालाहै। जिसके 4 भुज होते हैं जैसा इससे पूर्वकाल (पुष्प 4) में वर्णन किया, चरित्र और गदा देखो, अमृतम् ब्रह्मणों व्रत्ते यकमाअनुसताः, मेरे प्यारे! देखो, चक्र यह चारों भुज विष्णु के ही कहलाते हैं जिसमें एक में पदम है द्वितीय में गदा है तृतीय में चक्र है चतुर्थ में शंख ध्वनि मानी गई है। यह ध्वनित होता हुआ राष्ट्र को ऊँचा बनाताहै। परन्तु हमने एक ही वाक् कहा कि चाहे यह विष्णु राष्ट्र हो चाहे राम! राज्य हो देखो, इसके पश्चात् वही राम राज्य की प्रणाली में परिवर्तित हो गया था।

विचारने से यह प्रतीत होता है कोई भी राजा का राष्ट्र हो, परन्तु परमात्मा का जो राष्ट्र है उससे वह निम्न रह जाता है चाहे वह कितना भी अनुशासन में हो। माता अनुशासन में रहती है और जो माता अनुशासन में बाल्य को ऊँचा बना देती है संसार के नाना प्रकारके विश्वविद्यालय उस माता की शिक्षा के आगे निम्न रह जाते है। विचारआतारहता है कि माता लोरियों कापान करती हुई जो शिक्षा, जो अपनी महान तरंग उस बालक

के अंर्तहृदय में परणित कर देती है। देखो, भयंकर बन में एक ऋषि रहता है। उस ऋषि के आश्रम में ब्रह्मचारी अध्ययन करते हैं उसी अध्ययन की जो प्रणाली हैवह माता की लोरियों की जो शिखा प्रणाली है उससे उसकी शिक्षा प्रणालीनिम्न रह जातीहै। विचारआता है, इसी प्रकार जितने भी राष्ट्रवेत्त हैं चाहे वह किसी प्रकार का भी राष्ट्र हो परन्तु परमात्मा के राष्ट्र के आगे जो इस ब्रह्माण्ड को स्थिर कर रहा है, यह सर्वत्र राष्ट्र देखो, निम्न रह जाते है। परमात्मा के राष्ट्र से निम्न देखो, वह विष्णुराष्ट्र रह जाता है, विष्णु राष्ट्र से निम्नराम राज्यरह जाता है और राम राज्य से जो निम्न है जो अनुशसन व्रणाह कहीं साम्यवाद है कहीं अकृतं द्रव्यवाद है। नाना प्रकार का जो वाद है यह सब राम राज से निचले भाग में रह जाते हैं। एक राजा यह चाहता है कि मेरा राष्ट्र सामन्य बन जाएं, मेरा राष्ट्र एकोकीकरण हो जाएं। अरे, जब राजा, राजा बना हुआ है, वह प्रा के वैभव को अपने में संग्रह कर रहा है और कल्पना कर रहा है कि मेरा राष्ट्र साम्यवादी बन जाएं तो यह विचार उसका धृष्टता का विचार है। यह विचार विचार नही रह जाता। मुझे स्मरण आता रहता है जब यहाँ मुनिवरों! देखो, राष्ट्र के ऊपर अपना पुत्रों! को राजा नष्ट कर देते थे। मानो देखो, राष्ट्र चाहिए द्रव्य चाहिए अपनी ममता चाहिए अपना ममतव राष्ट्र का चाहिए। जब इस प्रकार की ममतव की भावना रहती है और ममतव राजा का अपने पुत्र कौनष्ट कर सकता है परन्तु परमामा का जो ममत्त्व है वह कितना महान् है। मुनिवरों! देखो, संसार में जितने लोक लोकान्तर हैं जितना भी मानव समाज है प्राणी मात्र है उनका न्याय कर रहा है, न्याय करके उनके ऊपर दया कर रहा है और दया करता हुआ अनुशासन में निहित करने वाला प्रभु कहलाता है। देखो, साम्यवाद उसके आगे कोई वाद नहीं रह जाता है। हमारे यहाँ हिरणाकश्यप की चर्चा आती है। मैंने बहुत पुरातनकाल में यह वाक् कहा था उन्होंने राष्ट्र के पद की लोलुपता के लिए पुत्र को नष्ट करना चाहा, नाना प्रकार की यातनायें व्यतुत होने लगी। जब परमपिता परमात्मा में, जन समूह में उसके प्रति ममत्त्व की भावना आई तो पुत्र पिता से अग्रणीय बन करके राष्ट्र पर अनुशासन करने लगा। वह मृत्यु दण्ड को प्राप्त हो गया। परमात्मा का जितना भी क्रियाकलाप है यदि उसमें उसका न्याय, न्याय प्रियता, महानता की

ज्योति जब जागरुक होजाती है तो वह राज्य, संसार के जितने राष्ट्र हैं सब निम्न रह जाते हैं माने निचले भाग में परणात हो जाते है। बेटा! मैं राष्ट्र की चर्चा तो नहीं कर रहाहूँ। विचार केवल यह कि परमपिता परमात्मा को अपना अग्रणीय स्वीकार करते हुए हमारे यहाँ जितना भी कर्त्तव्यवाद हमें परमपितापरमात्मा की सृष्टि से अपने में धारण कर लेना चाहिए। माता के हृदय से अपने में धारण कर लेना चाहिए। माता भीतो कर्त्तव्य का पालन करती है। माता में यदि ममता विशेष न रहे तो माता मानो देवताओं के तुल्य कहलाती है वह देवता बन जाती है। इसमें जब अपनी दृढ़ता बन जाती है। यदि माता यह चाहती है कि यह मेरा कर्त्तव्य है पालना करना, शिक्षा देना मेरा कर्त्तव्य है जब वह कर्त्तव्यवादी बन जाती है तो वह परमात्मा से निम्न बन करके वह देवता बन जाती है। मुनिवरों! देखो, उसी प्रकार जैसे परमात्मा देवता है वह देवत्त्व दे रहा है वह देता रहता है मानो कि शरीर में अग्नि है वायु है। वायु प्राणों में विभक्त रहने वाली है। मुनिवरों! अग्नि अपने में प्राणसत्ता को समेटने वाली है आपोमयी ज्योति जो प्राणकी ऊर्ध्वा बनी हुई है। माने पृथ्वी अपने में प्राण सत्ता देकर के गुरूतव दे करके वह स्थूल की रक्षाकर रही है। कैसा विचित्र प्रभु का विज्ञान है? और कैसा अनुशासन है उस प्रभु का? मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह, यह उद्गार देने के लिए आए हैं बेटा! कि हमें अपने जीवन में एक महानता को अपनाना चाहिए। हमें अपने प्रभु को अपनाना चाहिए क्योंकि संसार का अनुशासन प्रभु के अनुशासन से निम्न रह जाता है। गान में भी जब परमात्मा का गान होता रहता है तो कोई उस गान को श्रवण करके गायक बन जाता है परन्तु गान के गर्भ में भी वह देवत्त्व विद्यमान रहता है।

मुझे स्मरण आतारहता है, गाथा तो बेटा! बहुत उच्च है उच्चारण करने के लिए एक अमृतम् ब्रह्मणाम् ब्रहे अयोध्या में एक राजा हुए जिनकौनल कहा जाता है। नल अयोध्या के राजा रहे हैं। राजानल के हृदय में बाल्यकाल में यह कल्पना जागी, उनका हृदय अस्वुतम् आचार्य के द्वारा जब अध्ययन करता था अध्ययनके समय में उनसे वेद मन्त्रों का गीत गाया जाता तो उसमें साम गान का वर्णन आया। साम गान में स्वरों की आभाजबउनके समीप आई तो बाल्यकाल में, उसके हृदय में यह जागरुक हुआकि मुझे

इस विद्या का अध्ययन करना चाहिए।वे स्वरों पर अपनी विद्या को अपने जीवन को न्यौछावर करने लगे और स्वर में अपनी वाणी को ले जाने लगे। प्राण और अपान को उसमें वृत्त करने लगे, मिलान करने लगे। जब विद्यालय में अध्ययन करते थे तो उनके जो आचार्य थे समरव्रेत केतु ऋषि महाराज उन्होंने यह कहा, समर ऋषि ने यह कहा कि हे ब्रह्मचारी! जिस विद्या का तुम अध्ययन कर रहे हो यह विद्या बड़ी विचित्र विद्या है। उन्होंने कहा प्रभु! इस विद्या को तो मुझे पान करना है। उन्होंने कहा इस विद्या का पान करना है तो तुम देव यज्ञ करने लगो। देव याग में प्रत्येक स्वर को अपने में सूत्रित करने लगो। आचार्य की संरक्षणता में, समरकेतु ऋषि महाराज के यहाँ वे प्रातः कालीन अग्निहोत्र करते और अग्निहोत्र में उन्होंने यह कहा कि तुम कुछ समिधालाओ। समिधा किस प्रकार की हो? शमी की समिधा में यह विशेषता होती हे कि उनमें जो तरंगों का जन्म होता है वे तरंगे कुतूरवृत कहलाती है। शमी को समिधा, चवन की समिधा, श्वेतकेतु एक वृक्ष होता है उसकी समिधा और जाला जालकेतु एक वृक्ष होताहै उसकी समिधा सबका मिलान करके उसमें से जो तरंगें उत्पन्न होती, अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होती वे कुछ ध्वनि के लिए होती है औरवे ध्वनि की जब अपने में श्रवणकरने लगे तो ऋषि ने कहा कि हे ब्रह्मचारी! ये देखो, ध्वनि जा रही है तो उस ध्वनि को अपने में श्रवण करने लगे। बारह वर्ष तक उन्होंने इस प्रकार का याग किया अपने में उसको धारण करते रहे और प्राण की क्रिया उनकी ज्यों की त्यों इस प्रकार प्राणों को अपान में और अपान को व्यान में व्यान को समान में और समान को वृत्तियों में रत्त करते हुए जब वे प्राण को खेचरी मुद्रा से मुद्रित करते उसी में रुकात होता तो मुनिवरों! देखो, वह एक प्राण अग्नि का स्वरूप बन जाता है।

देखो, विद्या को आचार्य नही जानते थे। उन्होंने कहा नल! हे ब्रह्मचारी! जाओ तुम महर्षि गौतम के आश्रम में चले जाओ। उन्हेंने कहा बहुत प्रियतम और गौतम ऋशि के आश्रम में चले गए। गौतम ऋशि के यहाँ नित्यप्रति गान विद्या के ऊपर अध्ययन होता रहता था। जब वे गान गाते, प्रातःकालीन याग करते तो अग्निहोत्र गान विद्या से प्रारम्भ होता। मुनिवरों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता रहा है कि वे गान विद्या को धारण करने

लगे परन्तु दीपमालिका जिसे हम दीपक राग कहते है उसे अपने में धारण करने लगे। प्राण विद्या का उसमें श्रोत्रिय अत्वक बन जाताहै। देखो, यह अपनी साधना है। गोतम ऋषि ने इन्हें आतात्त्विक दृष्टिपात करते हुए कहा, कहो ब्रह्मचारी! क्या चाहते हो? तुम तो राजकुमार हो। उन्होंने कहा प्रभु! मैं उसविद्या का अध्ययन करना चाहता हूँ जिस विद्या को मेरी माता, जब मैं माता के गर्भ स्थल में विद्यमान था, मेरी माता ने मुझे यह वर्णन कराया। माता उस समय गायत्री छन्दों का गान गाती थी और जब वे प्रातःकालीन प्रभु का चिन्तन करती तो गान रूप में अपने प्रभु से यह कहती थी कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाले बाल्य को गान विद्या में पारायण होना चाहिए। मैं उस माता की आज्ञा का पालन जो परोक्ष रूप में वह कल्पना करती थी उनको साकार रूपमें लाना चाहता हूँ। गौत्म जी बोले कहो राजकुमार! माता क्यों ऐसा कहती थी? उन्होंने कहा माता को गान विद्या से प्रीति थी, मोह था। माता यह चाहती थी गान विद्या एक प्राण से दूसरे प्राण के मिलान का नाम गान विद्या है। गान विद्या वैसे ही नहीं होती। गान विद्या देखो, सामवेद में जो स्वर हेते हैं उन स्वरों में अकृत होता है क्योंकि हमारे यहाँ तीन ही वेद होते हैं। तीन वेदों में देखो, ये विद्यायें हैं। त्रिविद्या कहाजाता है ज्ञान कर्म और उपासना, क्योंकि उपासना का जो माध्यम है वह गान से सम्बन्धित रहता है इसीलिए मैं उपासना के क्षेत्र में रत्त होना चाहता हूँ। देखो, माता जब भोजन कराती मानो लोरियों का पान कराती या भोज देती तो उस समय वह मन्त्रों को स्वरों में अर्पित करके गान को अवृत किया करती क्योंकि उनके संस्कार वे भोजन का भी संस्कार करती रहती थी और जिस आचार्य के गृह से मेरा आगमन हो रहा हैवे भी इसी प्रकार के हैं। प्रभु आपकी बड़ी प्रशंसा उन्होंने की है और आज्ञा की है कि जाओ तुम गौतम आश्रयम मेंचले जाओ। प्रभु! मैं आपके आश्रम में विराजा हूँ मुझे आप दीपावली राग के सम्बन्ध में, गान के सम्बन्ध में मुझे वर्णन कराईए और इस विद्या को मेरे अन्तर्हृदय में भर दीजिए। महात्मा गौतम बड़े प्रसन्न हुए। महर्षि गौतम ऋषि के यहाँ नाना ऋषि और साधक इस प्रकारकी विद्या का पान करते रहते थे। महाराजा नल ने बारह वर्ष तक इस विद्या का पुनः अध्ययन किया। प्राणको अपान में अपान को प्राण में और प्राण

को समान में और समान को व्यान में और व्यानम् ब्रह्मणे देखो, उन सब का मिलान करते हुए वे जब प्राण को नग्नवृत्तियों में ब्रह्मरंघ में ले जाते जब गान गाते और वह सर्वत्र प्राण एक एक ऐसी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है मानो उस अग्नि से दीपों की मालिका बन जाती है। इस विद्या का उन्होंने अध्ययन किया।

मुनिवरों! जैसे वैज्ञानिक युगों में वैज्ञानिक जन एक एक अणु से राष्ट्र के राष्ट्र को नष्ट कर देते हैं, मुझे स्मरणआता रहा है कि महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने और शिकामकेतु उद्दालक ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला में वह यन्त्र ब्रह्मवृत्ति केतु यन्त्र कहा जाता था जो उन्होंने ब्रह्मचारिणी शबरी के द्वारा, राम जब बन में थे और रावण से जब संग्राम होने जा रहा था, वह यन्त्र राम को प्रदानकिया गया था। वह अकृतम् भारद्वाज ऋषि की विज्ञानशाला में अग्नि प्रदीप्त होते ही सूर्य की किरणों के साथ उस यन्त्र को अकृत किया जाता था। जब उसमें अग्नि प्रदीप्त होती तो एक एक राष्ट्र को वह अग्नि नष्ट कर देती। इस प्रकार का परमाणु यन्त्र था। परन्तु ऐसे यन्त्रों का निर्माण जब बाह्य जगत में होता है तो मानव का जो यह शरीरूपी ब्रह्माण्ड है इसमें भी प्रायः इस विद्या का अध्ययन किया गया है और आचार्यों ने बेटा! अपने में बड़ा अनुसन्धान किया। महर्षि गौतम मुनि महाराज के यहाँ इस विद्या का अध्ययन होता रहता था।

आज बेटा! मैं बहुत दूरी चला गया हूँ। विचारों को बखेरता चला गया कहीं राष्ट्र के विचार हैं, कहीं आत्मा के विचार हैं, कहीं दीपमालिका के विचार हैं। अरे, विचार तो एक ही देना था परन्तु वह विचार थाराष्ट्रवादियों का, विचार केवल एक ही था इसी प्रकार मैं उच्चारणकरना चाहता हूँ कि वह दीपमालिका अपने में परिश्रम से मानव ग्रहण करना चाहता है परन्तु परमात्मा कितना दीपमालिका वाला है। देखो, नाना परमाणु द्यौ में सिमट जाते हैं और द्यौ में जब सिमट जाते हैं वहीं परमाणु, वैज्ञानिकजन क्या, ऋषिवर क्या अपने में उसको द्यौसे लेते रहते हैं जैसे सूर्य अपनी आभा में नाना प्रकार की किरणों के द्वारा द्यौ से अपना समन्वय करते हुए नाना परमाणुओं को ले करके वह संसार को बखेर दते हैं, वह ऊर्ध्वा के रूप में बखेर देते हैं। वही परमाणु वाद बेटा!

देखो, वृक्षों े वह स्थावर सृष्टि में ओत प्रोत हो जाता है काश्ठ में रत्त हो जाता है। वही काष्ड्ड याग को समिधा बन करके अग्नि को प्रदीप्त कर जाती है वहींकाष्ठ में रहने वाली अग्नि वही माता उनसे भोज्यें कानिर्माण कर लेतीहै। विचारक्या? मेरे प्यारे! जब प्रभु का विज्ञान इतना नितान्त है उसी विज्ञान की हम साधकजन उसकी छत्र छाया में विराजमान हो करके पुरुषार्थी बन जाएं और साधनाकर। परन्तु चाहे वह राष्ट्रवाद हो, चाहे ब्रह्मवाद हो, चाहे दीपमालिकाराग हो, चाहे वह अस्वताम् ब्रह्मणाम ब्रव्हे कायाशुद्धे देवत्याग देवम मल्हारस्ते चाहे वह मल्हार राग के रूपमें क्यों न विद्यमान हो। मेरे प्यारे! आज मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ। बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करना हमारा कर्त्तव्य रहा है परन्तु इन बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करके एक ही आसन में बेटा! परणित कर देते है। तो विचार विनिमय क्या कि प्रभु का विज्ञान बड़ा अनन्तमयी है। इसीलिए प्रभु भी राष्ट्रवादी है प्रभु ही दीपमालिका का स्वामित्व करने वाला है। वह सामयवाद को एक आभा में रत्त करने वाला है। वह साम्यवाद की चर्चा याज्ञिक पुरुषों को नियमबद्ध किए हुए हैं और उन्होंने यही कहा है कि एक याज्ञिक जो याग में परणित हो जाताहै वह एक साम्यवादी क्रिया कलाप कर रहा है, जैसे अग्नि के मुखारबिन्दु में नाना प्रकार के साकल्य प्रदान करता हुआ मानव साम्यवादी है। वह साम्यवादी याग एक क्रिया कलाप है मानो वह सर्वत्र प्राणियों को प्राप्त होता है। इसी प्रकार प्रभु का जो क्रिया कलाप है, प्रभु का जो साम्यवाद है वह याग में निहित रहाहै, वह यज्ञमानकी धाराओं में निहित रहा है, वह होताओं की वाणी में निहित रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, वह हृदय में प्रदीप्त होने वाला है।

मुनिवरों! आज का विचार क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की महती का गुणगान गाते हुए अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं अपने प्रभु को सबसे उत्तम साम्यवादी स्वीकार करते हुए राजा भी यदि उसके आश्रित रहेगा तो राश्ट्र का क्रिया कलाप पवित्र हो करके चलेगा यदि वह नास्तिक एक पठन पाठन करने लगेगा तो राष्ट्र उससे बिखर जाएगा। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम परमपितापरमात्मा की आराधना करते हुए, वह हमारा राष्ट्रपिता है, वह देवतव

है, वह महान है, वह विचित्रत्रता में है परन्तु देखो, जैसे माता अपने पुत्र के लिए सामय चर्चायें विचार देखो, क्या चाहती है, वह अपने बाल्य के सम्बन्ध में? माता जितनी बुद्धिमान होती है जितनी ब्रह्मवादी होती है उतनी वह सन्तान को, अपने पुत्र को महान बना देती है। परन्तु जितनी अपठित होती है अविचार वाली होती है उसकी सन्तान का संस्कारों में मानो संस्कारबिहीन बन करके वह माता चाहती तो परन्तु चाह के कुछ नहीं हो पाता। इसलिए मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि तुम अपल्म ब्रह्म कृतम, मेरे प्यारे! माता का पठन पाठन जब वैदिक शास्त्र में आताहे तो माता को वसुन्धरा कहते हैं, माता को धेनु कहा है, माता को रेणु का कहते है, माता को वृणास्वति कहते हैं सरस्वती भी इसी को कहते है। भिन्न भिन्नप्रकार के स्वरूप उसमें निहित रहते हैं। यह है बेटा!आज कावाक अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चायें तुम्हें कल प्रगट करूँगा। आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पठन पाठन होगा। उसके बाद यह वार्त्ता समाप्त। रासना (मेरठ) 23 9 19

७ 30 09 1988 पुष्प 56 धनुर्याग चर्चा प्रातःकाल

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं, और जितना भी यह जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह दृष्टिपात आता रहता है। जब हम उसकी महानता और उसके जड़ जगत और चैतन्य जगत की विवेचना करने लगते हैं, तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात आता है, जैसे वे परमपिता परमात्मा एक एक कण कण में व्याप्त हैं, और कोई स्थली ऐसी नहीं, कोई स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हों। परन्तु जड़ और चेतना की विवेचना करते हुए, आचार्यों ने बेटा! अपना अपना मन्तव्य

दिया है।

जड़ और चेतना

एक समय मुझे स्मरण आ रहा है, कि महर्षि शिकामकेतु उद्दालक मुनि के यहाँ, ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ, मानो उस समाज में बेटा! देखो, नाना ऋषिवर थे। उनमें कुछ ब्रह्मवेत्ता थे, कुछ ब्रह्मनिष्ठ थे, कुछ ब्रह्मवर्चोसि थे, और वे नाना प्रकार का अनुसन्धान अथवा अन्वेषण करते रहते थे। शिकामकेतु उद्दालक मुनि महाराज अपने में महान् वैज्ञानिक थे और वे विज्ञान में जब गमन करते रहते थे, तो मानो एक आनन्द, एक विचारधारा ऐसी उनके हृदय में उपजती थी, कि वे नाना ऋषि मुनियों के विचार और उनका जो तपा हुआ शब्द है, उसके ऊपर अन्वेषण करते रहते थे। जब ऋषि मुनियों का वह समाज एकत्रित हुआ, तो महर्षि शिकामकेतु उद्दालक ने यह कहा कि हे ऋषियों! ये वेदमन्त्र हमारे स्मरण आ रहा है और वेदमन्त्र यह कहता है कि जितना भी ये जड़ जगत, अथवा चैतन्य जगत है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, वे परमपिता परमात्मा विद्यमान हैं। तो हमारे विचार में तो यह आता है कि आज हम, चेतना और जड़ के ऊपर कुछ विचार विनिमय करने के लिए तत्पर हो जाएं, क्योंकि हमारे यहाँ एक अन्तर्द्वन्द्व छाया रहता है, एक अन्तर्द्वन्द्व बना रहता है, कि जड़ क्या है? और चैतन्य क्या है? प्रत्येक मानव उसके ऊपर मानो अनुसन्धान कर रहा है, और सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक यह अन्वेषण चल रहा है। परन्तु अपन अपना निर्णय देकर के मानो देखो, विज्ञानवेत्ता, आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता, सब इसमें मानों मौन हो जाते हैं। तो इसके ऊपर विचार विनिमय किया जाए तो शिकामकेतु उद्दालक मुनि के विचारों को ले करके, महर्षि वैशम्पायन मुनि महाराज उपस्थित हुए, और महर्षि वैशम्पायन ने कहा, प्रभु! मेरे विचार में तो यह है, कि जो मैंने जाना है, मैं उसके आधार पर सूक्ष्म सी वार्त्ता प्रगट कर सकता हूँ। उन्होंने कहा उच्चारण करो। तो उन्होंने कहा कि जड़ और चेतना के सम्बन्ध में यह कि मानो देखो, जहाँ गति है, और गति के साथ में ज्ञान है, उसे तो मानो देखो, चैतन्य जगत माना गया है, और जहाँ गति भी

हो, परन्तु उसमें जड़वत् हो, वह पिण्ड रूप में भी क्यों न विद्यमान हों, जैसे पृथ्वी अपनी आभा में गतिवान हो रही है, चन्द्रमा अपनी गति में गतिवान हो रहा है, परन्तु सूर्य अपनी गति में गतिवान हो रहा है। जितने भी लोक लोकान्तर हैं चाहें वे मानो और मण्डलों के रूप में हों चाहे वे आकाश गंगा के रूप में हों, सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक प्रकार का गतिवान है। परन्तु इसमें जो वास करने वाले हैं ज्ञान और गति के साथ में जो गमन करते हैं। वे चैतन्य जगत है। परन्तु जो मानो ज्ञान से शून्य है, और वह गमन कर रहा है, अपनी परिणिधि पर तो मानो वह जगत सब एक प्रकार का मानो शून्यवत् माना गया है।

तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि वैशम्पायन अपना यह निर्णय दे करके, अपने में मौन हो गये। परन्तु जब ऋषि ने विचारा और पुनः कहा कि इससे आगे कोई वार्त्ता प्रगट करने वाला है। तो मुनिवरों! देखो, महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज उपस्थित हुए और उन्होंने यह कहा कि जड़ं ब्रह्मणाम लोकाम् वायु सम्भवम् ब्रह्मः वरुणा संभोति ब्रह्मः वाचम् ब्रहे कृतमः, मानो देखो, यह जो जगत है, यह प्रायः जैसा महर्षि वैशम्पायन ने अपना निर्णय दिया वह यथार्थ है। मुनिवरों! देखो, इसके ऊपर नाना प्रकार का विचार विनिमय होता रहा, परन्तु अपने में अभ्योदय अभु वर्णां ब्रह्मा कृतम्, तो ऋषि ने जब इस प्रकार का निर्णय दिया, तो इसके ऊपर नाना टिप्पणियां होने लगीं, और ये कहा कि गतिवान तो वायु भी है, क्या इसमें ज्ञान रहित है। उन्होंने कहा ज्ञान से शून्य है। गतिवान मानो प्रत्येक परमाणु है, वो ज्ञान से शून्य है, इसलिए उसमें प्राण सत्ता विशेष मानी गई है। इसीलिए वह जड़वत् है, परन्तु जहाँ ज्ञान का अभाव है, जहाँ ज्ञान और मुनिवरों! प्रयत्न का अभाव है, वहीं जड़वत् जगत कहा गया है। और जहाँ भी ज्ञान और प्रयत्न हैं देखो, वहीं चैतन्यवत् माना गया है। यो इसके ऊपर बेटा! विचार दे करके वह मौन हो गए।

विष्णु

विचारने से प्रतीत होता है कि परमात्मा का यह दो प्रकार का जगत है, बेटा! एक चैतन्य है, तो एक जड़वत् माना गया है। परन्तु देखो, इसके ऊपर मैं विशेषता मैं तुम्हें

वर्णन करने नहीं जा रहा हूँ, केवल ये तो विचार हम तुम्हें अपने भूमिकम् अपने विचारों की भूमिका बनाते, इन विचारों को व्यक्त करते रहते हैं, और यह उद्गीत रूप में गाते रहते है, कि जड़ और चैतन्य, दोनों ही प्रकार का जगत है। मेरे प्यारे! देखो, हमारे यहाँ और भी नाना प्रकार का वेदमन्त्र हमें उद्गीत रूपों में गा रहा था, वेदमन्त्र जहाँ यह जड़ और चेतना की वार्त्ता प्रगट कर रहा था, वहाँ आज का वेदमन्त्र, मेरे प्यारे! देखो, विष्णु शब्द में गमन कर रहा था। हे विष्णु! तू कल्याण करने वाला है, वह विष्णु अपने में मानों देखो, विष्णु जो पालन करने वाला है। हमारे वैदिक साहित्य में बेटा! नाना प्रकार की आलांकारिक वार्त्ताओं का विवरण होता रहा है, और यह वर्णन किया गया है कि हमारे यहाँ विष्णु के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु वह आलांकारिक रूप में भी है। वे मेरे प्यारे! देखो, यथार्थ और साहित्य रूप में भी परणित किए गए हैं। साहित्य रूप जब हम अलंकारों में अलंकृत करते रहते हैं तो वह साहित्य, मुनिवरों! देखो, विशुद्ध नहीं रह पाता। इसीलिए हमारे आचार्यों ने, वर्णन करते हुए कहा है कि अलंकार अपने अलंकृत रूपों में रहना चाहिए। परन्तु साहित्य अपने रूपों में रत्त रहना चाहिए। हमारे यहाँ जब भी देखो, किसी भी काल में जब साहित्य में अलंकार का अलंकृत हो गया है, मानो वह उसमें निहित हो गया तो साहित्य अपनी स्थलियों में मानों साहित्य नहीं रह पाता। जैसे हमारे यहाँ त्रेता के काल की वार्त्ताओं का वर्णन आता रहता है, त्रेता के काल में मुझे एक समय एक काल में देखो, महानन्द जी ने मुझे प्रकट कराया। परन्तु जब मैं त्रेता के काल की उन वार्त्ताओं में प्रवेश करता हूँ। जहाँ मुनिवरों! देखो, एक अलंकार को, मेरे प्यारे महानन्द जी के कथनानुसार आधुनिक काल में उसको साहित्य में लिया जाता है या उसको इतिहास में अलंकृत किया गया है। जैसे हमारे यहाँ आता है अहिल्या का वर्णन।

मेरे पुत्रों! हमारे यहाँ देखो, अहिल्या का वर्णन एक आलांकारिक रूपों में अलंकृत किया गया है। हमारे यहाँ यह आया है, कि अप्रतम ब्रह्मणः देखो, जब राम बन को जा रहे थे। मानो देखो, वन को जाते हुए जब उन्हें निषाद के दर्शन हुए, तो निषाद के दर्शन होते ही, उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से निषाद से कहा हे निषाधाम् ब्रह्मे, देखो, गुरु जी के

सहित है राम और लक्ष्मण दोनों, भयंकर वनों से जब गमन कर रहे थे तो उन्होंने अहिल्या को दृष्टिपात किया। हमारे यहाँ अहिल्या के बहुत से शब्द हैं, क्योंकि भगवान राम जब भयंकर वनों में जब आचार्य के कुल में अध्ययन करते थे, और आचार्य कुल में अध्ययन करते उन्होंने विज्ञान में विज्ञान की बड़ी ऊँची उड़ाने उड़ी गई। हमारे यहाँ विज्ञान त्रेता के काल भी बड़ा ऊर्ध्वा में गमन करता रहा है। हमारे यहां धनुर्याग की चर्चा करते हुए देखो, धनुर्याग में अपने में परणित हो जाना चाहिए। मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते, अश्वमेध याग की चर्चाएं की थीं। परन्तु जहाँ अश्वमेध याग की चर्चाएं हैं वहीं हमारे यहाँ धनुर्याग की चर्चा भी होती रही है। हमारे यहां धनुर्याग की चर्चा करते हुए देखो, धनुर्याग में अपने में परणित हो जाना चाहिए। मेरे पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ नाना ब्रह्मचारी अध्ययन करते रहते थे और अध्ययन करते समय देखो, मुनिवरों! देखो, महर्षि विश्वामित्र उनके विद्यालय में नाना प्रकार की शिक्षाओं को ब्रह्मचारियों को प्रदान करते रहते थे।

छठे माह में अरुणधती मण्डल की छाया

परन्तु वह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने एक समय मध्य रात्रि में दोनों विद्यमान थे, और वे विचार विनिमय कर रहे थे, मुनिवरों! देखो, माता अरूणधती ने यह कहा था कि प्रभु! आप इस विज्ञान में कहाँ तक गति कर गए हो, मानो जो यह वशिष्ठ मण्डल है और वशिष्ठ मण्डल के साथ में अरूणधती मण्डल कहलाता है। यह अरूणधती मण्डल की कहाँ कहाँ छाया प्रवहे प्रवीण होती रहती है, जिन छायाओं के आश्रित होकर के, मानव अपने में देखो, अपनेपन का भान करता रहा है। मेरे प्यारे! माता अरूणधती ने कहा हे प्रभु! एक समय मैं जब बाल्यकाल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव के यहाँ, अध्ययन करती थी। तो पूज्यपाद गुरुदेव, एक समय सब ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को लेकर के, राष्ट्र का भ्रमण करने लगे, और राष्ट्र से जब द्वितीय राष्ट्र में चले गए, तो मग्ध राष्ट्र में चले गए। मग्ध राष्ट्र में, मानो देखो, कात्यायन के गृह में हमारा वास हुआ।

जब कात्यायन के गृह के प्रवेश किया, तो, देखो, रात्रि समय हमने विश्राम किया। पूज्यपाद गुरुदेव से कात्यायन की गृहणी ने भोज इत्यादि से निवृत्त होकर, उनके चरणों में ओत प्रोत हो करके यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! ये धनुर्याग अमृति क्या है? तो मेरे प्यारे! देखो, पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, धनुर्विद्या का नाम धनुर्याग कहलाता है। तो इस समय देखो, उन्होंने एक प्रश्न और किया था कि ये जो अरूणधती मण्डल और वशिष्ठ मण्डल हैं, इन दोनों का परस्पर क्या समन्वय रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय पूज्यपाद इस वाक्य को नहीं जानते थे। वे न जान करके मौन हो गए, तो कात्यायन की गृहणी से यह कहा संभवम् ब्रह्माः लोकाम् मंगलम् ब्रही व्रण्हा स्वस्ते, कि हे दिव्या! मैं किसी काल में इसका उत्तर दूंगा। पूज्यपाद गुरुदेव अपने ब्रह्मचारियों के सहित, वहाँ से गमन करते हैं और गमन करके अपने आश्रम में आ गए। तो भगवन्! वह पुनः मग्ध राष्ट्र में पहुंचे नहीं, उसका उत्तर दे नहीं पाए। तो मेरी इच्छा यह है प्रभु! मैं, उस उत्तर को जानना चाहती हूँ। उस समय महर्षि वशिष्ठ ऋषि बोले हे देवी! तुम प्रश्न मेरे से कर रही हो या महर्षि विश्वामित्र से कर रही हो। उन्होंने कहा भगवन्! मेरे लिए तो दोनों ही बुद्धिमान हो, वैज्ञानिक हो, निर्माण करने वाले हो। प्रभु, मैं इसको जानने के लिए तत्पर रहती हूँ। उन्होंने कहा ये जो अरूणधती मण्डल है और वशिष्ठ मण्डल है, इन दोनों की अपनी छाया विद्यमान होती है, जब इनकी छाया गमन करती है, तो मानो देखो, जिन माताओं के गर्भ में छठे माह का गर्भाशय स्थापित होता है, तो छठा माह जब प्रारम्भ होता है, तो उस समय इन दोनों की छाया, बुद्धि के लिए उस बाल्य के ब्रह्मरंध्र पर उसकी छाया प्रवेश करती है और वह बुद्धि ओजस्वी बनाने के लिए, मानो उनकी छाया होती है। माता अरूणधती ने इस वाक्य को स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा प्रभु! ये मानो मेरी माता ने मुझे वर्णन कराया था। और मेरी प्यारी माता ने इसके ऊपर बड़ा अन्वेषण और अनुसन्धान किया। मेरे प्यारे! देखो, तो अरूणधती मण्डल और वशिष्ठ मण्डल दोनों की छाया की विद्याओं को माता जानती है, वे माताओं के जो पुत्र या पुत्रियां जन्म लेती हैं, वे एक महान् और ओजसत्व को प्राप्त हो करके,

विज्ञान में, ऊर्ध्वा में गमन करने लगते हैं।
तो मेरे प्यारे! देखो, यह वाक्य उन्होंने कहा तो ऋषि ने कहा हे वशिष्ठम् ब्रह्मः ब्रणान देवह ब्रहे। महर्षि विश्वमित्र बोले प्रभु! आप कुछ उच्चारण करना चाहते थे। मुझे उद्गीत गाईए, मुझे आज्ञा दीजिए, मैं कौन से क्रियाकलाप में परणित हो जाऊं। तो मुनिवरों! महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि मेरी इच्छा यह है, कि जाओ, तुम मानो देखो, एक धनुर्याग का आयोजन करो और धनुर्याग की रचना करो। मानो देखो, क्योंकि जिससे राष्ट्र और समाज और विज्ञान की रक्षा होती है, उस याग को प्रायः हमें कर लेना चाहिए। मेरे प्यारे! महर्षि विश्वामित्र ने यह स्वीकार कर लिया, और स्वीकार करके, मुनिवरों! उन्होंने दण्डक वन में यह अपना आयोजन किया, कि हम, ह्मब्रहे, देखो, एक धनुर्याग का आयोजन कर रहे हैं। मेरे पुत्रों! देखो, राम, लक्ष्मण और भरत शत्रुघ्न सर्वत्र ब्रह्मचारियों को बेटा! वहाँ धनुर्विद्या प्रदान की गई। वह दण्डक वनों में मुनिवरों! जो यज्ञ को विध्वंस करने वाले थे, दैत्य प्रवृत्ति वाले थे या द्वितीय राष्ट्र प्रवृत्ति वाले थे मानो उन्हें दण्डित करते हुए वह दण्डक वनों में, बेटा! शिक्षा के लिए उन्होंने आश्रय लिया और वे जब वहाँ गमनम् ब्रह्मे, देखो, जब गमन कर रहे थे, दण्डक वन के लिए, तो उस समय मुनिवरों! उन्होंने अहिल्या को दृष्टिपात किया। अहिल्या वज्र के तुल्य है, और उसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, अहिल्या कहते है, उस पृथ्वी को जो मानो वज्र के तुल्य हो और अन्न उत्पन्न करने वाली उसने क्षमता है कि अन्न दे सकती है, परन्तु हमारे वैदिक साहित्य में वह अहिल्या भी कही जाती है। मेरे पुत्रों! देखो, उस भूमि का नाम अहिल्या है और वसुन्धरा भी कहलाती है। तो राम ने निषाद इत्यादि से कहा कि इस भूमि में अन्न की स्थापना करो देखो, यह अहिल्या है, यह वज्र के तुल्य है, मानो देखो, इसकी चमड़ी को उधेड़ करके इसमें बीज की स्थापना करो, और इसमें अन्न की उत्पत्ति करो। मानो जिससे देखो, राष्ट्र और समाज में सम्पन्नता आ जाएं, अन्न की उपलब्धि होने लगे, और अहिल्या का सदुपयोग हो जाएं। मेरे प्यारे! देखो, उसमें अन्न की उत्पत्ति की गई। हमारे यहाँ आलांकारिक भाषा में, मानो अहिल्या नाम रात्रि को भी कहा गया है, और इन्द्र नाम सूर्य को कहा गया है, और गौतम नाम चन्द्रमा

को कहा गया है। मानो देखो, इसमें रात्रि में, बेटा! दोनों एक दूसरे, सम्भोग करते रहते है। रात्रि में देखो, रात्रि के अन्धकार को, उस रात्रि के शृङ्गार को, जब चन्द्रमा अपने में धारण करता रहता है, वह गौतम कहा गया है। हमारे यहाँ गोतः प्रव्हा, गौतम नाम के ऋषि भी हुए हैं बेटा! मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया, कि गौतम ऋषि का और महर्षि कपिल मुनि महाराज का दोनों का विचार विनिमय प्रायः होता रहता था परन्तु मैं आज इस सम्बन्ध में, विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह कि मुनिवरों! वह सर्वत्र अपने विचारों का उपयोग करते हुए भगवान राम और लक्ष्मण मानो सर्वत्र अपने चारों विधाता गमन करते, मुनिवरों! देखो, दण्डक वन में आ गए असुरों को समाप्त करते हुए आ गए। असुर कौन होते हैं? जो मुनिवरों! देखो, जो मानव अच्छाईयों में बाधक बनते हैं, जो विज्ञान में बाधक बनते है, जो द्वितीय राष्ट्र के गुप्तचर विभाग वाले होते हैं, वे भी इसी प्रकार के शत्रुवत् बन जाते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है राजा रावण का राष्ट्र बड़ा विशाल राष्ट्र था। रावण के राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था। उनका राष्ट्र इतना व्यापक बन गया था, अयोध्या राष्ट्र रह गया था जो रावण के आँगन में नहीं था, अन्यथा कुछ सूक्ष्म सा राष्ट्र राजा जनक का रह गया था, अन्यथा देखो, सर्वत्र उनका पृथ्वी मण्डल पर रावण का राष्ट्र छा गया, था। देखो, पाताल पुरी में उनके पुत्र अमृतम अहिरावण रहते थे। हिमालय से पार भी उनका राष्ट्र रहता था।

आज मैं विशालता में ले जाना नहीं चाहता हूँ, विचार यह कि वे राम इत्यादि सब दण्डक वनों में चले गए। मेरे प्यारे! ऋषि विश्वामित्र धनुर्विद्या उन्हें प्रदान कराने लगे। धनुर्विद्या क्या है? अणु और परमाणुओं का मिलान कराते हुए, अणु और परमाणुओं की विद्या को मानो जानते हुए नाना प्रकार के यन्त्रों को जानते थे, यन्त्रों में संलग्न हो गए, क्योंकि महर्षि विश्वामित्र क्योंकि वह इस विद्या के बड़े पारायण थे, और राम ने इस विद्या को महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में भी अध्ययन किया था। मेरे प्यारे! महर्षि भारद्वाज के आश्रम में भी वह इस विद्या को पाने के लिए पहुंचे। जब मुनिवरों! देखो, महर्षि भारद्वाज और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज एक स्थली पर विद्यमान हो

करके, ब्रह्मचारियों को, इस प्रकार की विद्याएं वो पान कराते रहते थे, तो, देखो, उन्होंने एक समय अहिल्या कृतिभा यन्त्र का निर्माण किया था, जिस यन्त्र की विवेचना, मैंने बहुत पुरातन काल में, तुम्हें वर्णन की थी। और वह क्या संभवम् ब्रह्मा लोकाम्, मेरे प्यारे! देखो, जो पृथ्वी के गर्भ में कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है? दस योजन की दूरी पर कितना खनिज है? वह मुनिवरों! देखो, यन्त्रों में उन्हें दृष्टिपात आता रहा। तो विचार क्या? ऐसे विज्ञान को जानने के लिए, उनका मिलान मिलाने के लिए, उन्होंने मेरे पुत्रों! एक मानो धनुर्याग का आयोजन किया था। याग का अभिप्राय यह है कि जहाँ अनुशासन और महानता, मेरे प्यारे! विज्ञान को विज्ञान में पारांगत में लाया जाता हो, उसका नाम धनुर्याग कहा जाता है। मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में बेटा! देखो, 285 ब्रह्मचारी धनुर्विद्या का अध्ययन करते रहते थे। मेरे प्यारे! देखो, धनुर्विद्या को पाने के लिए लंका से भी ब्रह्मचारी आते रहे, और भी राष्ट्रों से भी, पाताल पुरी से भी आते रहे। उनके यहाँ धनुर्विद्या में, अणु और परमाणुओं को जानने के लिए नाना प्रकार का अध्ययन कार्य होता रहता। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय बेटा! जब वे धनुर्याग कर रहे थे, तो मानो एक वर्ष में उन ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार होता, और उपनयन के पश्चात् देखो, उन ऋषि मुनियों के विचार और उनके यहाँ जो भी क्रियाकलाप था, वह परीक्षा के रूप में, उसका परीक्षण किया जाता था। और वह परीक्षण होता रहता। मेरे प्यारे! एक समय महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी कवंधि, ब्रह्मचारी सुकेता, महर्षि पणपेतु, ब्रह्मचारिणी शबरी मेरे पुत्रों! देखो, ये सर्वत्र उनकी विज्ञानशाला में, विश्वामित्र के दण्डक वन यज्ञशाला में आ पधारे। जब आ पधारे तो एक वर्ष के पश्चात् जब उनका दीक्षान्त उपदेश होता, तो दीक्षांत उपदेश में, मुनिवरों! देखो, अपना अपना विचार व्यक्त करते रहते। ब्रह्मचारी सुकेता ने उन ब्रह्मचारियों के मध्य में ये कहा, हे वैज्ञानिकों! हे ब्रह्मचारियों! विज्ञान में तुम्हारी कितनी गति हुई है, क्योंकि दो प्रकार के विज्ञान हमारे यहाँ माने गएं हैं। एक आध्यात्मिक विज्ञान है, और एक भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान में तुम्हारी कितनी गति है। तो मेरे प्यारे! उनमें एक श्वेतु महाराज के पुत्र सोमवृतिका ने कहा प्रभु! हे सुकेता! हमने

अपने यहाँ इतनी गति पाई है, क्या हम अपने यानों में विद्यमान हो करके हम मानो देखो, सूर्य की किरणों के साथ, अपनी परिक्रमा करते रहते हैं। मानो कहीं हम चन्द्रमा की परिक्रमा करते रहते हैं, और भी विज्ञान हमारे यहाँ एक एक परमाणु को हम विभक्त भी करते रहते हैं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। परन्तु ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा, कि हे प्रभु! तुमने किसी समय देखो, श्वेतकेतु जो एक परमाणु है उसका भी विभाजन किया है अथवा नहीं? तो उस समय देखो, ऋषि पुत्र ने कहा हे प्रभु! यह तो हम अब तक नहीं कर पाए हैं। उन्होंने कहा गमन करो, उसमें भी मानो देखो, एक समय हमारे आश्रम में ब्रह्मचारिणी शबरी, ब्रह्मचारी कवन्धी, यज्ञदताः ब्रह्मचारी, सोमकेतु सर्वत्र विद्यमान हो करके, अपनी विज्ञानशाला में उस परमाणु को जब हम विभक्त करने लगे, मानो देखो, जब उसका विभाजन हुआ जब उसका विभाजन हुआ होने लगा तो मानो देखो, हमने यन्त्रों से दृष्टिपात किया। तो उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड मानों देखो, ये नाना प्रकार की निहारिका, आकाश गंगाएं सौर मण्डल, सब उसमें दृष्टिपात आ रहे थे। सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसमें दृष्टिपात आ रहा था। उस प्रभु का विज्ञान तो बड़ा नितान्तर है, परन्तु उस प्रभु के विज्ञान को जानना हमारा कर्त्तव्य है। एक एक परमाणु में ब्रह्माण्ड है, जैसे मानव के एक शब्द में चित्र है, उसका क्रियाकलाप है, मानो देखो, उसमें उसकी वाणी है, शब्द है, सब विद्यमान रहता है। इसी प्रकार, एक परमाणु को जब विभक्त किया जाता है, तो उसमें मानो सर्वत्रता विद्यमान रहती है। मेरे प्यारे! देखो, जब ब्रह्मचारी सुकेता ने यह वर्णन किया, तो सोमकेतु अपने में मौन हो गए, उन्होंने कहा प्रभु! मैं सोम हूँ। मैं सोम का पुत्र हूँ। परन्तु हम इस विज्ञान को अग्रणीय बना पायेंगे। मेरे प्यारे! उस समय ब्रह्मचारी सुकेता ने एक प्रश्न ओर किया। उन्होंने कहा कि इसमें तुम्हारी कहाँ तक गति है माता के गर्भस्थल में एक बिन्दु है, और बिन्दु में मानो शिशु है, और वह बिन्दु की रचना में, देखो, सर्वत्र ब्रह्माण्ड विद्यमान रहता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा प्रभु! ये तो हमे अभी इसमें हमारी गति तो नहीं है। इतने में भगवान राम ने उपस्थित हो कर कहा हे ऋषिवर! हे ब्रह्मचारी! मानो देखो, ये महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा, जब हम अध्ययन करते रहते थे तो उन्होंने हमें वेदमन्त्र का एक उद्गीत

गाते हुए, यह वर्णन कराया था, कि एक एक रक्त के बिन्दु में, एक एक चित्र विद्यमान रहता है, और जिसका वह रक्त का बिन्दु है, उसी का चित्र उसमें दृष्टिपात आता है। यह भी सर्व सिद्ध है। परन्तु माता के गर्भ में अब तक हम निर्णय नहीं कर पाए हैं क्योंकि उसमें माता के गर्भस्थल में बड़ी विचित्रता है और एक विचित्रता यह है कि माता और पिता, मानो देखो, माता के गर्भ स्थल में जब शिशु बिन्दु का प्रवेश होता है, तो उसमें संस्कार दृष्टिपात आते हैं। मानो उसमें पिता, महापिता, पड़पिता, उसमें नाना पिताओं के रक्त सञ्चार रूप से, तरंग रूप में, वे रक्त में गमन करते रहते है, वे शुक्रत में गमन करते रहते हैं। परन्तु वहाँ एक विशाल ब्रह्माण्ड की उपलब्धि हो जाती है। हमने यह दृष्टिपात किया है कजली वनों में हमने पूज्यपाद महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज की संरक्षणा के आधार पर कजली वनों में, अपनी विज्ञानशाला में हमने यह दृष्टिपात किया है परन्तु यह विज्ञान बड़ा विशाल माना गया है। हमारे यहाँ, तक पहुंचे हैं कि एक रक्त के बिन्दु में, जिस मानव का रक्त का बिन्दु है उसका चित्र दृष्टिपात आ जाता है। तो मेरे प्यारे! जब ब्रह्मचारी जब ऋषि ने यह वाक्य प्रकट किया तो राम अपने में मौन हो गए और राम ने कहा हम अग्रणीय बन पाएंगे, हम इसके ऊपर अनुसन्धान कर रहे हैं। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में बेटा! दीक्षांत उपदेश क्या था? वह दीक्षांत उपदेश क्या था? वह दीक्षांत यह कि केवल एक दूसरे की परीक्षा लेना, एक दूसरे को निर्णय देना मुनिवरों! देखो, कि विज्ञान कहाँ तक गतिवान हुआ है? धनुर्विद्या में कितने पारायण हुए हो। धनुर्विद्या का परिणाम यह, देखो, परब्रह्म उसका एक ही मन्तव्य रहता, कि यन्त्र को जानो और वे यन्त्रः मुनिवरों! चाहे वे किसी अप्रतम राष्ट्र को विजय करने वाले हो, चाहे वे अपने यहाँ क्रियाकलापों में आने वाले हों। माता के गर्भस्थल में मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार के संस्कारों की उपलब्धियों के कारण, महर्षि सुकेता ने यही कहा है, कि हमने अपनी विज्ञानशाला में, माता पिता के मानो देखो, रजस्तम वीरतव को ले करके, उसमें हमने यन्त्रों से दृष्टिपात किया है, तो माता के गर्भस्थल में देखो, मानो उस बिन्दु में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्माण्ड बिन्दु में,

ब्रह्माण्ड शिशु में, ब्रह्माण्ड ही मुनिवरों! एक एक परमाणुवाद में निहित होता रहता है। मेरे प्यारे! मैं कहाँ चला गया हूँ, यह तो बड़ा अनूठा एक विज्ञान है, यह बड़ा अनन्तम मानो देखो, इस आभा में हम जाना नहीं चाहते हैं। बेटा! यह तो विचारों का वन है, विचित्रतम है। विचार केवल यह है कि मुनिवरों! देखो, धनुर्याग होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में धनुर्याग हो। ब्रह्मचारी अध्ययन करने वाले हों। उस धनुर्याग में इतने पारायण हो, यन्त्रों के द्वारा, बेटा! लोक लोकान्तरों में गमन करने वाले, ब्रह्मचारी रहने चाहिए। ऐसे आचार्य हो, जो मुनिवरों! देखो, समाधि के द्वारा, योग के द्वारा और मुनिवरों! क्रियातमक के द्वारा और तत्वों की सहायता ले करके परमाणुवाद को जानने वाले हों। मेरे प्यारे! वह परमाणुवाद बड़ा नितांतर रहता है। जो समाधि के द्वारा, साधना के द्वारा, और मुनिवरों! देखो, वह जो पञ्चीकरण है, पञ्च महाभूतों के द्वारा, जो परमाणुवाद को जाना जाता है, वह बाह्य जगत में और उसको आन्तरिक जगत में ले जाकर के मुनिवरों! देखो, उसका शुद्धिकरण होता रहता है। मेरे पुत्रों! देखो, आज मैं विशाल विवेचना में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह, प्रकट करने के लिए आया हूँ, कि हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का वर्णन होता रहता है। जहाँ मुनिवरों! देखो, देवयाग का वर्णन है, वहाँ धनुर्याग का भी वर्णन होता रहा है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की आज्ञा से, महर्षि विश्वामित्र ने बेटा! देखो, एक धनुर्याग की रचना की। वह धनुर्याग उन्होंने रचित किया उसमें देखो, एक सौ अमृतम् 285 ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे और वे धनुर्विद्या में लगे हुए, अणु और परमाणु को जानने वाले। उनके यहाँ ऐसा ऐसा विज्ञान था बेटा! अपने यन्त्रों में विराजमान हो करके वे, मुनिवरों! देखो, सूर्य की किरणों की सहायता से, यन्त्र का निर्माण, यत्र का गमन और सूर्य की परिक्रमा करते रहते थे। तो मुनिवरों! मैं विचार हम यह दे रहे थे, कि हमारे यहाँ देखो, धनुर्याग होता है, और उस धनुर्याग में हमें पारायण हो जाना चाहिए।

मेरे पुत्रों! देखो, ये दीक्षांत उपदेश होता। दीक्षांत में मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारी सुकेता ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा, हे ब्रह्मचारियों! हमारी जो विज्ञानशाला है, कजली वनों में, मानो देखो, उस विज्ञानशाला में नाना प्रकार की यज्ञशालाओं का

निर्माण हो रहा है। हम त्रिविद्या को जान करके मानो देखो, विज्ञान में प्रवेश करते हैं। हमारे यहाँ ऐसा विज्ञान है, कि यज्ञमान जब याग करता है, और वह स्वाहा उच्चारण करता है, तो ऐसे यन्त्र स्थित हैं, जिन यन्त्रों में यज्ञमान का, वह जितना यज्ञ का आकार है, उसका रथ बन जाता है, और वह आकार बन करके, सूर्य की किरणों पर क्या अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके, द्यौ लोक में जाता हुआ दृष्टिपात आता है। हे व्रतम ब्रहे! हे व्रणम् ब्रही! हे ब्रह्मचारियों! देखो, हमारा विज्ञान, हमारी विज्ञानशाला बड़ी विचित्र है। मानो देखो, यज्ञशाला है विज्ञानशाला है, उसमें जो भी हम शब्द उच्चारण करते हैं इसीलिए वेद का मंत्र यह कहता है यज्ञनं यजन्नम ब्रह्माः सुद्रो समम् ब्रह्माः होतं ब्रहे व्रताः वेद का मन्त्र कहता है कि यज्ञमान की वाणी को पवित्र बनाया जाएं। हे यज्ञमान! तेरी वाणी अंतरात्मा से पवित्र हो करके, स्वाहा को उद्गीत रूप में गाती रहेगी, मानो देखो, तो तेरा चित्र द्यौ लोक में प्रवेश करता रहेगा, और तू द्यौ को रथ बन करके तू द्यौ को प्राप्त होगा और यदि तेरी वाणी मंत्र द्वितीय कहता है वाणब्रहे देवम् ब्रह्माः होताम् ब्रह्वी संभवा द्यव्यम् ब्रह्मो त्रिवर्धोलेकम ब्रह्मः, वेदमन्त्र कहता है, यदि यज्ञमान की वाणी पवित्र नहीं होती है, तो वह जो रथ है, वह द्यौ से मानो देखो, यदि यज्ञमान की वाणी पवित्र नहीं होती है इस पृथ्वी और द्यौ के मध्य में वह नष्ट हो जाता है। वह शब्द द्यौ के और पृथ्वी के मध्य में नष्ट हो जाता है। यह बड़ी विचित्र वार्त्ता है, बेटा! यह प्रभु के मानो देखो, उस वेदमन्त्र में यह शब्द और यह विज्ञान की आभा आई, तो ऐसा क्यों? मेरे प्यारे! देखो, शब्द अशुद्ध होगा, मन से नहीं होगा, प्राण और विचार, वहाँ नहीं होगा तो मानो देखो, वह शब्द द्यौ लोक में शुद्ध बन करके नहीं जा सकता। वह मानो भूः से गमन करेगा, मानो देखो, भुवः में जा करके वह नष्ट हो जाता हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, शब्द कितने प्रकार के बने हैं? मानो देखो, कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो द्यौ लोक को चले जाते हैं, कुछ शब्द ऐसे है जो भू लोक में रह जाते हैं कुछ शब्द ऐसे हैं, जो द्यौ लोक में चले जाते है कुछ शब्द ऐसे हैं जो भूः लोक में चले जाते हैं कुछ शब्द ऐसे हैं जो भुवः लोक में करते है और मुनिवरों! देखो, वह वहीं समापन हो जाते हैं। यह बेटा! बड़ा विचित्र एक विज्ञान है, प्रभु के राष्ट्र का एक विज्ञान है, जिसके ऊपर मानव

अनुसन्धान अन्वेषण करता रहा है।
मेरे पुत्रों! देखो, विचार यह, कि हमारे यहाँ जब भी परम्परागतों से कोई याज्ञिक बना है, याग में उसकी भावना बनी है, तो उसका मन कर्म और विचार, मेरे पुत्रों! देखों, तीनों जब एक सूत्र के मनके बन करके, वह गमन करते हैं, उस साकल्य को ले करके, बेटा! हृदय रूपी यज्ञशाला में, जो हवि हो रही है, जो ज्ञान रूपी यज्ञशाला में, मेरे प्यारे! इन्द्रियों के विषयों की साकल्य बना करके, आहुति दी जा रही है वह बेटा! देखो, ब्रह्मलोक को प्राप्त हो रही है, वह ब्रह्म के मार्ग में जाने की एक पगडण्डी कहलाती है।
आओ मेरे पुत्रों! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ जैसे माता अपने गर्भ स्थल में, अपने शिशु को नाना प्रकार की विद्या दे करके, बेटा! उसे द्यौ में प्रवेश करा देती है। माता के गर्भस्थल में भी द्यौ कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, माता जब अपनी आभा में रत्त हो करके, मग्न हो करके, बालक को ब्रह्म विद्या प्रदान करती है, और ब्रह्म विद्या क्या, देखो, धनुर्विद्या भी देती है, और भी नाना प्रकार की विद्या में पारायण बनाती है, तो माता सौभाग्यशाली है। और वह माता मुनिवरों देखो, जननी कहलाती है, वह वसुन्धरा कहलाती है, वह मानो देखो, सुमिता कहलाती है, वहीं मेरे प्यारे! देखो, प्रभा कहलाती है। उसके भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप बन करके, वह विष्णु रूप बन जाती है। हे माता! तुझे वेद ने विष्णु कहा है और विष्णु बन करके तू अपने बाल्य को महान बनाती है। तू मानो देखो, ऊर्ध्वा में गमन कराती है, ऊर्ध्वा से ध्रुवा में गमन करा करके, जननी और वसुन्धरा बन करके तू अपने में बसा लेती है। तो मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, वेद का मंत्र जो कहता है उस उद्गीत को गाने के लिए सदैव हम तत्पर रहते हैं।
तो आओ, मेरे प्यारे! देखो, आज का विचार क्या? हम पृथ्वी वसुन्धरा को कहते हैं। इसी वसुन्धरा के गर्भ में बेटा! नाना प्रकार का खनिज विद्यमान है। जैसे अहिल्या का वर्णन एक आलांकारिक रूपों में अलंकृत किया गया है। वही अहिल्या का वर्णन, मेरे प्यारे! देखो, पृथ्वी के रूप में वर्णन किया गया, वही अहिल्या का वर्णन रात्रि के रूप

में हैं। वही अहिल्या का वर्णन, मेरे प्यारे! अज्ञान के रूप में है। यहाँ अहिल्या के नाना पर्यायवाची शब्द आते हैं। हमारे वैदिक साहित्य में, अहिल्या के बहुत से सूक्त माने गएं हैं, जिसका वर्णन करते हुए, उसे आलांकारिक भाषा में अलंकृत करते रहते हैं। तो आओ मेरे प्यारे! देखो, विचार क्या चल रहा है, हमारा विचार यह प्रारम्भ हुआ ब्रह्मणाम् ब्रहे, मेरे पुत्रों! देखो, ये संसार अपनी आभा में रत्त रहता है, और जितना भी यह जड़ जगत, और चैतन्य जगत है, यह अपनी आभा में अभ्योदय होता रहता है। दोनों के रूप में वह ब्रह्म ही विद्यमान है।

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को मानो देखो, अपनी मानवीयता के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। प्रत्येक मानव को इस अनुसन्धान में अनुसंधानीत होना चाहिए, जैसे ब्रह्मचारी सुकेता ने उनकी सभा में वर्णन किया। ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि हमारी विज्ञानशाला में, मानो देखो, यज्ञमान का आकार बन करके, द्यौ लोक को जाता है, और जब अशुद्ध वाक्यों के ऊपर अन्वेषण प्रारम्भ हुआ, तो मानो देखो, वह गति द्यौ और द्यौम् ब्रहे मानो द्यौ के और पृथ्वी के मध्य में, वह नष्ट हो गई। तो उसे नष्ट न करो। शुद्ध वायुमण्डल बना करके चलो।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! एक समय कागभुषुण्ड जी भी उनकी सभा में पहुंचे और कागभुषुण्ड जी ने यह कहा कि यदि कोई भी साधक ऊंचा बनना चाहता है, तो प्रथम उसे वायुमण्डल को ऊंचा बनाना चाहिए, जिस वायुमण्डल में मानो विराजमान हो करके हम अन्वेषण करते हैं, तपस्या करते हैं आत्मा को जानने लगते हैं, या हवि प्रदान करते हैं, तो वायुमण्डल के लिए शोधन करने के लिए, देव पूजा, याग करना चाहिए और याग मे मन कर्म वचन एक सूत्र में रहने चाहिए। जब याग कर्त्ता के लिए इन्द्रियों पर अनुशासन बहुत अनिवार्य है। जैसे राजा का राष्ट्र जब ऊंचा बनता है, जब राजा स्वयं अनुशासन में परणित हो जाता है। मानो देखो, विद्यालय जब ऊंचा बनते हैं, जब आचार्य जन अनुशासित होते हैं, मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी उसके पश्चात् अनुशासित होते हैं। मुनिवरों! आचार्यों का अनुशासित होना बहुत अनिवार्य है, और प्रजा के लिए

राष्ट्र को ऊंचा बनाने के लिए राजा का अनुशासन बहुत अनिवार्य है। यदि राजा में अनुशासन नहीं है तो प्रजा में अनुशासन नहीं रहेगा, और जब प्रजा में अनुशासन नहीं रहेगा, तो ये नाना प्रकार के याग मानो देखो, अपने में याग नहीं रह पाएगे। न धनुर्याग रहेगा, न अश्वमेध याग रहेगा, न यहाँ मानो देखो, अजामेध याग रहेगा। यागं रुद्रं भवा ब्रह्मणे, नाना प्रकार की रुढ़ियां भी नहीं रहती, जब राजा अनुशासित होता है।
तो मेरे प्यारे! तो विचार विनिमय क्या हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से एक बड़ा अनुभव होता रहा है कि राजा के राष्ट्र में जब ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढि बनी है, उसी काल में देखो, राष्ट्र प्रणाली नष्ट होती रही है। तो मुनिवरों देखो, नष्टता को प्राप्त होती रही है, मुझे मेरे प्यारे महानन्द की आधुनिक काल की बहुत सी चर्चाए प्रकट करते रहते है। परन्तु उनके प्रकट करने का जो विचार है वह बड़ा अद्वितीय है। बड़ी विडम्बना और एक दाह बनी रहती है। विचार केवल यही है यह धर्म के, ईश्वर के नाम पर भिन्न भिन्न प्रकार की जो रूढ़ियाँ होती हैं, वह राजा के राष्ट्र को निगल जाती है। राजा के राष्ट्र को अंधकार में ले जाती है। और वह अन्धकार एक समय वह आता है कि राजा के राष्ट्र की प्रजा बिखर जाती है, और राजा अपने में मानो देखो, चिंतित हो करके, उसकी आत्मा का हनन हो जाता है।
तो ये है बेटा! आज का वाक् आज मैं बेटा विशेष चर्चा न करता हुआ आज मैं बेटा! तुम्हें त्रेता के काल में ले गया जहाँ देखो, यह अद्वितीय विचार विनिमय होता रहा, ऋषियों का विचार विनिमय तो मैं कल ही प्रकट करूंगा। आज तो केवल मैंने तुम्हें सूक्ष्म सा परिचय दिया है, कि धनुर्याग किसे कहते हैं? धनुर्याग कहते हैं, अस्त्र शस्त्रों की विद्या को, धनुर्याग कहते हैं मानवता को, धनुर्याग कहते हैं जहाँ मुनिवरों देखो, राष्ट्रीयता और मानवीय दर्शनों की चर्चा होती हो और प्रकृति विज्ञान में रत्त रहने वाले मानव गमन करने वाले हों। जहाँ आध्यात्मिकवाद की चर्चा, बेटा! धनुर्याग में कहा है, वे चर्चाएं हम कल प्रकट करें। आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हमपरमपिता परमात्मा की महिमा और महानता को जान करके जड़ जगत और चैतन्य जगत को जान करके इस संसार सागर से पार हो जाएं। ये है बेटा! आज का वाक्। अब मुझे

समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाए कल प्रगट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन।

८ 30 09 1988 पुष्प 56 तीन प्रतिभा आहार, व्यवहार, वेशभूषा सांय

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्वसे जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही,उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जो परमपिता परमात्मा अनन्तमयी गगन करने वाले हैं वे गमन ब्रीहि वर्णास्वयम्ब्रव्हे देवाः मानो वे गमन ब्रीहि व्रताः, वे प्रत्येक प्राणी के हृदय में गमन करते हैं, अपना स्थान लिए हुए होते हैं। तो उस परमपिता परमात्मा की महती, और उसकी अनन्तता के ऊपर हमें सदैव विचार विनिमय करना चाहिए। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं और यह जो जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसमें उस अनन्तमयी प्रभु की महतीता है, दृष्टिपात आ रही है और हम यह विचारते रहते हैं कि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है, मानो वे यज्ञोमयी स्वरूप है। जितना भी यह जगत है, यह यज्ञमयी स्वरूप माना गया है। इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा को यज्ञोमयी स्वरूप के रूपों में परणित करते रहे हैं, क्योंकि वे सर्वज्ञ होने से वे महान है।

पवित्र व्यवहार की अनिवार्यता

तो हमारे यहाँ कुछ विचार विनिमय होता रहता है। वेद का मन्त्र हमें नाना प्रकार की प्रेरणा देता रहता है, क्योंकि हमारे वैदिक साहित्य में, वेद के मंत्रार्थ में, तीन प्रकार की प्रतिभा मानी गई है। मानो एक व्यवहार है, दूसरा विज्ञान है, और तृतीय आध्यात्मिकवाद है। मानो सबसे प्रथम हम अपने व्यवहार में इतने कुशल हो जाएं, हमारा व्यवहार किसके प्रति क्या क्या है, ऐसा हम अपने में विचारते चले आए हैं। जैसे मातृ है, पितर है आचार्यजन है, राष्ट्रवाद है, सभी के प्रति हमारा व्यवहार जैसे भी अवस्था समय अनुकूल हो, वैसा हो वह व्यवहार करना चाहिए। परन्तु जब मानव का व्यावहारिक

जीवन व्यवस्थित हो जाता है। व्यवहार में कुशलता आ जाती है। हम मानो देखो, अपने गृह में, वास करते हुए, अपना व्यवहार ऐसा होना चाहिए। जिससे गृह में स्वर्ग आ जाएं। जब व्यवहार में कटुता रहेगी, गृह में मानो नम्रता नहीं रहेगी, तो गृह नारकिक बन जाते है। इसीलिए वेद का मंत्र यह कहता है यश्वां ब्रव्हे वृत्तम् गृह तो मानव का व्यावहारिक जीवन पवित्र होना चाहिए। राष्ट्र के प्रति हम अपने में सहानुभूति करते हुए अपने को न्यौछावर करते चले जाएं। तो मुनिवरों! दिखो, जैसा भी अनुकूल हो, वातावरण के अनुकूल हमारा व्यवहार पवित्र होना चाहिए। हम आचार्यों के समीप विद्यमान होते हैं, तो आचार्यों के प्रति हमारी कैसी सहानुभूति होनी चाहिए, हमारा कैसा परस्पर व्यवहार होना चाहिए, परन्तु जब हम सहपाठियों में विराजमान होते हैं, वहाँ अपनी मनोनीत विचारधाराए प्रायः वहाँ प्रकट की जाती हैं, वहाँ भी व्यवहार मानवीयतव में होना चाहिए। परन्तु देखो, इसी प्रकार जब हम योग के क्षेत्र में जाते हैं, तो हमारे यहाँ सबसे प्रथम योग का एक ही शब्द यह कहता है कि हमें अनुशासन में रहना चाहिए। तो मुनिवरों! देखो, अनुशासन की चर्चाए हमारे यहाँ यौगिक आचार्यों ने वर्णन की है। तो मुनिवरों! जब यह प्रश्न किया गया वेद मन्त्रों में कि हम मानव ब्रव्हे वृता, अनुशासन का नाम योग माना गया है और योग का नाम अनुशासन है। यहाँ अनुशासन का अभिप्राय यह, कि यह व्यावहारिक है। क्या हमारी प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, जैसे हमारी रसना में रस है, नाना पदार्थों के रसों का अनुभूत कराने वाली रसना है। मानों देखो, परमाणुवाद को सुगन्ध दुर्गन्ध में वायु अमृतम घ्राण का सम्बन्ध पृथ्वी से होता हुआ, यह सुगन्ध कहलाता है। वह घ्राण का साकल्य है परन्तु श्रोत्रों का शब्द है अन्तरिक्ष उसका देवता माना गया है मेरे प्यारे! देखो, वह देवेत्व को प्राप्त होकर के शब्दों को गृहण कर रहा है, शब्दों में अपनी सहानुभूति नियुक्त कर रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह शब्दं ब्रह्मा देखो, वह उस शब्द को लेकर के रूपम् ब्रह्माः यह रूप हमारी इन्द्रियों में समाहित हो रहा है, मानो देखो, चक्षुओं में समाहित हो रहा है। अग्नि उसका देवता माना गया है, त्वचा में सर्वत्र प्रीति समाई हुई है, जिसका देवता वायु

कहलाता हैं।

तो मेरे पुत्रों! ये ज्ञानेन्द्रियां हैं। ज्ञानेन्द्रियों को अनुशासन में लाने का नाम वैदिक आचार्यों ने बेटा! योग कहा है। इसीलिए हमें योग में समर्पित होने के लिए भी, व्यवहार की आवश्यकता है, गम्भीर मुद्रा में अनुशासन की आवश्यकता है। तो बेटा! देखो, सबसे प्रथम हमारा बाह्य जगत का जो व्यवहार पवित्रतम होना चाहिए। दूसरी आख्यिका के वर्णन में वेद कहता है व्यवहार और विज्ञान। दूसरे रूपों में विज्ञान को अग्रणीय माना है। मेरे प्यारे! विज्ञान किसे कहते हैं? हमारे यहाँ, विज्ञान की बड़ी महतता मानी गई है। क्योंकि विज्ञान उसे कहते हैं जो मानव के आन्तरिक जगत में कुछ तरंगों का प्रादुर्भाव होता रहता है और उन तरंगों को सम्बन्ध, प्रभु के अमूल्य जगत से होता है, और वह जगत् में प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करते हुए, प्रत्येक वस्तु को गम्भीर मुद्रा में ले जाना और गम्भीर मुद्रा में ले जाकर के, उसको विचारना। जैसे हमारे शब्द हैं, ये शब्द हमारी एक स्थान से दूसरे स्थान पर कैसे जाता है? उसमें चित्र भी जाता है, शब्द भी जाता है, तो बेटा! ये विज्ञान माना गया है। इसको हम साकार रूप बनाने में लग जाएं तो यह सब हमारा विज्ञान है। एक मानो देखो, वायु मण्डल में सूर्य की किरणों अपना गमन करती है, एक मण्डल दूसरे ही परिक्रमा कर रहा है, और जब वह एक दूसरे की परिक्रमा में निहित हो रहा है, तो मानो उसका कोई सूत्र है। उस सूत्र को हमारे यहाँ बेटा! किसी ने प्राण सत्ता मानी गई है, कोई कोई मुनिवरों! देखो, उसको विकृति रूपों में स्वीकार करते है। परन्तु परिणाम यह होता है कि वह जो विज्ञान अपने में सार्थक रहना चाहिए। विज्ञान उसे कहते हैं, पृथ्वी के गर्भ में जाना, परमाणुओं का जो आदान प्रदानता हो रही है उस परमाणुओं को जान करके, उसके स्थूल रूप को जानना है और जान करके सूक्ष्मता को स्थूल रूप में निर्माणित करना है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह हमारे यहाँ, विज्ञान माना गया है। उस विज्ञान का जो भौतिकवाद है, जिस पर मुनिवरों! मानव अपनी अनुसन्धानशाला में विद्यमान हो रहा है, एक दूसरे परमाणु का मिलान कर रहा है, एक धातु का एक धातु से समन्वय कर रहा है, वह जो धातु पिपाद का समन्वय हो रहा है, उस समन्वयी धारा को सूक्ष्म बनाना, सूक्ष्मत्व से जानना

और उसको साकार रूप देने का नाम विज्ञान माना गया है। जैसे हमारे यहाँ यज्ञशाला है, उस यज्ञशाला में, यज्ञमान आहुति दे रहा है। और आहुति दे करके मुनिवरों! देखो, जब अग्नि उसको सूक्ष्म बना देती है, द्वितीय रूपों में परणित कर देती है उसमें मुनिवरों! देखो, जैसे अग्नि है, अग्नि की धाराओं पर जो भी विराजमान हो जाता है। वह उसका विशाल रूप बन जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उसका नाम भौतिक विज्ञान है, उस शब्द को जानना, अन्तरिक्ष में लय हो जाना, अन्तरिक्ष से उसे उर्ध्वा में लाना ये सब विज्ञान कहलाता है। परन्तु हमारे वैदिक साहित्य में विज्ञान का बड़ा महत्त्व आया है बड़ी मौलिकता आई है, क्योंकि परम्परागतों से ही ऋषि मुनि अपनी स्थलियों पर विद्यमान होकर वो भौतिक विज्ञान में भी रत्त होते रहे हैं। जहाँ उनका आध्यात्मिकवाद या व्यवहार और आध्यात्मिकवाद दोनों ऊर्ध्वा में रहे हैं वहाँ उनका विज्ञान विज्ञानां ब्रह्मे विज्ञान भी बड़ा मौलिक रूपों में रमण करता रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, यह भौतिक विज्ञान, अपने में बड़ा ऊर्ध्वा में गमन करता है, क्योंकि पांच प्रकार की जो प्रवृत्तियाँ हैं प्रकृति का जो स्वरूप है, वह पांच प्रकार के रूपों में विद्यमान रहता है।

सबसे प्रथम महर्षि पतंजलि जी से यह प्रश्न किया गया, कि महाराज! यह जो दृष्टिपात आने वाला जगत है, इसकी कितनी गतियां हैं? तो महर्षि ने यह वर्णन किया, कि प्रसारण और गतं ब्रह्मे गति, ध्रुवा मानो ब्रह्मे उर्ध्वा, और आकुञ्चन ये पाँच प्रकार की गतियों में ये सर्वत्र जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। चाहे वह इस देवतव में है, और चाहे देवतव में है परन्तु पांच प्रकार से विज्ञान दृष्टिपात आता है। सबसे प्रथम प्रसारण उसका फैलाव वृत्तियों में रत्त होना उसे प्रसारण कहते हैं। और मुनिवरों! देखो, गति, वही प्रसारण भी हो, उसमें गति भी हो, देखो, उसमें ध्रुवा और उर्ध्वा हो और उसमें आकुञ्चन मानो देखो, उसमें एक वृत्ति आकुंचित होनी चाहिए। तो बेटा! देखो, ये पांच प्रकार की गति है, इस प्रकृति की। इन पांचों प्रकार की गतियों में, मानव को रमण करना है, और पांचों प्रकार की गतियों को जानने का नाम, मुनिवरों! विज्ञान कहा जाता है। इसी विज्ञान में मानव को रत्त रहना चाहिए। तो मेरे प्यारे! यह मानो देखो, प्रसारण में, आकुञ्चन और गतियों में रमण करने वाला ध्रुवा और उर्ध्वा में जो वृत्त

वृत्तियाँ हैं मुनिवरों! देखो, उसका नाम विज्ञान है। तो हमें विज्ञान में रमण करना चाहिए, विज्ञान की मौलिक धाराओं को जानना चाहिए। तो मेरे प्यारे! देखो, हमारे वैदिक साहित्य में जहाँ व्यवहार है, वहाँ मुनिवरों! देखो, विज्ञान है। विज्ञान अपने कक्ष में बड़ी उर्ध्वा से गमन करता रहा है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में, वर्णन करते हुए कहा था कि जितना भी यह जगत है, वे तीन प्रकार के परमाणुओं में निहित और प्रभावित रहता है। मेरे प्यारे! तीन प्रकार के परमाणुवाद में ही सर्वत्र विज्ञान विद्यमान है, चाहे वह इस पृथ्वी मण्डल में हो, चाहे मंगल मण्डल से हो किसी भी लोक लोकान्तर में विज्ञान हो, परन्तु वह तीन प्रकार के परमाणुओं से घिरा हुआ है। परमाणु तीन हैं, गति देने वाली वायु है, और जहाँ गतिवान हो रहा है, उसका नाम अन्तरिक्ष है।

तो मेरे प्यारे! देखो, यह इसमें एक स्थली में बेटा! विज्ञान है, और तीसरा रूप आध्यात्मिकवाद कहलाता है। बेटा! आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं? अपने अव्ययों को जानना है। मानो देखो, हम जब वह विचारते हैं, कि आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं? तो आध्यात्मिकवाद कहते हैं, अपनी प्रवृत्तियों को नम्रता में परिणत कर देना। क्योंकि जब हमारा व्यवहार ऊँचा बन जाता है, हम विज्ञान को ऊर्ध्वा में जान लेते हैं वैज्ञानिक वस्तुओं को, तो हमारे आध्यात्मिकवाद में नम्रता आ जाती है, इतने व्यापक रूप से अपने जीवन का हमें प्रायः स्वीकार करना है, जिससे विज्ञान, जिससे मानो आध्यत्मिक विज्ञान हमारे समीप आ जाएं। आध्यात्मिकवाद में सबसे प्रथम नम्रता आ जाना है। नम्रता इतनी आ जाना, कि अपनी आत्मा के सम्बन्ध में विचारने लगें। परन्तु आत्मा का चिन्तन जब भी रात्रि या दिवस काल में, निद्रा से जागरूक हो जाएं तो उसी समय वह आत्मा के सम्बन्ध में अपने अन्तर्मुखी जगत में चला जाता है। अन्तर्मुखी जगत में जो क्रियाकलाप हो रहे हैं। उन क्रियाकलापों को, प्रभु के राष्ट्र में स्वीकार करने का नाम, बेटा! आध्यात्मिक विज्ञान कहा जाता है। आध्यात्मिक विज्ञान उसे कहते हैं जहाँ मुनिवरों! देखो, अपनी इन्द्रियों पर और प्राणों पर संयम करने वाला है। वह प्राण के ऊपर विचारता रहता है, वह मानो चित्त के मण्डल में विचारता रहता है। चित्त के मण्डल में वह प्रवेश कर जाता है तो आध्यात्मिक अपने में उपरामता को प्राप्त हो जाता

है। बेटा! आत्मा का विषय बड़ा विचित्र है। आत्मा के विषय को जब जानने लगता है मानव, तो बेटा! उसके लिए अहिंसा परमोधर्म मुख्यतव उसके अन्तर्जगत में आ जाता है, प्रवेशिका बन जाती है।

मुनिवरों! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय कुछ जिज्ञासु आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता, मेरे प्यारे! देखो, वे भ्रमण करते, महर्षि सुकेता के द्वार पर पहुंचे। और महर्षि सुकेता ने उनका मानो देखो, स्वागत किया। ऋषि मुनि जब जिज्ञासुओं ने सुकेता से कहा हे सुकेता! हम जानना चाहते हैं कि आध्यात्मिकवाद क्या है? तो सुकेता ने कहा कि आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं जो परमात्मा के राष्ट्र में जो अपने को स्वीकार करता रहता है कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ, मुझे इस संसार के अवयवों से कोई सम्बन्ध नहीं रहना चाहिए। ये वह परमात्मा के जगत और परमात्मा के प्रति आभा प्रहे अपने में रमण कराते वह उसी में रत्त हो जाएं तो उसको आध्यात्मिकवाद कहते है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह इतने में उन्होंने कहा प्रभु! महर्षि जालवी ने कहा, हे प्रभु! हम जानना चाहते हैं, कि आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं? उन्होंने कहा आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं, जो अपनी अन्तरात्मा को जानता है, अन्तरात्मा के दोनों गुणों में प्रवेश हो जाता है, क्योंक आत्मा का जो गुण वह ज्ञान और प्रयत्न कहलाता है। ज्ञान और प्रयत्न को जानने वाला, मानव आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता होता है। ज्ञान और प्रयत्न ये मानो आत्मा का मौलिक गुण कहा जाता है। वास्तव में तो राग, द्वैष, इच्छा, दुःख, सुख ये सर्वत्र मनस्तव के गुण माने गएं है। परन्तु कहीं कहीं आचार्यों ने उसके साथ, इनका समन्वय किया है परन्तु यह विचार करने से प्रतीत नहीं होता, तो मुनिवरों! देखो, विचार आता है कि आध्यात्मिकवादी वह पुरुष होता है, जो आत्मा के सम्बन्ध में विचारता है, आत्मा से सम्बन्धित जितना जगत है, उसमें विचारता है, वह मोक्ष की पगडण्डी पर जाने के लिए तत्पर होता है। तो मुनिवरों! देखो, वह प्राणायाम करता हुआ, अपने में उर्ध्वा गति बनाता है, उर्ध्वा में रमण करता हुआ, वह आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता कहलाता है। तो आज हम आध्यात्मिकवादी बनें। आध्यात्मिक जैसे, आचार्य विद्यालय में प्रवेश हो करके, सबसे प्रथम ब्रह्मचारियों को नैतिकता में परणित करता है। आचार्य कहता है, हे ब्रह्मचारी!

तुम अपनी अन्तरात्मा को भी जानने का प्रयास करो, मानो जहाँ तुम संसार की नाना भौतिक विद्याओं को अध्ययन करते हो, जहाँ तुम श्रृङ्गार रस विद्या को अध्ययन करते हो, जहाँ तुम मानो वनस्पति विज्ञान का अध्ययन करते हो, वहाँ आध्यात्मिक विज्ञान का भी तुम्हें ज्ञान होना चाहिए। आध्यात्मिकवाद में भी रमण करना चाहिए। मेरे प्यारे! आध्यात्मिकवादी जो प्राणी होते हैं, वे परमात्मा के राष्ट्र में, अपने को स्वीकार करते हैं, **तो ब्रह्मचारियों तुम आत्मा के विरह में इतने मग्न हो जाओ जिससे संसार का तुम्हें ज्ञान न रहे, केवल परमात्मा के राष्ट्र में परमात्मा की प्रतिभा में रत्त रहते हो, तो उसका नाम आध्यात्किवाद कहा जाता है।** मेरे प्यारे! देखो, वहाँ अन्धकार नहीं है वहाँ आलस्य और प्रमाद नहीं है। उसको त्यागना है, आलस्य और प्रसाद त्यागना है, और प्रभु के राष्ट्र में प्रकाश में रहना है, क्योंकि प्रभु का राष्ट्र प्रकाशमयी है। वहाँ रात्राणि नहीं है, वहाँ अन्धकार नहीं है, वहाँ प्रकाश का चरण होता रहा है। वह मुनिवरों! आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता कहलाते हैं।

तो आओ मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, आध्यात्मिकवाद की चर्चाएं स्मरण आती रहती है बेटा! जहाँ आध्यात्मिक अपने में बड़ा उर्ध्वा में गमन करता रहा है। आध्यात्मिकवादी कहाँ तक चला जाता है? बेटा! सर्पराज भी उसके चरणों में गमन करता है, सिंह राज भी उसकी वार्त्ता की श्रवण करता है, जब इतना विवेकी हृदय हो जाता है, इतना विवेकी आध्यात्मिकवाद में विरहन हो जाता है, तो मुनिवरों! देखो, वह सिंहराज, सर्पराज भी उसके मानो देखो, उसकी कृति में रत्त होते रहते हैं, तो विचार क्या, कि हम आध्यात्मिकवादी बनें। और देखो, व्यवहार, विज्ञान और आध्यात्मिकवाद यह चर्चाएं है विचार आता रहता है, बेटा! आध्यात्मिकवाद की चर्चाएं एक समय बेटा! महर्षि श्वेत्ताश्वेतर मानो देखो, अपने आसन पर विद्यमान थे। जब वे भयंकर बन में वेदों का अध्ययन कर रहे थे, तो अध्ययन करना उनका एक मौलिकता में रूप गमन करते रहते थे, तो मेरे प्यारे! देखो, उनको जब वह गान गाते स्वरों में वे तन्मय होकर के गान गाते रहते, आध्यात्मिकवाद में प्रभु को संलग्न कराते, कहते, हे प्रभु! तू महान है, हे प्रभु! तू आध्यात्मिक वृत्तियों में रत्त रहने वाला है, हे प्रभु! तू महान वृत्तियाँ में कृतियों

रहती है। तो मेरे प्यारे! देखो, सर्पराज, मृगराज, सिंहराज, सब मुनिवरों! देखो, उनकी वाणी को उनके विवेकमयी वचनों को और प्रभु के उद्गार को श्रवण करते रहते थे। जब श्रवण करते रहते तो बेटा! ऋषि जन उनसे प्रश्न करते कि महाराज! ऐसा क्या कारण है जो सिंहराज भद्रणाम् ब्रही जो हिंसक हैं, अहिंसामयी बन जाता है? उन्होंने कहा प्रभु! का जो राष्ट्र है वह अहिंसामय है वह हिंसा में नहीं है। प्रभु का राष्ट्र, जब अहिंसा में रहता है, तो जब प्रभु के राष्ट्र में चले जाते हैं, तो वहाँ कोई हिंसक ही नहीं है, वहाँ सब अहिंसामयी हैं, मानो देखो, अहिंसामयी परमो धर्म को अपनाते है। तो संगं ब्रह्मा वह मुनिवरों! वह आध्यात्मिकवाद कहलाता है जब मानव इतना संलग्न हो जाएं, कि वह सब में आत्मा स्वीकार करता हुआ न घृणा करता है, न द्वेष करता है, न क्रोधाग्नि को जागरूक करता है, मानो न तृष्णा में परणित रहता है, सबको त्याग देता है, और त्याग करके वह केवल एक प्रभु के राष्ट्र में अपने को स्वीकार करके और इदन्न् मम् जो कुछ उसके द्वारा सम्पदा है, जो भी संसार है, वह सब प्रभु की रचना का, रचनीय वृत्तियों में रत्त होता रहा है वह प्रभु की रचना स्वीकार करता है, तो मानो बेटा! वह आध्यात्मिकवाद कहलाता है।

तो आओ मेरे प्यारे! देखो, हमारे यहाँ सबसे प्रथम व्यवहार, उसके पश्चात् मुनिवरों! देखो, विज्ञान और उसके पश्चात् आध्यात्मिकवाद कहलाता है। यह आध्यात्मिकवाद अपने में बड़ा अद्वितीय एवं महान् माना गया है। अब मानो आज का विचार, अब समाप्त होने जा रहा है मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो विचार व्यक्त करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् दधिमा रथं आभ्यां रूद्राः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। मानो ये गागर में सागर की कल्पना है कि सर्वत्र ब्रह्माण्ड के प्रत्येक अव्ययों को तीन स्वरूपों में घटित कर देना है। तो गागर में सागर की कल्पना है। इसके पश्चात् हमारा जो वाक्यं ब्रहे पूज्यपाद गुरुदेव वाक्यों के उपरान्त कोई वाक्य तो प्रिय लगा नहीं करता है। मानो मैं उच्चारण करने योग्य भी नहीं क्योंकि उनके विचारों पर टिप्पणियां देना भी हमारा कर्त्तव्य नहीं है। तो आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव हमें व्यवहार, विज्ञान और

आध्यात्मिकवाद की कुछ चर्चाएं कर रहे थे। परन्तु आज मेरा तो कोई विशेष वाक्य नहीं, केवल आज, जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक याग का आयोजन हुआ परन्तु देखो, यागां रुद्रभागं प्रमाणां यजोंषि देवाः वह यज्ञोमयी याग है बड़ा प्रिय लग रहा है। मेरा अन्तरात्मा तो सदैव बड़ा ही प्रसन्न रहता है, और मेरा अन्तरात्मा यज्ञमान के साथ रहता है। हे यज्ञमान! तेरी वाणी को उद्गीत बनाने के लिए हम सब विद्यमान रहते हैं। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। परन्तु ये जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों की प्रतिभा मानव के हृदय में जागरूक होती रहती है, और मानव के हृदयों में जागरूक होने से उसकी प्रतिभा का जन्म होता रहता है। मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ, क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव बहुत कुछ उद्गीत रूप में गाते रहते हैं, परन्तु आज मैं तो इतना वाक्य उच्चारण करने के लिए आया हूँ, कि हे यज्ञमान! मानो यह जो काल चल रहा है, यह वाममार्ग का काल चल रहा है, जहाँ व्यवहार भी नहीं रहा है।

देखो, समाज की तीन वस्तुएं होती हैं, जैसा पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी वर्णन किया है। पूज्यपाद गुरुदेव तो उस काल की चर्चा करते हैं, परन्तु मैं तो यह उच्चारण करता रहता हूँ, कि यह जो काल है यह वाममार्ग का काल है। वाममार्ग उसे कहते हैं, कि जो सुलटें मार्ग से उल्टे मार्ग पर गमन कर रहा है। जैसे मानव का आहार है। मानव का जैसा निर्माण किया है, प्रभु ने उसी प्रकार के निर्माण के अनुसार उसका आहार है। तो आधुनिक जगत में इतना वाममार्गी समाज बन गया है, कि आहार भी अशुद्ध हो गया है। मानो आहारों में दूसरों के रक्त को पान करना, दूसरे के रक्त की अवृत्तियों को अपने में गमन कराना, और ऐश्वर्य में, विलासता में परणित रहना तो देखो, यह वाममार्ग का क्रियाकलाप है। द्वितीय यह कि देखो, सबसे प्रथम आहार और व्यवहार मानो व्यवहार में अशुद्धियां आ गई हैं। व्यवहार के साथ में उनके रहन सहन की प्रणाली है वे प्रणाली अशुद्ध हो गई है। वह अशुद्धं प्रणाना जहाँ एक दूसरे के परमाणु को निगलते रहते हैं, प्रवृत्ति को निगलते रहते हैं, सुषुप्ति का काल सुषुप्ति का स्थान, पवित्र नहीं बन रहा है। तो इसीलिए उसकी भूषा है, भूषा भी अशुद्ध हो गई है। भूषा हमने,

उन स्थलियों की अपनाई जहाँ शरद वायु चलती है, और जहाँ सूर्य ऊर्ज्वा देता है, वहाँ पर भूषा अपने में क्रिया कलाप नहीं कर रही है। तो इसीलिए अपनी संस्कृति अपनी मान्यता हमारी संस्कृति तीन वस्तुओं में विभक्त रही है। मानो सर्वप्रथम आहार में, द्वितीय व्यवहार में, और तृतीय रही है वेशभूषा में। ये तीनों ही भ्रष्ट हो जाते हैं, तो वाममार्ग का काल आ जाता है।

हे यज्ञमान! मैं तुझे अपने विचार इसलिए दे रहा हूँ संस्कार में, तेरे में भी वाममार्ग पन न आ जाएं। परन्तु वाममार्ग उसे कहते हैं जो उल्टे मार्ग पर चलता है, द्रव्य का दुरूपयोग कर रहा है। और द्रव्य के दुरूपयोग में, राष्ट्र ही वास्तव में वाममार्ग की प्रणाली को अपना रहा है। देखो, एक दूसरे में हिंसा वृत्तियों में रत्त होना यह सर्वत्र एक राष्ट्र की सूक्ष्मता है। राष्ट्र को विचारना चाहिए राजा को कि तेरे राष्ट्र में क्या हो रहा है। तेरे अनुशासन में कहीं भिन्नता है, कहीं अशुद्धिपन है इसीलिए समाज अनुशासन हीनता को प्राप्त हो रही है। कहीं तेरे में पद की लोलुपता विशेष है, इसीलिए समाज में पद की लोलुपता जागरूक हो रही है। इस प्रकार यह सर्वत्र एक राजा का क्रियाकलाप है। आज मैं विशेष चर्चा नहीं प्रकट करूंगा, केवल यह कि हे यज्ञमान! तू ऐसे काल में, अपने द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है, तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। मेरी सदैव यह कामना रहती है, इस कामना के साथ अपने विचारों में महानता की प्रतिभा को, अपने में जागरूक में लाना है जिससे मानव का व्यवहारिक जीवन तथ्य एक रूप में परणित हो जाएं। हे यज्ञमान! वृत्तं ब्रव्हा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यौगिककाद की चर्चाएं, विज्ञान की चर्चाएं, व्यवहार में रत्त रहना, यह वैदिक साहित्य का व्यवहार है, परन्तु निम्न व्यवहार भी देखो, अशुद्ध में न चला जाएं। तो यह आज का विचार मेरा तो यही है, मैं राष्ट्रवाद की, तो कोई चर्चा करना नहीं चाहता हूँ, क्योंकि राष्ट्र अपनी स्थलियों में विकृत हो रहा है, तो इसीलिए हे यज्ञमान! मेरा तो विचार इतना ही है कि हे यज्ञमान! तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहे। आज का विचार हमारा अब सम्पन्न हो रहा है, समापन हो रहा है, हम इसको

विराम दे रहे हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज महानन्द जी ने बड़ी सुन्दर वार्त्ता प्रगट की, कि आहार और व्यवहार और वेषभूषा अशुद्ध हो गई है समाज की, इसलिए वाममार्ग की प्रतिभा स्थलियों में रत्त हो गई। कोई वाक् नही समय आता रहेगा, परन्तु वस्तुओं का परिवर्तन होता रहता है। व्यवहार ओर कर्म भी परिवर्तित होता रहता है, आज इसके साथ में यह वाक् समाप्त होने जा रहा है, समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं प्रगट करेंगे। ओ३म् देवाः आभ्यां रथं मं देवाः ग्रहितां मां देवाः। ओ३म् यम वरुणाहः आपाहाम्। निवास स्थान श्री पूरन दास चालिया बी 11, साऊथ एक्स, पार्ट 1 नई दिल्ली 49 तिथि 30 09 88।

९ 15 10 1988 पुष्प 57 अंगद की शिक्षा

देखो, मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी मानो उसकी अनन्तता का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में होता रहा है। प्रत्येक वेदमन्त्र में नाना प्रकार की विद्याओं का और विज्ञान का वर्णन आता रहता है क्योंकि वेदमन्त्र आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद से अपने में पूर्ण है। इसीलिए हम प्रत्येक वेदमन्त्र पर अपना अन्वेषण करते रहे और विचारते रहे हैं और अपने मनस्तव और प्राणस्व की धारा में रत्त रहते रहें। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा प्राणेश्वर हैं, वे प्राणों का भी प्राण हैं मानो वह उदान का भी उदान हैं, वह सबका निर्माण कर रहा है अथवा उसको गति दे रहा है और वह गतिवान हो रहा है। तो हम उस परमपिता परमात्मा जो अनन्त है मानो जो सर्वत्र विद्या के मूल में विद्यमान रहता है, हम उस मूलक के लिए सदैव विचार विनिमय करते रहते हैं। यहाँ प्रथम हमारे वेद मन्त्रों में याग का वर्णन आ रहा था और भी नाना प्रकार के यागों का वर्णन अनन्य वेद मन्त्रों में स्वीकार किया गया है। हमारे आचार्यों ने परम्परागतों

से मानो उसके ऊपर अन्वेषण और मनन करना प्रारम्भ किया। वे मनन करते करते बहुत दूरी चले गए और इस संसार को जानने के लिए तत्पर रहे परन्तु जब इस संसार को जाना गया, उनकी दृष्टि में इन्द्रियों के ऊपर संयम कियागया तो प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को जब वे चिन्तन में लाने लगे तो उसमें अनन्तता दृष्टिपात आने लगी। जब किसी वस्तु में अनन्तता दृष्टिपात आने लगती है तो इतनी अनन्तता आ जाती है कि उसमें मौन हो जाता है और उसमें अपनेपन को विचारने लगता है। तो इसलिए हम परमपिता परमात्मा की महत्ती पर विचार करते हुए मानो बहुत दूर चले जाते हैं तो इतने अनन्तमयी गम्भीर क्षेत्र में प्रवेश हो जाते हैं कि वह क्षेत्र ऐसा है कि उन्हें न चिन्तन रहता है, वह समाधिष्ट हो जाता है। वह क्षेत्र इतना विस्तृत है मानो उसमें से ज्ञान विज्ञान की धाराओं का जन्म होता है। तो इसीलिए हम अपने में चिन्तनमयी बनें और मन कर्म मानो मन, विचार और प्राणों को सहीत्व तक अपना मनन प्रारम्भ करें।

आज इस संदर्भ में नाना प्रकार की विद्याओं का स्मरण आ रहा है। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में दो प्रकार की मुख्यता मानी गई है। उन प्रमुख विषयों में दो ही एक अनन्त विचारणीय प्रसंग है जिसके ऊपर मानव बहुत गम्भीर और पुरातन काल से मनन कर रहा है। परन्तु जब वह मनन में सफल होने को आता है उसी समय उसकी इतनी उग्र क्रिया बन जाती है वे परमपिता परमात्मा की महत्ती में इतना रत्त हो जाता है और अन्त में वह मौन हो जाता है। परन्तु इसी प्रकार हमें अपने विचारों को, अपने ज्ञान विज्ञान को इतना महान बनाना है जिससे हम दोनों प्रकार की आभा में मानो आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान दोनों प्रकार की धारों का जन्म हुआ और वह दोनों प्रकार की धाराओं के गृह में प्रवेश कर गया। दोनों भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञान एक दूसरे में पूरक कहलाते हैं। एक दूसरे में पिरोएं हुए से दृष्टिपात आते हैं। इसीलिए जब हम योगाम यजमर्थम् मनवर्तम मानो याग के ऊपर चिन्तन प्रारम्भ करते हैं तो दोनों प्रकार के यागों का सम्बन्ध हमारे आज के वैदिक साहित्य में आ रहा है। वेदमन्त्र कहता है कि एक भौतिक विज्ञान है और एक आध्यात्मिकवाद है। आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं और भौतिकवाद किसे कहते हैं? आचार्यों ने मानो जहाँ भौतिक विज्ञान अणु और परमाणु

और देखा, ◌े तरंगों वाला हे, जहाँ विज्ञान की चिन्तनवेत्ता अपने चिन्तन को समापन करता है, वहाँ से आध्यात्मिकवाद का चिन्तन प्रारम्भ हो जाता है। भौतिक विज्ञान में तो अणु और परमाणुओं की प्रमुखता रहती है और आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ताओं ने आध्यात्मिकवाद का चिन्तन करते हुए उसमें वह इतने रत्त हो गए कि उन्होंने अंधकार को त्यागने के लिए और अंधकार को प्रकाश में विलीन करने के लिए आध्यात्मिकवादी अपनी उड़ाने उड़ता रहा है और यह विचारता रहा है कि अंधकार को समाप्त करना, अज्ञान रूपी अंधकार को समाप्त करना, और प्रकाश में आना, हमारी दोनों प्रकार की मोहित वृत्तियां कहलाती हैं। जहाँ हम आध्यात्मिकवादी बन करके अपने में रत्त हो जाएं और आध्यात्मिकता में प्रवेश कर जाएं। नाना आचार्यों के यहाँ नाना विज्ञानों में भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना होती रही है इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के यागों का वर्णन भी हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है। मैंने तुम्हें कई काल में यह प्रकट करते हुए कहा था कि आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान दोनों दो प्रकार की धाराएं हैं जिन धाराओं में रत्त होकर मानो अपने में मानवीयता की आभा में रत्त हो जाता है। हम यह विचार देना चाहते हैं कि यह आध्यात्मिक विज्ञान अन्तरात्मा को जानना है। मानो यह कितना अल्पज्ञ है, जिस गृह में यह आत्मा रहती है मानो उसी से वंचित रहता है। ज्ञान नहीं है उसे परन्तु उसी से वह आहार में प्रवेश करता है उसी में व्यवहार है उसी में आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान है। उसी में विज्ञानवेत्ता है, उसी में परमात्मा के समीप जाना है परन्तु जो अन्तरात्मा जहाँ विराजमान है उस स्थली को भी मानव ने जानना है। कैसी विचित्र यह प्रभू की स्थली है, कैसा विचित्र है यह आत्मा! नाना प्रकार की भाषाओं को जानने लगता है। द्रव्य की लोलुपता में हो जाता है परन्तु द्रव्य को जानता है, द्रव्य का उपयोग भी जानता है परन्तु जब हृदय में जो आत्मा विद्यमान है उसे नहीं जान पा रहा है। उससे उतना ही दूरी है मानो उसका उसे प्रतीत नहीं होता है वह कौन स्थली है? यह कैसी मेरे देव की रचना है मानो जहाँ रचनायक रचनाकर्त्ता है न मानव को उसकी प्रतीत है मानव का हृदय मानव के हृदय से मानोदय को, शत्रुओं को दूरी कर लेते हैं और पुनः उसमें गति प्रदान कर देता हैं जब उस हृदय को मस्तिष्क से दूरी

कर देते हैं तो मानव को एक एक प्राण की प्रतिक्रिया भी नहीं आ पाती। अपने में उसे मृत्युंज्य अपने में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यह कैसा अनूठा जगत है, यह कैसा अनूठा विज्ञान है, यह कैसी रचना है? जिसके ऊपर रत्त होता रहता है परन्तु उसके ज्ञान और विज्ञान से कितना अल्पज्ञ है। तो हम अपनी अल्पज्ञता का ही वर्णन करते चले जाएं विचार विनिमय यह देते चले जाएं कि हम परमपिता परमात्मा की अनन्त महती को जानते हुए अपने में आध्यात्मिक नेंब, भौतिक विज्ञानवेत्ता बनें।

भौतिकवाद से यह जान लेना है कि तेरा शब्द कहाँ निहित हो गया है। द्यौ में प्रवेश कर जाता है परन्तु वह नाना प्रकार की उड़ाने उड़ता है। जब आत्मा की उड़ाने उड़ता है तो आत्मा जहाँ विश्राम करता है, जहाँ आत्मा से गतिवान हो रहा है उस गतिवान को नहीं जान पा रहा है। देखा, े विचार और वृत्तियों को हम अपने में चिन्तन में लाते रहते हैं। इस संदर्भ में विशेष चर्चा न देता हुआ आध्यात्मिकवेत्ता बनने के लिए नाना प्रकार का प्रयास प्रायः मानव करता रहा है। विचारता रहा है कि मेरा आध्यात्मिकवाद ऊर्ध्वा को प्राप्त हो जाए। और अन्तर्हृदय में जो अन्तरात्मा विद्यमान है जिसके कारण से हम गतिवान हो रहे हैं, ज्ञानवान हो रहे हैं, चरित्रवान हो रहे हैं उस आत्मा को जानने के लिए तत्पर हो जाओ। वह कैसे जाना जाता है? जब तक हम अपनी उग्र क्रिया नहीं बना लेते, उग्र क्रिया से उसको नहीं जान पाया। विचार आत्मा है यह मानो भौतिकवाद को जानना है परन्तु आत्मवाद को यह नहीं जानता है साक्षात्कार में क्योंकि आध्यात्मिवाद में ऊर्ध्वा में यह प्रकृतिवाद विद्यमान रहता है यह प्रकृतिवाद है वेद में इस को चरी कहा गया है। आचार्यों ने इसे चरि के रूप में वर्णन किया है और यह चरी है इससे मन की उत्पत्ति होती है। प्रकृति को चरी कहते हैं, और जहाँ तक मन की उड़ाने होती हैं वहाँ तक यह संसार को जान लेता है, परमात्मा के जगत को जान लेता है परन्तु जब यह आध्यात्मिक यानों के मनस्तव का विषय, इन्द्रियों का विषय जहाँ समाप्त हुआ वहाँ मौन हो जाता है। वह परमात्मा की रचना से वंचित रह जाता है। तो अपने में उग्रक्रिया बनाना यह मनस्तव की प्रतिभा मानी गई है और यह आध्यात्मिक विज्ञान देखो, े जब प्राण प्रकृति में रत्त हो जाता है और प्रकृति की आभा

रत्त हो करके आध्यात्मवादी अपनी विचित्र उड़ानें उड़ने लगता है। गम्भीर क्षेत्र के जाने मैं लिए सदैव तत्पर रहता है। आज का हमारा विचार यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की महत्ती को जानते हुए, परमात्मा के अनन्तमयी जगत को जानते हुए इस सागरमयी संसार से पार होने का प्रयास करें।

इससे पूर्व काल में यह चर्चा चल रही थी कि मानवकहाँ का कहाँ चला जाता है। जन्म जन्मान्तरों की धारा में रत्त हो जाता है। हमारे यहाँ नाना प्रकार का विज्ञान आध्यात्मिकवाद में प्राप्त होता है। मुझे स्मरण आ रहा हैवायु गोत्रीय ऋषि थे जो अपने में अनुष्ठान करते थे। एक समय वह कागभूषुण्ड के द्वार पर पहुंचे। कागभूषुण्ड भी अनुष्ठान में लगे हुए थे। ऋषि ने कहा हे भगवन! आप यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैं अनुष्ठान कर रहा हूँ। अनुष्ठान में लगा हुआ हूँ। ऋषि ने कहा यह अनुष्ठान क्यों कर रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे जीवन में अन्धकार समाप्त हो जाए और प्रकाश आ जाए। मानव प्रकाश के लिए प्रयास करता रहता है। अपने राष्ट्र में यह मनन करता रहता है कि मेरा राष्ट्र ऊंचा बने, परन्तु यह नहीं विचारता कि मैं पवित्र बन जाऊंगा तो मेरा राष्ट्र भी पवित्र बन जाएगा। जब इस आभा में मानव अपने पर चिन्तन कर लेता है कि मुझे महान वेदी पर रत्त हो जाना है। तो वह महानता की आभा में रत्त हो जाता है। विचार विनिमय क्या? विशेषता में न जाते हुए महर्षि कागभूषुण्डी जी महाराज और ऋषि दोनों का विचार विमर्श होने लगा। उन्होंने कहा हे प्रभु! मैं अपने में अनुष्ठान इसलिए कर रहा हूँ कि अन्धकार नष्ट हो जाए और प्रकाश आ जाए। जीवन की धाराओं में हम सब प्रवेश कर जाएं। ये जो नाना प्रकार के याग हैं, यज्ञ आदि हैं, क्रियाकलाप हैं और यहाँ तक कि विज्ञानवेत्ता भी यह चाहता है कि मैं प्रकाश में चला जाऊं। जानते जानते में प्रकाश में चला जाऊं। अनुष्ठान का अभिप्राय है कि हमारे से अंधकार दूर हो जाए और हम प्रकाश में चले जाएं। हम अपने अन्तःकरण को जान लें। हमारा जो क्रियाकलाप है वह इतना विचित्र और मानवीयतव से गुत्था होना चाहिए जिस गुत्थे हुए विज्ञान में रत्त हो करके हम मृत्यु से दूर हो जाएं।

कागभूषुण्ड यह विचारने लगे हे प्रभु! जो मेरे सातवें महापिता थे ऐसे मर्म को जानते

थे। एक समय उन्होंने मौन धारण कर लिया और मौन धारण कर अनुष्ठान में लग गए। अपनी अन्तरात्मा को जानने के लिए उन्होंनेपिच्चासीवर्षों तक मौन धारण किया और मौन धारण करके अपने 172 जन्मों के संस्कारों को जानकर के अन्त में मौन हो गए। यहाँ लाखों जन्मों के संस्कार उनकी तरंगों में रमण कर रहे हैं। बेटा! यह कैसा अनूठामयी जगत माना गया है? मुझे वह काल स्मरण आता रहा है जब भिन्न भिन्न प्रकार के यागों में मानव चयन करता रहा है। यागों की प्रतिभा का वर्णन करता रहा है। यहाँ नाना प्रकार के याग होते रहते हैं। एक प्राण यज्ञ होता है, जहाँ ऋषिवर प्राण के द्वारा यज्ञ करता है। वह प्राण को अपान में, अपान को व्यान में और व्यान को उदान में प्रवेश करके याग करता है। इसलिए वह प्राण को जानने लगता है। वह शरीर के किसी भी अंग में प्राण को रख सकता है। ऐसा यज्ञ प्राण यज्ञ कहलाता है। ब्रह्मचारी और आचार्य अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके प्राण यज्ञ को करते हैं। हमारे यहाँ एक यज्ञ वायु का शमन करने से होता है।

यह त्रेता की वार्त्ता है। एक समय महाराजा बाली अपने पुत्र अंगद को लेकर के वृहत्त ऋषि के द्वार पर पहुंचे और कहा कि मैं अपना बाल्य को प्राण विद्या सीखने के लिए तुम्हारे यहाँ प्रवेश कराना चाहता हूँ। वृहत्त केतु ऋषि ने कहाबहुत प्रियतम राजन्! मैं इसका अध्ययन कर लूं। उन्होंने बाह्य जगत का अध्ययन किया, उसकी वाणी और शब्दों में जो क्रियाकलाप था उसका श्रवण किया। परन्तु उसके पश्चात् उसकी परीक्षा ली परीक्षा लेने के पश्चात् राजा से कहा अच्छा भगवन्! प्रयत्न करता हूँ। तुम अपने पुत्र के सम्बन्ध में क्या चाहते हो? अपने पुत्र को कौन सी विद्या का अध्ययन कराना चाहते हो? बाली ने कहा प्रभु! जब मेरे पितामह ने मुझे रेंगनी भारद्वाज मुनि के यहाँ विद्यालय में प्रवेश कराया था तो मुझे प्राण की ओर समर्पित होने की विद्या को मुझे प्रदान किया था। मैंने उस प्राण विद्या को जाना जिससे मैं संग्राम में या अपने यन्त्र के द्वारा दूसरे की आधी प्राण शक्ति मेरे शरीर में स्थायी हो जाती है। मैंने इस विद्या का अध्ययन किया। मैंने इस विद्या में यन्त्रों को भी जाना परन्तु मैं इसमें असफल हो गया था। प्रभु मैं अपने पुत्र को प्राण विद्या में पहुंचाना चाहता हूँ। ये प्राण दस हैं। दसों प्राणों के बाह्य

जगत और आन्तरिक जगत को जानने के लिए जब मेरा यह पुत्र तत्पर हो जाएगा तो मेरा यह आत्मा शान्ति को प्राप्त होगा। वृहत्तकेतु मुनि ने कहाबहुत प्रियतम! मैं जानता होऊंगा तो इस विद्या का अध्ययन कराऊंगा। बाली ने कहा हे प्रभु! आप जानते हैं कि मेरे पिता मृचीकामुक जब किसी काल में मुझको अपने समीप विद्यमान कराते तो यह कहा करते थे कि जो महात्मा, जो महापुरुष जिस विद्या को जानता है, उसका प्रदर्शन करता है उसमें अभिमान को लाता है कि मैं जानता हूँ, वह जानता नहीं है, जो जानता होऊंगा तो प्रदान करूंगा जो ऐसा कहता है तो इससे सिद्ध होता है कि जानता है। मुझे पिता के वाक्य स्मरण आ रहे है। वृहत्त्केतु महाराज और अंगद का विचार विनमय होने लगा। ऋषि अन्वेषण करने लगे आश्र विचारने लगे कि यह ब्रह्मचारी किस विद्या के लिए भावुक है? अंगद ने कहा, प्रभु! मैं प्राण विद्या, के लिए सदैव तत्पर रहता हूँ। ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! प्राण किसे कहते हैं? अंगद ने कहा गति को प्राण कहते हैं। ऋषि ने कहा गति किसीसे समन्वय करने वाली है तो क्या बन जाता है? अंगद ने कहा, प्रभु! जब गति आत्मा से स्पर्श करती है तो ज्ञानवान बन जाती है और वही गति जब आत्मा से विमुख हो जाती है तो वही गति जड़वत बनकर रह जाती है। ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम बड़े सुयोग्य हो। आओ विराजो!

ऋषि के यहाँ एक कामधेनु गऊ रहती थी। त्रिपुरी में उन्होंने एक प्राण वृत्तिका यज्ञ करवाया था महाराज इन्द्र के यहाँ वह यज्ञ हुआ था महाराज इन्द्र ने उन्हें कामधेनु गऊ को प्रदान किया था। ऋषि ने कहा था प्रभु! मैं इस गऊ का क्या करूंगा। उन्होंने कहा गऊ का तुम पालन करो। यह गऊ मानो गवी शब्द में एक विज्ञान निहित रहता है, इसमें स्वर्ण गमन करता रहता है। हमारे यहाँ राष्ट्र का नियम है जिसको दक्षिणा देनी है तो गऊ दो क्योंकि गऊओं की रक्षा होना, गऊओं का पालन होना बहुत अनिवार्य है। ब्रह्मचारी ने कहा, प्रभु! मेरा जो बाल्यकाल है, वह एक तरह कामधेनु है। कामधेनु क्यों? क्योंकि मेरे हृदय में संकल्प जन्म लेगा। मैं अपनी कामना करने वाला बनूं। जिसका धन से, मन से सम्बन्ध होता है, उसे धेनू कहते हैं। यह मन को बलिष्ठ बनाती है। मन की कामनाओं की पूर्ति करती रहती है। जब इस मन की पूर्ति नहीं होती तो

यह रुष्ट हो जाता है। यह क्रोधाग्नि में और भी नाना प्रकार की वृतकृत्तियों में परणित हो जाता है। कामधेनु मन की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है। जब वृहत्तकेतु महाराज ने ये वाक्य श्रवण किए तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा ब्रह्मचारी मेरे प्रश्न का स्पष्टीकरण नहीं हो सका है। अंगद ने कहा, कामधेनु पशु है। यह दूध देने वाला है। यह विज्ञान का पुंज है। इसके दूध को पान करने वाला विज्ञान में रत्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में मैं इतना ही जानता हूँ। आगे नहीं जानता।

ब्रह्मचारी ने निरभिमानी होकर जब इन शब्दों में शाब्दिक उद्गीत गाया तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। वृहत्तकेतु ऋषि ने कहा, हे ब्रह्मचारी! तू धन्य है। तुम अब इस गऊ को ले जाओ और भयंकर वन में इस गऊ का दुग्धाहार करना। दुग्ध का पान करते हुए प्राण की सत्ता को जानना। ब्रह्मचारी ने इसे स्वीकार कर लिया और कहा धन्य है प्रभु! ब्रह्मचारी उस कामधेनु को लेकर भयंकर वन में गमन करने लगे। रात्रि आती तो दुग्धाहार करता और जो रह जाता उससे प्रातःकालीन घृत बना करके, समिधाओं के द्वारा अगन्याधान करता। इस प्रकार ब्रह्मचारी जी 12 वर्षो तक कामधेनु के पीछे गमन किया। जहाँ भी सायंकाल होता वह विश्राम करता एक समय उसी कामधेनु ने जब हिमालय की कन्दराओं में प्रवेश किया तो कामधेनु महर्षि वृषिशम्भु के आश्रम में पहुंची। ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। जब ब्रह्मचारी उनके समीप पहुंचे तो उनके चरणों को स्पर्श किया। महर्षि ने कहा, बेटा! तुम कामधेनु के सेवक हो। ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मैं सेवक नहीं हूँ प्रातःकाल और सायंकाल इसके चरणों की धूलि को जल में प्रवाह कर उसका आचमन करता हूँ क्योंकि इसके यहाँ एक एक स्वर्ण का परमाणु गमन करता है। यह कामधेनु मेरे जीवन का एग अंग बन गई है। ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, धन्य है। हे ब्रह्मचारी! अपने गो आश्रम को चले जाओ। अब ये गऊ बहुत सी कामधेनु बन गई हैं। तुम भ्रमण करते हुए अपने आचार्य के द्वार पर चले जाओ। वहाँ आकर दीक्षित हो जाओ।

ब्रह्मचारी कामधेनु गाय का दुग्ध पान करके प्राणायाम द्वारा प्राणों का एक अंग में समन्वय करना जान गया था। एक समय उसने सारे शरीर के प्राणां को एकत्र करके

सर्वण प्राणों कोएक नेत्र में अंगीकरण किया और वे अंगेश्वर हो गये। एक ही ज्योति दृष्टिपात आ रही है। सर्व अंग सुन्न हैं। पांचों प्राण एकाग्र होकर उसमें प्रवेश कर गये। वे प्राणों को पग में लाना चाहते थे तो पग में आ जाते थे। ऋषि ने तब कहा जाओ तुम गुरु आश्रम चले जाओ। आचार्य की आज्ञा का पालन करते हुए ब्रह्मचारी ने कामधेनु को कहा कि हे देवी! आज हम गुरु आश्रम को गमन कर रहे हैं। कामधेनु को लेकर वे गुरु आश्रम में आ पहुंचे। वृहत्तकेतु मुनि महाराजा ने ब्रह्मचारी को आते हुए दृष्टिपात किया तो देखो, ब्रह्मचारी अपने में बड़ा प्रसन्न है, कामधेनु भी बड़ी प्रसन्न है। ब्रह्मचारी ऋषि के आश्रम में जाते ही ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गए। ऋषि ने कहा कि हे ब्रह्मचारी! अब तुम्हें मैं दीक्षा दूंगा क्योंकि तुम अपनी परीक्षा में पूर्णत्व को प्राप्त हो गए हो। जब भी हमारे यहाँ ब्रह्मचारी आचार्य कुल में पहुंचे हैं तो ब्रह्मचारी को उन्होंने परीक्षा में कोई न कोई ऐसा नृत्य कराया है और उसमें सफलता को प्राप्त होने पर उसको दीक्षित बनाया है। जो सफलता को प्राप्त नहीं होते थे तो उनको दीक्षा नहीं दिया करते थे। ऋषि ने कहा आओ। मैं तुम्हें दीक्षित बनाना चाहता हूँ। ब्रह्मचारी ने कहा, प्रभु! जो आप मुझे दीक्षा देना चाहते हो उसमें तो मैं सफल मानो दीक्षित हो गया हूँ।

ऋषि ने कहा, आचार्य जब तक दीक्षित नहीं बनाएगा, दीक्षित नहीं हो सकोगे। तुमने अभिमान का शब्द उच्चारण कर दिया ब्रह्मचारी नम्र, विवेक युक्त व निरभिमानी होकर ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गया और कहने लगा, हे प्र्भु! क्षमा कीजिए, मेरे ऊपर कृपा करूणा कीजिए। मैं अभिमानी बन गया था। ऋषि ने कहा, नहीं, कोई बात नहीं। आओ विराजो। अब मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा। देखो, े! जिस विद्या का तुमने अध्ययन किया है, इस विद्या का तुम दुरूपयोग मत करना। इस विद्या का दुरूपयोग करने वाला ब्रह्मचारी, मानो ब्रह्मचारी न रहकर के पामर बन जाता हैं किसी भी विद्या को जानने के पश्चात् उसका सदुपयोग किया जाना चाहिए। जिस विद्या को तुमने जान लिया है, यह विद्या तुम्हारे लिए सार्थक होगी। इस विद्या में तुम अपने में अपनेपन का भान करते रहो। जिस ब्रह्मचर्य और पवित्र हृदय से इस विद्या का अध्ययन किया है, इस ब्रह्मचर्य शक्ति को प्राण में संलग्न करके सदैव अपने विचारों को यौगिकवाद में ले जाओ।

यौगिकवाद में ले जाने से इस विद्या की सार्थकता पवित्र होती है। यदि तुम में अभिमान आ गया और इस विद्या का दुरूपयोग किया तो यह विद्या शनै शनै लुप्त हो जाएगी। आचार्य ने इसए प्रकार की अमूल्य शिक्षा को देकर के कहा कि यह प्राण ब्रह्म के समीप ले जाने वाला है। इसलिए प्राणायाम करने वाला मानव अपने ब्रह्मचर्य के तत्त्वों को ऊर्ध्वा में गमन कराता हैं। जो ब्रह्मचर्य का हनन कर देता है तो सुकृत नष्ट हो जाता है और उसकी क्रिया की महानता नष्ट हो जाती है। इस विद्या से ब्रह्म प्राप्त होता है। प्राण वायु का प्रतिनिधित्व करने वाला है, अन्तरिक्ष और आकाश का प्रतिनिधित्व करने वाला है। पांचों पञ्चमहाभूतों का जहाँ एकीकरण हो जाता है, वहाँ प्राण इनको एक दूसरे में सुगठित कर देता है। हे ब्रह्मचारी! तुम्हें निराभिमानता से परमात्मा के समीप जाना है। ऋषि ने इस प्रकार का उपदेश ब्रह्मचारी को दिया और कहा तुम्हें सत्यता के ऊपर आरूढ़ रहना है, यह प्राण ही सत्य है, यह प्राण ही गतिवाला है। मानव जिसके सम्पर्क के परमाणुओं को लेता है वैसा ही बन जाता है। यह अग्नि के परमाणुओं को लेता है तो यह उष्ण बन जाता है। यदि वायु की और जल की शीतलता को लेकर के भ्रमण करता है तो यह शीतल बन जाता है। इसी प्रकार प्राणायाम करने वाला योगी बन जाता है। शीतली प्राणायाम् या प्राण में अपान को और अपान को व्यान में समावेश करके स्थिर होता है तो अपने जन्म जन्मान्तरों के अन्तःकरण के संस्कारों को उद्बुद्ध कर देता है। वायु मुनि महाराज प्राण के द्वारापिचासीजन्मों के संस्कारों को जान गए थे। इसी प्रकार तुमने भी इस प्राण विद्या को जान करके प्राण को एक अंग में लाने का प्रयास किया। यह तुम्हारी सफलता है। इसे अग्रणीय बनाओ। तुम्ळें योगेश्वर बन करके सत्यता में निष्ठित रहता है। ब्रह्मचारी ने ऋषि चरणों को स्पर्श किया, और कहा, प्रभु! आपने मुझे प्रकाश में पहुंचा दिया है। ऋषि ने कहा प्राण की हननता ही मृत्यु है। प्राण को जानना ही मृत्यु को विजय करना हैं तुम्हें मृत्युंज्य बनना है। इस प्रकार का आदेश देकर ऋषि मौन हो गए। ब्रह्मचारी उनके चरणों की वन्दना करने लगा। हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की विद्याएं रही हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब त्रेता के काल में रावण के यहाँ वही बाली का पुत्र अंगद दूत के रूप में पहुंचे थे तो

एक ही पग में सर्वत्र प्राण को ले आये। कोई बलिष्ठ ऐसा राजा रावण की सभा में नहीं था जो उसके पग को एक स्थली से दूसरी स्थली तक स्थित कर दें, मेरे प्यारे! देखो, े यह प्रण विद्या है, एक विद्या का वर्णन नहीं, नाना प्रकार की विद्याओं का वर्णन आता रहता है। आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ, तुम्हें ये वाक्य मैं इसलिए प्रगट कराने चला हूँ कि मानो वेद में भिन्न भिन्न प्रकार की विद्यायें हैं। इन विद्याओं का बेटा! समय आता रहेगा बारी बारी से वर्णन करता रहूँगा। आज का विचार यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा के ज्ञन और विज्ञान को जानकर इस संसार से पार हो जाएं आज का वाक् समाप्त। अब वेद का पठन पाठन होगा। सेठ महावीर प्रसाद सी 3/9, माडल टाऊन, दिल्ली 9 15 10 1988

१० 24 10 1988 संस्कार व नैमेत्तिक ज्ञान

देखो मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस पवित्र वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है, और यह परमपिता का अनूठा ज्ञान और विज्ञानमयी जगत है, जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है, और विज्ञान में जाना तो मानव का मौलिक गुण रहा है। क्योंकि प्रत्येक आभा में मानव अपने में रमण कराना चाहता है। और उसकी मनोनीत यह इच्छा रहती है कि मैं संसार का जितना भी ज्ञान है, अथवा विज्ञान है, जितनी भी विद्यायें हैं, उनको मैं सर्वोपरि और अपने में धारण करता रहूँ। तो यह परम्परागतों से ही, मानव की यह इच्छा बनी रहती है, और उसमें वह प्रयत्न भी करता रहता है, परन्तु जब वह चरम सीमा पर मानो रत्त हो जाता है। तो उसे कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता है। वह अपने में मौन हो जाता है। इसी प्रकार मानव का यह जो जीवन है, यह व्यवस्थित रहना चाहिए। बाल्यकाल से ले करके युवा और मानो देखो, अपने में अपनेपन का भान

रहना चाहिए। जिससे वह अपने जीवन को अच्छी प्रकार निर्माणित करता रहे।

नैमत्तिक व स्वभाविक ज्ञान

क्योंकि दो प्रकार का ज्ञान हमारे यहाँ प्राणियों में प्रायः प्राप्त होता दृष्टिपात आता है। एक नैमेत्तिक होता है और एक स्वाभाविक होता है। जितना भी ज्ञान हमारा स्वाभाविक ज्ञान है, वह प्रायः सभी प्राणियों में प्राप्त होता रहा है। मेरे पुत्रों! जितने भी प्राणीमात्र हैं, चाहे वह पृथ्वी पर रंगने वाले प्राणी हों, चाहे वे जल में गमन और समुद्रों में रमण करने वाले हों, चाहे वह अन्तरिक्ष में गमन करने वाले हों, परन्तु उनका ज्ञान एक स्वाभाविक माना गया है। वे स्वभाव में अपने में उड़ानें उड़ते रहते हैं। परन्तु हमारे यहाँ एक ज्ञान नैमेत्तिक होता है, जो हमें सम्पर्क से प्राप्त होता है। जैसे यह मानव का जीवन है तो मानव के जीवन में स्वभाविक तो प्रायः प्राप्त होता ही रहा है, परन्तु इसमें नैमेत्तिक ज्ञान होने से यह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वास्तव में तो प्रायः ऐसा प्रायः प्राप्त होता रहा है, कि नैमेत्तिक ज्ञान प्रायः सर्वत्र प्राणियों में भी प्रायः प्राप्त होता रहा है, सम्पर्क से, परन्तु मानव उसमें विशेष माना गया है। बाल्यकाल से ले करके जब माता के गर्भस्थल में शिशु प्रवेश होता है, तो वहीं से नैमेत्तिक ज्ञान इससे आरम्भ हो जाता है। माता के विचारों में यदि महानता है, तो वैसी तरंगें, वैसे परमाणुओं से सुगठित होने वाला हमारा शरीर, उसमें जो प्रवृत्तियाँ हैं वह उसी प्रकार सुगठित होती रहती है। गर्भासंस्कार से ले करके मानव अब यह संस्कार का उद्बुद्ध होता है। प्रत्येक मानव को यह विचारना है कि हमारे संस्कारों का समन्वय संस्कृति से दमन रहता है सन्सम ब्रहे ऋतम् मानो, **बिखरे हुए परमाणुओं को एकत्रित करना, बिखरी हुई प्रवृत्तियों को एकाग्र करना यह संस्कार कहे जाते है।**

मुझे स्मरण आता रहता है, नाना ऋषि मुनि बेटा! तपस्या करते रहे हैं। तपस्या में परणित होकर उनके हृदय में एक विचार धारा उद्बुद्ध हुई कि हम पुत्रेष्टि याग करेंगे। तो वे अपनी दिव्या से कहते है हे देवी! हम मानो पुत्रेष्टि संस्कार करना चाहते हैं, मेरे प्यारे! देखो, जैसे वे तपस्वनी होती हैं परन्तु जैसे उनकी विचारधारा अपने विचारों में

व्यक्त होते रहे हैं। बेटा! मुझे एक काल स्मरण आता रहता है, वह सतोयुग का काल था उसमें मिर्ची नाम के एक राजा हुए, और मिर्ची नामक जो राजा हुए अयोध्या के राजा थे वे बड़े सुसज्जित थे अपने में ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते थे। हमारे यहाँ यह स्वीकार किया गया है, कि राष्ट्रवाद कैसे ऊँचा बनता है। यह एक प्रसंग है। कि वह संस्कारों से ऊँचा बनता है, वह भी योग विद्या से संस्कृत किया गया है। राष्ट्रवाद मानो संस्कृत किया गया है मानो योग विद्या से, जितना भी हमारा योग का आचरण है, उससे राष्ट्रवाद की उपलब्धि होती है, और राष्ट्रवाद उसी की एक प्रतिभा कहलाता है या दूसरा स्वरूप माना गया है। तो मुनिवरों! देखो, राजाओं के यहाँ राष्ट्र को सुसज्जित बनाने के लिए, ज्ञानी बनाने के लिए राष्ट्र में नियम है, कि वेद ध्वनि वाले बुद्धिमान होने चाहिए, मानो तपस्वी होने चाहिए, विवेकी होने चाहिए, जिससे राष्ट्रीय समाज, राष्ट्रीय प्रजाएं निरभिमानी बन सकें, और वह अपने में पदों की लोलुपता में न चली जाएं। ऐसा राष्ट्रीय नियम हमारे यहाँ, परम्परागतों से माना गया है। मानो देखो, राजाओं के यहाँ एक नियम बना हुआ है कि भयंकर बनों में तपस्वी होने चाहिए। **जो तपस्वी मानो गृह आश्रम में प्रवेश होने वाले तपस्वियों के द्वारा जा सकें और अपनी शंकाओं का निवारण करते हुए अपने नैमेत्तिक ज्ञान को प्राप्त कर सकें। उसे हमारे यहाँ सत्संग के रूप में वर्णित किया गया है। वह मानो संस्कृत से, अपनी मानवीयता से वृत्त रहा है।** राजा के राष्ट्र तपस्वी भयंकर बनों में गमन करते और गृहस्थी जन जाते, पति पत्नी सब नियम से उनके यहाँ नैमेत्तिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जाते, आध्यात्मिक विज्ञान, योग विद्यायें और भी नाना प्रकार की विद्याओं को अपने में धारण करना है। ये सर्वत्र मानो नैमेत्तिक, राजा को किसी काल में आपत्ति होती आपत्त प्रहे, आपात काल में राजा भी अपने राष्ट्र को त्याग करके ऋषि मुनियों के आश्रम में प्रवेश होते, उनके द्वारा शंकाओं का निवारण करना। मानो देखो, उनके यहाँ जो नैमेत्तिक ज्ञान है उसे प्राप्त करने के लिए राजा भी नाना प्रकार के प्रश्न कर रहे हैं। क्योंकि ऋषि मुनियों का जीवन ऐसा है कि कोई विद्या उससे दूरी नहीं रहती। जब मानव प्राण और मन और विचार के द्वारा जब चिन्तन और मनन करता है और गम्भीर, गम्भीर मुद्रा में प्रवेश

करता है और वह साधारणत्व में भी गमन करता रहता है, नैमेत्तिक चिन्तन करता रहता है, और चिन्तन में जो शंका होती है, उसका वह निवारण भी कराता है। अपने मन के द्वारा जाता, मन आत्मा के समीप जाता है, और आत्मा से यह प्रश्न करता है, कि यह कैसे? तो उसमें एक विचार आता है और विचारों से ही गति का सञ्चार होता है। गति के सञ्चार से नैमेत्तिक ज्ञान की प्रतिभा उमड़ने लगती है। और नैमेतिकता में से वह अपनी शंकाओं में अपनी अंतरात्मा बाह्य और आन्तरिक, दोनों को उससे सम्बन्धित करते रहे हैं।

तपस्वी

तो मेरे प्यारे! विचार क्या यह देखो, राजा के यहां नाना प्रकार के भयंकर वनों में देखो, ब्रह्मचारी, तपस्वी जन तपस्या किसे कहते हैं? जो मानो अपनी इन्द्रियों को संयम करने वाले हों। तपस्या में रमण करने वाले कौन? जो मानो प्राण की ध्वनि को जानने वाले हों, प्राण में रत्त रहने वाले हों और परमात्मा के चिन्तन में लगे हुए हों, वेदाध्यन करने वाले हों, और उसमें मानो देखो, योग में अनुशासित होने वाले हों, ऐसे जो महान तपस्वी होते है। उनका आहार वह अन्न है, जिस पर किसी का कोई अधिकार नहीं होता। राजा के राष्ट्र में ऐसे तपश्चरी, जब नैमेत्तिक विचार धारा का प्रसार करने वाले, अध्ययन करने वाले, मानो देखो, आचार्य कुलों में ब्रह्मचारी भी इसी लिए प्रवेश करते हैं जिससे उनका नैमेत्तिक ज्ञान ऊर्ध्वा में गमन कर सकें।

मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है राजा के राष्ट्र में एक श्र्वेतकेतु मुनि रहते थे। श्र्वेतकेतु मुनि महाराज महान तपस्वी थे। वे ऐसे तपस्वी थे और वह ऐसे तपस्वी थे कि कई कई समय उन्हें अन्न को पाए हो जाते थे। वेद का अध्ययन, मन्त्रों में गम्भीरता में गमन करना, अपने अन्तःकरण में प्रवेश कर जाना, बाह्य जगत में चित्त को दृष्टिपात करना, ऐसे महान विवेकी थे। मेरे प्यारे! देखो, एक समय वेद का अध्ययन करते, तपस्या करते जब 31 वर्ष हो गए तो वेद में कुछ मन्त्र आ रहे थे और मन्त्र ये कह रहे थे वेद का, और मन्त्र ये कह रहे थे, असुतम वेदाम ब्रह्मणाम ब्रहे वायु पुत्रस्व्तत कृति लोकाम्। मेरे

प्यारे! देखो, याग के प्रकरण में जब पंहुचें तो याग के प्रकरण में जाने के पश्चात् उन्होंने यह अध्ययन किया कि मानव को पुत्र याग भी करना चाहिए। राजा के राष्ट्र में जो ऋषि होते हैं वह महान तपश्चर तपस्या में रमण करते हुए अपने में विचारने लगे कि मुझे पुत्रेष्टि याग करना है। पुत्रेष्टि याग के लिए अपने आसन को त्याग करके वे तपस्वी, सतोयुग के ऋषि भ्रमण करते हुए राजा के समीप पहुँचे। राजा ने ऋषि का स्वागत किया और अपनी राजस्थली को त्याग दिया और कहा कहो भगवन्! मेरे लिए क्या आज्ञा है? आज मैं नहीं जान पाया हूँ कि आप जैसे महापुरुषों का आगमन क्यों हुआ है? प्रभु! आपने मेरे आसन को पवित्र किया है। आप तपस्वी है, विवेकी हैं, वेदज्ञ है, वेद के मर्म को जानने वाले उससे उपरामता को प्राप्त हो गए हैं। हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ। मेरे लिए कोई आज्ञा है? मुनिवरों! देखो, ऋषि ने कहा, हे राजन्! मेरी कोई इच्छा नहीं है, मैं वेदों का अध्ययन करता रहता हूँ। सुअध्याय करने में पुत्रेष्टि याग का वर्णन आया है। मेरी इच्छा यह हुई है कि मैं पुत्रेष्टि याग करूँ और पुत्रेष्टि याग जब हो जबकि राजस्म ब्रही व्रतः मेरे प्यारे! उन्होंने कहा राजा ने कहा प्रभु! जैसा आपका वाक् कह रहा है वह मुझे स्वीकार है परन्तु मेरे द्वारा एक कन्या है मैं उसे समर्पित कर सकता हूँ। वास्तव में मुझे अधिकार नहीं है। जो कन्या चाहेगी, तो मैं उसे समर्पित कर सकता हूँ। राजा और ऋषि राष्ट्र गृह में प्रवेश हुए, तो राज कन्या ने नम्रता से स्वागत किया। राजा ने कहा कि हे कन्या! ऋषि की यह इच्छा है कि वे पुत्रेष्टि याग करूं। क्या तुम्हें यह स्वीकार है? ऋषि स्वीकार है तुम्हें? तो मुनिवरों! देखो, राज कन्या ने कहा प्रभु! मेरा तो बड़ा सौभाग्य है आज मैं एक ऋषि के आसन पर या ऋषित्व मेरे विचारों की तरंगों से पवित्र बन जाएं। क्योंकि मानव का तो नैमेत्तिक ज्ञान सम्पर्क से इतना विशाल हो जाना चाहिए कि वह ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ने लगे। प्रभु! यह तो मेरा सौभाग्य है। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने और राजा ने भी स्वीकार कर लिया। कन्या ऋषि के सहित भयंकर बनों में चली गई। बेटा! देखो, ऋषि अपने आसन पर विद्यमान होकर तपस्या करने लगे। देवी भी तपस्या करने लगे। बेटा! यह भी गायत्री छन्दों का पठन

पाठन करतीं।

राजा के राष्ट्र में नैमेत्तिक ज्ञान का उपदेश

राजा के राष्ट्र में विचारों में भी ऐसा नही क्या वह द्रव्य की आभा में रहने वाले हों, परन्तु राज गृहों में अपने अपनड नियम पालन करने से ही राष्ट्र ऊँचा बनता है। राजा के राष्ट्र में नैमेत्तिक ज्ञान का उपदेश देना और मानो देखो, प्रातःकालीन याग करना, याग के पश्चात् सुअध्याय करना, ब्रह्मयाग में रत्त रहना और अथिति सेवा में रत्त रहना हमारे यहां बेटा! एक अतिथि सेवा भी होती है अतिथि उसे कहते हैं मुनिवरों! देखो, परम्परागतों से मुझे स्मरण आता रहता है मानो उस काल में ऋषि आसन पर आते और ऋषि मुनि बेटा! गृह में अन्न का पान करके वह गृह स्वामी और स्वामिनी बड़े प्रसन्न होते रहते, कि आज हमारा अतिथि याग सफल हो गया है। अतिथि सेवा करना और पितर याग करना है। पितर याग का अभिप्राय यह है कि हमें पितरों की आज्ञा का पालन करना है। पितरजन अपने में मंगलम् ब्रह्मे पुत्र के लिए, पुत्री और गृह के लिए वह सदैव अपनी शुभकामना देते रहते हैं। वह पुत्र अमृताम पितर याग कहलाता है। उसके पश्चात् देव पूजा नाना प्रकार के यागों का वर्णन राजा के राष्ट्र में होता रहता। एक वर्ष में अश्वमेध याग होना सतोयुग के काल के ऋषियों का एक नृत्त रहा है, जिस नृतिका में रत्त होने वाला राष्ट्र अपने में नैमेत्तिक ज्ञान को समाज को दे करके राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाता रहे, ऐसा मानो राष्ट्र का एक नियम रहा है। इसीलिए राष्ट्र की प्रणालियों का निर्माण हुआ है। आज मैं निर्माण की चर्चा तो कल ही प्रगट करूंगा आज का विचार ये राजा के राष्ट्र में जब इस प्रकार की नियमावली, त्याग का उपदेश होता, तो पुत्र पुत्रियों को राष्ट्र को त्यागने में दुख नहीं है। क्योंकि वे त्याग देते हैं और अपना लेते हैं।

पुत्रेष्टि याग

इसीलिए कन्या ने राष्ट्र को त्याग दिया और जो तपस्या गृह में होती थी वह तपस्या ऋषि के सहित बनों में होने लगी। वह तपस्या में अपनी आभा में रत्त हो गए और देवी

अपनी आभा में। इसी प्रकार 15 वर्ष समाप्त हो गए। इन 15 वर्ष में न तो देवी को यह भान रहा कि तू ऋषि के आश्रम में है, न ऋषि को यह भान रहा कि तू राज कन्या को ले करके तपस्या में रत्त हो गया है। बेटा! कितना त्यागमयी जीवन और प्रवृत्तियों का जीवन कितना महान और पवित्र बना रहा है। विचार यह कि 15 वर्ष के पश्चात् ऋषि को यह भान हुआ। उन्होंने देवी से कहा कि हे देवी! मैंने वेद में यह अध्ययन किया था कि हमें पुत्रेष्टि याग करेंगे तो हमारी इच्छा यह है कि हमारा पुत्रेष्टि याग होना चाहिए। तो देवी कहती है कि हे प्रभु! आपको प्रतीत है कि हमारा जीवन तो तपस्वियों का है, हम तो तपस्या में परणित हैं। मैं जो आपके सहित आई हूँ, वह केवल तपस्या के लिए आई हूँ। हे प्रभु! पुत्रेष्टि याग तो राष्ट्र गृहों में होते हैं। जहाँ ऐश्वर्य को सामग्री होती है। हे प्रभु! यहाँ तो तपस्या की सामग्री है। आप तपस्या कीजिए मैं भी तपस्या कर रही हूँ। ऋषि ने कहा देवी! पुत्रेष्टि याग भी बड़ा अनिवार्य है। **उन्होंने कहा तो प्रभु! इस भयंकर बनों में नहीं जहाँ देवता भी हमें दृष्टिपात कर रहे हैं, जलचर भी दृष्टिपात कर रहे हैं, नभचर भी दृष्टिपात कर रहे हैं, भगवन्! यह कैसे हो सकता है?**

ऋषि ने अपनी देवी की वार्त्ता को स्वीकार कर लिया और एक समय भयंकर बन से उन्होंने राष्ट्र के गृह को प्रवेश किया। भ्रमण करते वह राष्ट्र में आए। राजा ने दृष्टिपात किया कि ब्रह्मवेत्ता का पुनः आगमन हो रहा है। राजा ने उसी प्रकार अपने आसन को त्याग दिया और उन्होंने कहा आईए भगवन्! विराजिए। ऋषि आसन पर विराजमान हो गए। राजा ने नतमस्तक होकर अतिथि करने के पश्चात् कहा प्रभु! मुझे आज्ञा दीजिए। आपका आगमन कैसे हुआ? ऋषि ने कहा मैं इसलिए आया हूँ, हे राजन्! मुझे पुत्रेष्टि याग करना है मेरे लिए गृह का निर्माण करो। देखो, ऐश्वर्य की सामग्री को एकत्रित करो। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। राजा ने एक जलाशय के तट पर उनके गृह का निर्माण किया और सब सामग्री उनको उपलब्ध की। ऋषि वहाँ से गमन कर भयंकर बनों में पहुँचे और अपनी देवी से बोले हे देवी! अब पुत्रेष्टि याग के लिए सब सामग्री एकत्रित हो गई है। देवी ने कहा प्रभु! बहुत प्रियतम। भयंकर बनों से भ्रमण करते हुए दोनों तपस्वियों ने उस गृह में प्रवेश किया, मेरे प्यारे! देखो, उसमें वास करने लगे।

मुझे कुछ साहित्य अध्ययन करने से यह प्रतीत हुआ कि ऋषि ने पुत्रेष्टि याग किया, उनके पुत्र का जन्म हुआ। जन्म होते ही उन्होंने भयंकर वनों को गमन कर दिया। भयंकर वनों में जा करके उस बाल्य को, उस ब्रह्मचारी को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। उस बाल्य को गर्भ में उन्होंने व्यवस्थित बनाया और गर्भाशय में प्रवेश होने से पूर्व तपस्या की और संस्कृत बनाया। मेरे प्यारे, देखो, गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश होते ही अमृतम ब्रह्मे तेशाम ब्रही नाना प्रकार के उपदेश को पान करते उस बाल्य को माता के गर्भस्थल से नैमेत्तिक बनाना प्रारम्भ किया।

मेरे प्यारे! माता के गर्भस्थल में बाल्य विद्यमान है नाभि से माता से वह सम्बन्धित रहता है, नाभि का समन्वय हृदय से रहता है। हृदय का सम्बन्ध ज्ञान और विज्ञान से रहता है, तो वह उसी में व्यवस्थित होने लगे। मेरे प्यारे! देखो, माता की नाभि से बालक का समन्यव रहता है, वह अपने में विचारधाराओं को ग्रहण कर रहा है। माता जो तपस्या कर रही है, तरंगों का शमन कर रही है। शमन करते ही उसमें प्रवेश हो रही है। प्रवेश होते एक अव्रताम जीवनांग वर्णामब्रही मेरे पुत्रो! दूसरा संस्कार पुनः उद्याम ब्रही वृत्तम वे संस्कारों में पुनः से संस्कृत करते हैं। जब वह जन्म लेता है। तो उसे नामकरण में उसे संस्कृतिक परिणाय, वृत्तियों में रत्त करा दते हैं। कहीं जन्म संस्कार की आभा में रत्त हो रहा है, मानो जूडाव्री कृति संस्कारों में रत्त हो रहा है, तो उसको संस्कृत बना रहे है। संस्कृतिक बनाते माता पिता तपस्या करते हैं और वे तपस्वी बन करके बाल्य को वेदारम्भ से पूर्व उसका भयंकर बनों में यज्ञोपवीत संस्कार करते जिससे बाल्य को याग करने का अधिकार आ जाएं। तीन सूत्रों में उसे कटिबद्ध कर देते हैं। उसे एक ब्रह्म ग्रन्थी में रत्त कर देते हैं। रत्त करके वह नैमेत्तिक ज्ञान में आता, नैमेत्तिक शिक्षा दे रहे हैं। हे बालक! वेदारम्भ करने से पूर्व तुझे याग करना है। याग करना भी देवताओं की पूजा करना क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख है और देवताओं के मुख में हमें परणित करना है और स्वाहा देना है जिससे हमारे शब्दों का समन्वय द्यौ से भूः भूवः में समन्वय करता हुआ, अपने में रत्त हो जाएं। माता पिता क्या विद्यालयों में आचार्य देखो, पिता हृदय से प्रीति कर रहा है और आचार्य कुल में उपनयन के पश्चात् उसे यज्ञोपवीत भी

कहते हैं जो यज्ञ के समीप जाना है, उसको यज्ञोपवीत है, और उसके पश्चात् जो वह विद्या का वेद का आरम्भ करता है उसे उपनयन, मानो प्रारम्भ में ही उसे उपनयन की वृत्ति प्राप्त हो जाती है। यह नैमेत्तिक ज्ञान होता है जो आचार्य का समन्वय मस्तिष्क से उसका सम्बन्ध हो जाता है।

माता का सम्बन्ध नाभि से है और पिता का सम्बन्ध हृदय से है और आचार्य का सम्बन्ध मस्तिष्क से है वह मस्तिष्क से उपनयन करने के पश्चात् उसे शिक्षा देता है। यह उसे वेदारम्भ करता है। अन्धकार से प्रकाश के लिए याचना करता है और कराता है। तो मुनिवरों! देखो, मानव का जीवन व्यवस्थित रहना चाहिए। जब मानव की यह प्रणालियाँ समाप्त हो जाती है। अपने अपने कर्त्तव्य में नहीं रह पाते तो मुनिवरों! देखो, सम्पदा समाप्त हो जाती है। मेरे प्यारे! सम्पदा अपने रूप में न रह करके वह कुरूप बन जाती है। विचार विनिमय क्या? नैमित्तिक ज्ञान होना चाहिए नैमितकता होनी चाहिए। वह नैमित्तकता ही तो माता पिता और आचार्यों के हृदयों से उसका जन्म होता रहा है नाभि से उसका जन्म होता रहा है। मैं एक ऋषि की गाथा प्रगट कर रहा था। ऋषि भयंकर बनों में तपस्या कर रहे है माता पिता वेद का अध्ययन कर रहे है। ब्रह्मचारी को शिक्षित बना रहे है। ब्रह्मचारी को कुछ समय अपने गृह में प्रवेश करा करके उसे ऋषि के, आचार्य के गृह में प्रवेश करावा जाता है। वह माता पिता भी अध्ययन करा सकते थे परन्तु वह नियमावली और व्यवस्थित जीवन नहीं रह पाता क्योंकि माता के गर्भ से जिसने जन्म लिया है उस बाल्य को माता उसी सोमा तक शिक्षा दे सकती है जहाँ तक उसकी वृत्तियों की सीमा है। पिता उतना ही हृदय से प्रीति करता है जहाँ तक उसके हृदय की सीमा है। आचार्य मस्तिष्क और हृदय दोनों से स्नेह करता है इसलिए जितनी विद्या उसके मस्तिष्क में अथवा बुद्धि में है, मेघा में है, ऋतम्भरा में है और प्रज्ञानी बना करके उसे मोक्ष की पगडंडी को प्राप्त करा देता है। जब विचार होता है, व्यवस्थिति जीवन बनता है तो उस आभा में मानव को रमण करना चाहिए।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि आचार्यजन अपनी आभा में निहित रहने वाले हैं। ऋषि ने ब्रह्मचारी को हृदय तक प्रीति की और माता ने की

परन्तु आचार्य कुल में प्रवेश कर दिया। वहाँ उपनयन संस्कार हुआ यज्ञोपवीत संसकार हुआ और उसे याग का अधिकार प्राप्त हो गया। वह याग करने लगा और वेद की विद्या को ग्रहण करने लगा। कोई भी विद्या वेद से पृथक नहीं है क्योंकि वेद कहते हैं प्रकाश को और विद्या कहते हैं प्रकाश में जाने को। जो विद्या को जानता है, वही तो प्रकाश में जो भी विषय है उस विषय में पारायण होना प्रकाश में जाना है परन्तु आध्यात्मिक वाद में जाना है, पारायणता को प्राप्त होना ही मानो प्रकाश में जाना है। जितना भी जीवन प्रकाश में रहता है। उस प्रकाश की आभा में निहित रहने वाला उपनयन कहा जाता है। वह उपनाम ब्रहे कृतं ब्रह्मचारी वेद का आरम्भ करता है उस आभा में परणित हो जाता है तो आचार्य हृदय से भी प्रीति कर रहा है। हृदय से चाहता है कि मेरा ब्रह्मचारी अयोग्य न रह जाएं, तपस्वी बने और वह यह चाहता है संभूति बुद्धि से कि बुद्धि इसकी मेधावी हो, प्रज्ञावी हो। देखो, मेधा, प्रज्ञा ब्रह्महे कृतं नाना रूपों में बुद्धि का समन्वय होना चाहिए। शमन करना चाहिए ब्रह्मचारी, जिससे मेरा नामोकरण ऊर्ध्वा को प्राप्त हो जाएं। वह बुद्धि से, मेघा से, ऋतम्भरा से प्रज्ञावी में प्रवेशकर जाता है वह सर्वत्र विज्ञान में सर्वत्र लोक प्रियता में सबका अध्ययन करता हुआ ब्रह्मचारी विचित्र वृत्ति का बन गया।

मार्कण्डेय ऋषि

उस माता पिता का ब्रह्मचारी मार्कण्डेय नाम के ऋषि थे। वहीं तो मार्कण्डेय ऋषि थे जो अपने में अभ्योदय करते रहते थे बुद्धि का, ज्ञान में विज्ञान में रत्त रहते थे। मुझे महर्षि का एक वाक् स्मरण आता रहता है। एक समय महर्षि मार्कण्डेय मुनि महाराज ने माता पिता और आचार्यों के सहयोग से एक यन्त्र का निर्माण किया। नैमित्तिकता से अग्रतम जीवन प्राप्त करने के लिए जहाँ पृथ्वी और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति रहती है, उस आभा में एक यन्त्र का निर्माण किया था जिस यन्त्र में वे विराजमान हो करके लोक लोकान्तरों के ऊपर अध्ययन करतेरहते थे। एक सय उस यन्त्र में 6 माह तक महाराजा शिव और पार्वती भी उस यन्त्र में विद्यमान रहे। मैं साहित्य में तो जाना नहीं चाहता हूँ

विचार मैं तुम्हें यह देने के लिए आया हूँ कि जब तपश्चर होता है मानवीयतव होता है तो गृह और समाज ऊँचे बनते हैं। और राजा का, राष्ट्र ऊँचा बनता है। क्योंकि राजा के राष्ट्र में विचार होना चाहिए, नैमेत्तिक जीवन होने चाहिए और दोनों प्रकार से उसे अभ्योदय होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में हिंसा नहीं होनी चाहिए क्योंकि हिंसा होने पर राष्ट्र में बुद्धिमान पुरुष नहीं रहेंगे। राजा के राष्ट्र में देखो, बुद्धिमान न रहने से विवेकी न रहने से, क्योंकि समाज में विवेक ही ब्रह्मवेत्ताओं से आता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, मैं आज तुम्हें विशेष विवेचना न देता हुआ, विशेष चर्चा न देता हुआ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, केवल तुम्हें परिचय देने के लिए चला आता हूँ कि राष्ट्रवाद में जो परिचय होता है वह बुद्धिमानों से, विवेकी पुरुषों से तपस्वियों से प्रारम्भ होता है। उनसे राष्ट्र ऊँचा बनता चला जाता है। और जहाँ राजा का पुरोहित न हो, राजा को व्यवस्थित बनाने वाला न हो तो राजाका राष्ट्र बिखर जाता है, प्रजा अस्त व्यस्त हो जाती है, प्रत्येक प्राणी चिन्तित हो जाता है और मानवीय दर्शन केवल शब्दों में रह जाता है। क्रिया उसकी समाप्त हो जाती है।

तो मेरे पुत्रों! देखो,आज मैं विशेष चर्चा न करता हुआ विचार यह दे रहा हूँ कि हमें अपने जीवन को व्यवस्थित बनाना है। गृह स्थलियाँ जब ऊँची बनती है जब गृह में जीवन व्यवस्थित होता है। पति पत्नियों का जीवन व्यवस्थित हो, दिव्या से दिव्या का समन्वय हो उस गृह में सब प्रकार की आभा उदय होती रहती है। जीवन जब व्यवस्थित नहीं रहता जहाँ नैमेत्तिक संस्कार, विचार नहीं दिए जाते तो प्रजा में पशुपन आ जाता है और वह पशुपन अपनाने से राष्ट्र स्वार्थ में परणित हो जाता है। उसकी सीमा ही स्वार्थ तक रह जाती है इसलिए प्रजा अस्त व्यस्त हो जाती है। आज का विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहे थे। वे परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है आभा में उदय होने वाले हैं। हम परमपिता परमात्मा की महती को जान करके अपने जीवन को ऊँचा बनाते इस सागर से पार हो जाएं। यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रगट कर सकूँगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। इसके पश्चात्वार्त्ता समाप्त। (कासिमपुर खेड़ी) 24 10

1988।

११ 02 11 1988 याग से मोक्ष प्राप्ति

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में, वह जो परमपिता परमात्मा है, जो अनन्तमयी है, उस प्रभु की महिमा का गुणगान गाया जाता है, उसको प्रत्येक वेदमन्त्र, उसके सम्बन्ध में विचार और विज्ञान की धाराओं को रक्त कराता रहता है। तो इसीलिए प्रत्येक वेदमन्त्र के ऊपर, हमारा अधिपथ्य होना चाहिए, और उसकी जो हृदय में, गर्भ में, जो देवता का जो उदबोद्धन हो रहा है, उस देवता को जानना चाहिए, वह सर्वत्र देवतव है, जहाँ देवता का वर्णन आता है, वहाँ देवतव मानो उस देवता की प्रतिभा का वर्णन आता है, वह संसार का नियन्ता है, अथवा निर्माण करने वाला है और जो भी उस सम्बन्ध में अथवा निर्माण करता है, वही देवता कहलाता है। जो सवोपरि, जो देवता है, वह तो परमपिता परमात्मा है, वह रचनाकार है, देवतव, परन्तु दूसरे रूप में जो देवता का वर्णन आता है, किसी का देवता अग्नि है, तो किसी का वायु है, मानो किसी का देवता पृथ्वी है, तो किसी का आपोमयी है, वह सब देवता इसीलिए कहलाते हैं, क्योंकि वह भी निर्माण में सहायक बनते हैं, और जो भी निर्माण में सहायक बनेंगे, वही देवता है।

निर्माण में सहयोगी देवता

मानो इसी प्रकार आचार्य जन भी देवता हैं, और मुनिवरों! देखो, पितर जन भी देवता है, क्योंकि वह निर्माण में सहयोगी बनें हुए हैं, और जो भी निर्माण में सहयोगी हैं, वही देवता हैं। तो यहाँ परमपिता परमात्मा का नाम देवता है, वह निर्माण करता है, और जो भी निर्माण में सहायक है, वह सब देवता कहलाते हैं। ये मैं बेटा! आज, वेद की एक आख्यिका आ रही है, वह जो उद्गीत रूप में गान गा रही है, उसके सम्बन्ध में,

मानो उसका हम वर्णन कर रहे हैं। तो हम मानो यह जो देवता की उपासना करें, देवता को जाने और विचारें और उस देवता के अनुकूल अपने जीवन को बनाने का प्रयास करें,और हम भी निर्माण में सहायक बनें, तो प्रभु का रचाया हुआ, यह जो अनुपम जगत है, मानो जगत में जो भी रचना कर रहा है, मानो जो विचार दे रहा है, वह सब देवतव कहलाए जाते हैं।

तो आओ, मुनिवरों! हम देवता की उपासना करें, देवता के समीप विद्यमान हो करके, उसकी सुगन्ध को, अपने में धारण करें, उसके जो क्रियाकलाप है, उन क्रियाकलापों को अपने में अन्तर्हृदय में उसका चित्रण करते हैं, जिससे बेटा! हम देवता बन जाएं, क्योंकि देवता, जैसे अग्नि देवता है, तेज आना चाहिए। जल देवता है, शीतलता आ जानी चाहिए। पृथ्वी देवता है, गुरूतव आ जाना चाहिए। आकर्षण शक्ति मानो वह जलों को अप्रतं वायु देवता है। तो हमारे हृदयों में गति, विशुद्ध गति आ जानी चाहिए। अन्तरिक्ष मानो देखो, हमारे हृदय में, अवकाश होना चाहिए गमन करने के लिए, क्रिया करने के लिए, वह सब हम अन्तरिक्ष देवता व्रण सुताः उसमें हम गमन करने लगते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, यह सर्वत्र मानो, एक प्रकार की वैदिक साहित्य में एक आख्यिकाएं और मानव दर्शन को जानने के लिए, मानव को अपने ही मानवतव को जानना है, दर्शन में जाना है, जब मानव दर्शन में चला जाता है, तो वह दार्शनिक बन करके, बेटा! अपनी आभा अभ्योदय होता रहता है। तो आओ मुनिवरों! हम परमपिता परमात्मा को, अपना देव और नाना प्रकार के देवता रूप में हम अपने को उज्ज्वल और स्वच्छ बनाते रहें, जिससे हमारा जीवन एक महान बन जाएं। तो आओ मुनिवरों! देखो, आज मैं तुम्हें विशेषता में, तुम्हें ले जाऊंगा नहीं, केवल उन विचारों में, पुनः से बेटा! प्रवेश कराना चाहते हैं, जिन विचारों को, हम विराम दे गएं थे, मानो उन विचारों में जाना चाहते हैं, जहाँ ऋषि मुनियों के विचार आते रहते हैं।

महर्षि उद्गम मुनि के यहाँ, ऋषियों की सभा

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय बेटा! देखो, महर्षि उद्गम मुनि के यहाँ,

बेटा! एक सभा हुई थी और उद्दम मुनि के यहाँ बड़े विचित्र तपस्वी पुरूषों का आगमन हुआ। तो मुनिवरों! देखो, वह, उसमें मुदगल ऋषि इत्यादि विद्यमान थे, अंगिरस और वायु श्वेतकेतु मुनि और महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज वायु गोत्रीय, और श्वेतकेतु अंगिरस, तो ये नाना ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ था। बेटा! तो मुनिवरों! देखो, उस सभा में यह निर्णय होने लगा, क्या यज्ञं भवितां ब्रह्मणे मानो यज्ञ से हमें क्या वस्तु प्राप्त होती है? यह एक प्रसंग ऋषि मुनियों के मध्य में विद्यमान हुआ, तो महर्षि मुदगल ऋषि ने यह प्रश्न किया, क्या याग से हमें क्या लाभ और याग किसे कहते हैं?

तो मुनिवरों! देखो, उस सभा में मुदगल ऋषि से सब ऋषियों ने एक प्रश्न किया, क्या आप ही उसका निर्णय दीजिए, जो प्रश्न कर्त्ता होता है, उसे निर्णय देना अनिवार्य है, अन्यथा उसका हृदय तपस्वी नही हैं। क्योंकि जो तपस्वी होता है, वह परमात्मा के गर्भ में होता है और जो परमात्मा के गर्भ में होता है वह शंका से रहित होता है, क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में जब अन्धकार नही हैं, तो यह तुम्हारे अन्तर्हृदयों में, कैसे उपलब्ध हुई? तो महात्मा मुदगल मुनि महाराज, ऋषि मुनियों से, ये प्रार्थना करने लगे कि प्रभु! मानो हम तो प्रश्न और शंका में नही, हम तो केवल आपके समीप इसीलिए आए हैं, क्या हमारी जिज्ञास पूर्ण हो? एक मानव जिज्ञासु होता है, एक यथार्थी होता है, तो यह जो यथार्थी है, वह यथार्थ को जानने वाला, ब्रह्म में वृत्तियों में रत्त होता है, जो मानो जिज्ञासु होता है, वह जानता है। परन्तु उसमें जिज्ञासा क्या, मैं बुद्धिमान के द्वारा, क्या जो मैं जानता हूँ, वह वास्तव में यथार्थ है, उसमें मैं विचरण कर रहा हूँ, वह मिथ्या है। तो यह जब उसे जिज्ञासा जागरूक होती है, तो यह प्रश्न करता है।

तो महात्मा मुदगल ने ऋषि मुनियों के मध्य में यह कहा प्रभु! यह शंका नहीं है। शंका तो उसे कहते हैं मानो देखो, एक वस्तु को हम जानते हैं और जानने के पश्चात भी नही जानते, तो उसमें शंका बन जाती हैं, मानो जैसे हम एक वस्तु को जानते हैं, क्या यह ध्रुव मण्डल है, परन्तु ध्रुव मण्डल को जानते हैं, कि उसके पश्चात भी हम यह शंका करें, कि है या नही हैं, यह कोई और ही वस्तु न हो, तो यह निर्णय करने के पश्चात भी, शंका अपने अन्तर्हृदय में, गृह स्वामिनी बन जाती है। तो जब गृह में स्वामीतव को

धारणा कर लेती है, तो शंका मानो एक ऐसी बन जाती है, जिसमें अज्ञान की ही पुट लग जाती है। तो प्रभु! महात्मा मुदगल ने कहा हे ऋषियों! मेरे विचारों का यह मन्तव्य नही हैं, हम तो जिज्ञासु है, और जिज्ञासा तो प्रायः हो ही जाती हैं।

याग से त्याग

मेरे प्यारे! ऋषि मुनियों ने, उस वाक् को स्वीकार किया और स्वीकार करने के पश्चात, यह निर्णय देने लगे, कि शंकं ब्रह्मा जिज्ञासा, तो हम जिज्ञासु बनें। तो बेटा! देखो, जिज्ञासु किसे कहते हैं? जो मानो देखो, यथार्थता को अपने को धारणा करता हुआ और वह अपने से बुद्धिमान के समीप जा करके, निरभिमानी बन करके, प्रभु के समीप जाना चाहता है, तो वह जिज्ञासु बन गया है। तो जिज्ञासा प्रत्येक प्राणी के हृदय में, प्रायः गृहस्वामिनी बनी रहती है। तो हमें यह विचारना है, कि हम वास्तव में जिज्ञासु हैं, और यह जानना चाहते हैं, कि याग से हमें कौन सी वृत्तियाँ प्राप्त होंगी, तो मुनिवरों! देखो, महात्मा मुदगल, यह उदगारमयी विचारों को श्रवण करते हुए, ऋषि मुनि अपने में उपस्थित हुए, बेटा! सबसे प्रथम, उसमें महर्षि कौटिल्य मुनि उपस्थित हुए और कौटिल्य ने यह कहा कि हे भगवन! वर्णानं धनंजम ब्रहे व्रताः मानो देखो, याग से हमें यह लाभ है, ये आनन्द है श्वातन कृतां वाचन्न सम्भविते ब्रह्मणा मानो देखो, यह वस्तु हमें प्राप्त होती है, कि हमारे हृदय में व्यापकवाद आता है, सबसे प्रथम त्याग की भावना आती है। मानो जब हम त्याग करते हैं, जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है, और वह चरु का, साकल्य का, त्याग कर रहा है, अपने मन की प्रवृत्तियों को एकाग्र करके, अपने मन के उदगार को, साकल्य के द्वारा, यज्ञ की धाराओं पर स्थित कर रहा है, तो उसके वह जो मनोनीत विचार हैं, उसका जो व्रणा है, वह व्यापक रूप से बेटा! व्यापक बन करके, बेटा! अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके, वह गमन करता है, शब्द को ले जाता है, चित्र को ले जाता है, और मानो देखो, उसमें क्रियाकलापों को भी ले जाता है, वही क्रियाकलाप, शब्द, वही मुनिवरों! देखो, अमृतं चित्र बन करके, वह अग्नि की धाराओं पर स्थित हो जाते हैं। सबसे प्रथम हमें यह आनन्द प्राप्त हो गया है, कि

हमारा जो शब्द है, वह अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके द्यौ में प्रवेश करता है। यदि हमारे द्यौ के विचार हैं, तो द्यौ में प्रवेश हो रहा है, और वह जो द्यौ है, वह जो भी तरंगें चली गई हैं, वह तरंगें, उसी आत्मा को, उसी प्राणी को मानो किसी न किसी रूप में, किसी न किसी जन्म जन्मान्तरों में, वही हमारे समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं।

ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा का याग

मेरे प्यारे! मुझे बहुत पुरातन काल हुआ, एक, मैंने बहुत, तुम्हें प्रतीत होगा, विद्यालय में जब अध्ययन कराते रहते थे, महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में, तो एक साहित्यिक वार्त्ताएं, एक ऋषि का जीवन मुझे स्मरण आ गया है। तो वह ऋषि कौन थे? मुनिवरों! देखो, वह ऋषि महात्मा भृगु थे, तो महात्मा भृगु बड़े आनन्दवत् रहते थे, परन्तु महात्मा भृगु अपने में यह चिन्तन कर रहे थे, एक वेदमन्त्र को ले करके और महात्मा भृगु, कहीं भ्रमण करते हुए, बेटा! देखो, ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा के द्वार पर चले गएं थे, तो ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा याग कर रहे थे, वह मानो देखो, दिवस में वह सर्वत्र दिवस में देखो, वनों से, पर्वतों के अग्रणियों में नाना प्रकार की, वह औषध और साकल्य को एकत्रित करते, और वह एकत्रित करके, मानो जल को, अपने समीप ले करके, और वह मानो देखो, प्रातःकालीन याग करते थे, और याग करते थे, उनके द्वारा एक कामधेनु गऊ थी, और गऊ के दुग्ध को, आहार उसी में, मानो देखो, उसी दुग्ध के अग्रणियों में, जो वृत्ति घृत्त, श्रद्धामयी उसे मानो अग्नि में, प्रवेश करना, उसका परमाणुवाद बनाना, तो मानो उनके यहाँ प्रायः यज्ञ होता रहता है।

महात्मा अथर्वा की महात्मा भृगु से चर्चा

तो जब महात्मा भृगु उनके समीप पंहुचे, ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा के यहाँ, तो महात्मा अथर्वा ने उन्हें आसन दिया, और आसन पर जब विराजमान हो गएं, तो महात्मा, मेरे प्यारे! वह बड़े विचित्र होते हैं, उनकी वृत्तियाँ बड़ी विचित्र होती हैं, यदि वह मोह,ममता को त्याग करके, जब उससे उपराम होते हैं, तो उनकी जिज्ञासा, उनका ज्ञान, उनका विज्ञान

बड़ा, एक महान और मार्मिक बन जाता है। तो महात्मा भृगु जी, जब आसन पर पंहुचें। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने अतिथि जान करके, जब सेवा की, मानो देखो, कामधेनु के दुग्ध का आहार कराया। यज्ञशाला में यज्ञ उनका सम्पन्न हो गया था। तो मुनिवरों! देखो, महात्मा ने मातं ब्रह्मे ब्रह्मा पुत्र अथर्वा ने यह कहा प्रभु! आप तो हमारे अतिथि हैं, और अतिथि जो होता है, वह देवता होता है। तो भगवन! हमें कोई उपदेश दीजिए, जिससे हमारा कल्याण हो। तो मेरे प्यारे! कल्याण के लिए, तो महात्मा अथर्वा याग करते थे, प्रभु के राष्ट्र में मानो प्रवेश रहते, सदैव तो वह कल्याण के लिए, पुनः याचना कर रहे हैं ऋषि से, वह जिज्ञासा ले करके, जब समीप जाते हैं, उन्होंने कहा, अथर्वा से क्या हे देवं तुम क्या जानना चाहते हो? जब भृगु ने ऐसा कहा, तो महात्मा अथर्वा ने कहा प्रभु! मैं बहुत समय हो गया, बारह वर्ष हो गएं हैं, मैं एक अनुष्ठान कर रहा हूँ, और अनुष्ठान करते करते, मैं उन गम्भीर मुद्रा में प्रवेश कर गया हूँ, मानो जैसे मैं याग कर रहा हूँ, अग्नि तत्त्व को जान करके, अग्नि की धाराओं पर, जो शब्द जा रहे हैं, उनको, मैं अपने में साकार बनाना चाहता हूँ, और बना रहा हूँ।

ब्रह्मा

परन्तु देखो, जो अग्नि में, मैंने स्वाहा साकल्य प्रदान किया है, वह साकल्य अग्नि की धाराओं के साथ में, द्यौ लोक में चले गएं, और वही धारा चित्त के मण्डल में प्रवेश कर गएं हैं। तो मानो देखो, अथर्वा ने यह कहा, कि हे प्रभु! मेरे जो पिता हैं, ब्रह्मा जी, ब्रह्मा जी के, जो मानो मेरे ब्रह्मा के पिता और महापिता वह परम्परा से याग में रमण करते रहे है। हमारे यहाँ ब्रह्मा, कई प्रकार से माने गएं हैं ब्रह्मा नाम परमात्मा का भी है, ब्रह्मा नाम मानो देखो, सृष्टि के आदि पुरूष का नाम भी ब्रह्मा कहा जाता है। विष्णु कहा जाता है, मानो देखो, उन्हें अति मानव कहते हैं, वह मानव नही, वह अति मानव है, और वह अति मानसतव होने से, मानो वह देवतव है। तो इसीलए देखो, वह जो मेरे पिता ब्रह्मा हैं और मेरे ब्रह्मा कौन से थे? जो वेद के मर्म को जानने वाले हैं, चारों वेदों, चतुर्थ मुखी, जो क्रियाकलापों में, याग के कर्म को जानते हैं, वह ब्रह्मा कहलाते

हैं। मानो देखो, वह ब्रह्म की आभा में रत्त रहते हैं, उन्हें ब्रह्मा कहते हैं। मेरे पिता, जो सृष्टि के प्रारम्भ में ही, मानो देखो, उन्होंने याग और वेद की प्रतिभा को जाना, तो मानो देखो, सबसे प्रथम मेरे पितर, चारों वेदों के मर्म को जानते थे, त्रि विद्या को जानने वाले, ज्ञान, कर्म और उपासना के रूप में। तो वह मेरे पितर रहे हैं, और मेरे जो महापिता थे, ब्रह्मा के पिता, उनका नाम शृणित रेतु ऋषि महाराज मानो श्रणित रेतु के जो पिता थे, उनका नाम सोमवृत्तिका मुनि कहलाता था, वह और जो सोमवृत्तिका के जो पिता थे, वह अंगिरस वाचमनेति ऋषि कहलाते थे।

महात्मा अथर्वा का याग अनुसन्धान

तो मानो देखो, यह जो सब हमारे पितर हुए हैं, ये बड़े देवतव रहे हैं, और परम्परागतों से याग हो रहा है। मानो देखो, उनके जो चित्र हैं, उनके क्रियाकलापों से, उन चित्रों पर, यागों के द्वारा मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ। भगवन! मुझे बारह वर्ष हो गएं हैं, याग करते हुए, मैं साकल्य लाता हूँ, समिधाओं के ऊपर अनुसन्धान कर रहा हूँ, किस किस वृक्ष की समिधा, याग में, साकल्य रूप में परिणित करने से, अग्नि के मुखारबिन्दु में, परिणित करने से, वायुमण्डल में कौन कौन सी धारा और सुगन्ध को प्रदान करते हैं? कौन कौन से वृक्ष ऐसे है मानो, मैं उनके ऊपर अनुसन्धान कर रहा हूँ, मानो जैसे अम्बिका वृक्ष है, शमी वृक्ष कहलाता है, काकपूति वृक्ष कहलाता है, पीपल वृक्ष कहलाता है, वट वृक्ष होता है, सुनीति वृक्ष है, और इसी प्रकार बेलतवा वृक्ष कहलाता है, मैं मानो देखो, सर्वत्र वृक्षों के, पलिता वृक्ष कहलाता है, सबके ऊपर अनुसन्धान हो रहा है, किसी वृक्ष में दुग्ध प्रधान है, तो किसी में जल प्रधान है, किसी में जल प्रधान है, तो किसी में अग्नि प्रधान है, मानो उन वृक्षों में, कौन कौन सा तत्त्व ऐसा है, जो कहाँ कहाँ, किस किस रूप में वह गमन करके और याग को, कहीं का कहीं ले जाता है, तो इस पर विचार कर रहा हूँ। मेरे जो पितर जन रहे हैं, वह वृक्षों के ऊपर, समिधा और पदार्थ के रूप में, अग्नि के मुख में परिणित करने से, मानो देखो, उनका चित्र बन करके, जब द्यौ लोक में पंहुचा है, तो द्यौ लोक में गति एक प्राप्त हो गई है। तो

इसीलिए मैं, उन पर अन्वेषण कर रहा हूँ, और वह अन्वेषण ये है, मानो मेरे पिता ब्रह्मणे देखो, चित्त में, जो मेरे, जो शरीर का निर्माण हुआ है, उसमें मेरे पिता, महापिता, पड़पिता, सड़पिता मानो देखो, उसकी रक्तमयी जो धारा है, उनकी जो तरंगें हैं, रक्त का बिन्दु हैं, रक्त के बिन्दु में परमाणु हैं, परमाणु में भी देखो, महा परमाणु हैं, महा परमाणु में भी धाराएं हैं, तरंगें हैं, और वह तरंगें मानो जन्म जन्मान्तरों की धारा में रत्त रहने वाली है।

तरंगों का अन्तःकरण से समन्वय

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि अथर्वा कहते हैं, क्या हे प्रभु! मैं यही तो जानना चाहता हूँ, कि मैं धाराएं मानो देखो, चित्त के मण्डल से, उनका समन्वय रहता है। मानो जैसे एक दूसरे से एक दूसरा गुथा हुआ है, लोक लोकान्तर भी गुथे हुए हैं, इसी प्रकार, वह तरंगें भी, तरंगों से गुथी हुई है, और वह तरंगों का समन्वय बेटा! अन्तःकरण से होता है। और वह जो अन्तःकरण है, मानो देखो, उसमें जो तरंगें गमन कर रही है, चित्त के मण्डल में, तो हे प्रभु! मेरे जो सातवें महापिता है, मानो मेरे जो लाखों वर्षों के, जो पिता, लाखवें महापिता रहे हैं, उनके अंकुरों की जो तरंगें हैं, वह मुझे इस याग के अनुष्ठान करने से, अन्वेषण और चित्त की वृत्तियां को एकाग्र करने से, मेरे चित्त में, उनकी तरंगें दृष्टिपात आती हैं। बेटा! उनकी तरंगें, मुझे उद्बुद्ध होती रहती हैं। तो विचार आता रहता है, हम बेटा! देखो, इस विज्ञान में रत्त हो जाएं।

याग से प्राप्ति

तो मुनिवरों! देखो, ऋषि कहते हैं, याग से हमें क्या प्राप्त हुआ, याग से, हमें जो बेटा! साधक जन होते हैं, वह साधना के रूप में, जब यज्ञ करते हैं, तो साधक अपनी धाराओं को प्राप्त हो जाता है जो बेटा! विज्ञानवेत्ता है वह विज्ञान के स्वरूप को ले करके याग करते हैं, तो याग को प्राप्त होते हैं। मानो देखो, जैसा जिसका स्वरूप होता है, जैसे जिसका विचार, साकल्य होता है, और जिनके हृदयों में संस्कारों की उपलब्धि नही होती, बेटा! अपनी मन वृत्तियों में रत्त हो करके, अपनेपन की आभा को नष्ट करते रहते

हैं।

तो बेटा! मैं तुम्हें यह विचार दे रहा था, क्या देखो, मुनिवरों! देखो, महर्षि मुदगल इत्यादियों की सभा में, इस प्रकार के प्रसंग और वह प्रसंग कहाँ चला गया बेटा! देखो, महात्मा मुदगल और देखो, वह भृगु मुनि के विचारों में, तो मुदगल जी ने अपना अनुभव प्रगट किया। जब मुदगल जी ने यह कहा कि प्रभु! हमारे यहाँ ब्रह्मा की उपाधियां चली आ रही है, और वह ब्रह्म उपाधियां कहीं मानो वे देवी के रूप में हैं, और कहीं मानो वह देवत्वं वेद के रूप में विद्यमान हैं।

तो मेरे प्यारे! जब उन्होंने यह वाक् प्रगट किया, यह वाक् कहा, तो महात्मा भृगु ने कहा धन्य है। हे अथर्वा! हे प्रभु! तुम्हें धन्य है। तुम्हें जैसा मैं श्रवण करता रहता हूँ, वैसे ही तुम मुझे दृष्टिपात आ रहे हो। तो मुनिवरों! देखो, महात्मा भृगु ने यह कहा कि तुम मेरे से क्या जानना चाहते थे? तुम अतिथि हो। उन्होंने कहा प्रभु! अतिथि आते हैं, और वह अतिथियों का जब सत्कार होता है, तो वह कुछ न कुछ दे करके चले जाते हैं। आप भी भगवन! मुझे कुछ न कुछ उपदेश दीजिए, मैं इतना तो जानने के लिए तत्पर हो गया हूँ। परन्तु हो सकता है, कि बुद्धिमान और योगी की दृष्टि से, मैं कुछ भी नही जानता हूँगा। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने जब यह वाक् पाया, तो महात्मा भृगु ने यह कहा हे देवतव! तुम्हें यह प्रतीत है, क्या मानव इन उपाधियों से उपराम हो करके, कुछ प्राप्त कर सकता है। ये तीन प्रकार की धारा हैं, जो मन के सहित है, और मन के साथ साथ यह गमन करती हैं।

तीन देवता

तो महात्मा भृगु ने कहा कि हे अथर्वा! तुम यह जान गएं हो, तुम्हें यह प्रतीत है, कि एक समय, मेरे हृदय में, एक ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हो गया था। वह मेरे हृदय में हुआ और हृदय का जब बाह्य जगत बना, तो महात्मा दधीचि के यहाँ, वह सभा हुई और महात्मा दधीचि के यहाँ जब सभा हुई, तो यह निर्णय हुआ, कि हमारे यहाँ वेद के मन्त्र के अनुसार, तीन देवता कहलाते हैं। सबसे प्रथम ब्रह्मा है, द्वितीय में

शिव है, और चतुर्थ में मानो देखो, वह विष्णु कहलाता है। या यों उच्चारण कर लेना चाहिए, विष्णु है, शिव है, और ब्रह्मा है। यह तीन प्रकार की धाराओं का एक स्वरूप बनता है। तो उन धाराओं के स्वरूप को जानने के लिए, मुझे यह निर्णय दिया, कि इसको तुम जानने का प्रयास करो। तो मानो मैंने जितना भी, हम जानते थे, उतना जानने का प्रयास किया। तो हमारे शरीरों में, यौगिक पद्धति के आधार पर, क्योंकि हमारे यहाँ दो प्रकार की पद्धतियां होती है। एक पद्धति मानो लोक प्रियता में होती है और एक पद्धति यौगिक कहलाती है। मानो देखो, लोक पद्धति ये है क्या ब्रह्मा, विष्णु, महेश को मानो देखो, अपने में धारण करके, उनके आश्रित हो जाएं, उनको अपना देवतव और इष्ट बना लें। परन्तु वह प्रणाली, लौकिक प्रणाली कहलाती है, लौकिक मानो लौकिकता कहलाती है। वह किस प्रकार? मानो देखो, पालन करने वाला, मानो विष्णु है, शासन करने वाला शिव है, और उत्पति के मूल में ब्रह्मा है। तो मानो यह सब, हमारे देखो, देव कहलाते हैं। इनको जाने बिना, इनके स्वरूप को जाने बिना, हमारे हृदयों में स्थिरता नही आती। ज्ञान की उपलब्धियां भी नही होती।

यौगिकता

तो इसीलिए मानो ये लौकिकता कहलाती है अब इसी को मानो, योग में चले जाओ, योग में जब गम्भीर मुद्रा में ले जाते हैं, विष्णु और शिव और ब्रह्मा मानो देखो, यह तीन रूपों में एक ही रूप, तीन रूपों में एकोकीकरण हमें दृष्टिपात आता है। जब यौगिकता में जाते हैं, तो हमें इन तीनों वस्तुओं को त्यागना है। मानो देखो, सतोगुण में जो पालन है, उस पालना के मूल में मानो देखो, नाना रूप माने गएं हैं।तो पालना कोई भी कर रहा है, ऐसा हम यौगिकवाद में ले जाते हैं, क्योंकि पालना केवल वहाँ तक होती है, जहाँ तक हम देखो, उसके आश्रित बने रहते हैं, और आश्रित बनना ही मानो पालना की एक वृत्ति कहलाती है, और जब हम उसका आश्रय त्याग देते है, और हम उससे उपराम हो जाते हैं, तो सतोगुण को त्यागना होगा, सतोगुण को त्यागना है। मानो सत्य को अपनाना है और गुण को उसमें से दूरी कर देना है। मानो उससे उपराम

हो करके, और वह सत्य को अपनाना है। इसी प्रकार उसी सत्य के गर्भ में, मानो देखो, शासन है, हम जिसे शासन कहते हैं, शासन कहते हैं रजोगुण को, रजोगुण में शिव है, तो मानो देखो, जब हम उसे त्याग देते हैं, वह शासन प्रणाली अनुशासन की वृत्तियां को त्याग देते हैं, तो अनुशासन से जब उपराम होते हैं, तो आत्मा से तरंगों का प्रादुर्भाव होने लगता है, और आत्मा से जब तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, वही तरंगें मानो देखो, कर्तव्यवाद न रह करके, वह उसको जान लेती है। कर्तव्यवाद की प्रतिभा नष्ट हो जाती है, मानो उससे उपराम हो जाते हैं। तो निचले भाग में रह गया है कर्तव्यवाद, वह तो यह है, कि हम वह कर्तव्य के रूप में, मानो देखो, कर्तव्य उसके आयतन को जानना है, जो हमें कर्तव्य के मार्ग पर, हमें प्रेरणा दे रहा है। उस प्रेरणादायक को जान करके, हमें उससे उपराम होना है, और उपराम हो करके, ऊर्ध्वा में गमन करना है। इसी प्रकार उत्पति के मूल में चले जाएं, परमाणुओं को एकत्रित करना है, उन परमाणुओं को एकत्रित करके, यदि हम ध्रुवा में जाते हैं तो उत्पति के मूल में चले गएं, और मानो देखो, उसी परमाणुवाद को हम एकत्रित करके, हम ऊर्ध्वा में और देखो, पर्जन्य में प्राप्त हो करके, हम मानो देखो, उस परमपिता परमात्मा, जो सर्वज्ञ है, जो रचयिता है, इसीलिए देखो, हम अपना राष्ट्रपिता स्वीकार करते हैं, तो मानो देखो, हम अप्रतं ब्रह्मा उन परमाणुओं को जान करके, जहाँ से उस परमाणु की उत्पति है, उस उत्पति के मूल तक जान लेना, जान करके उस पर मानो उपराम होने का नाम बेटा! सतोगुण भी चला गया। मानो देखो, वह यौगिकता कहलाती है। इसी का नाम यौगिकता कहलाता है।

मोक्ष की पगडण्डी

यौगिकता का अभिप्रायः यह बन गया, क्या मुनिवरों! देखो, हमें रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण से उपराम होना है और वह उपराम हो करके ही इनको निचले लौकिकवाद में त्यागना है, इससे उपराम हो करके, मुनिवरों! देखो, हमें प्रभु के प्रकाश में, राष्ट्र में जाना है, और ऊर्ध्वा में, अपने जीवन को बनाना है। परमपिता परमात्मा जो ऊर्ध्वा में

गमन करते हैं, वह उसमें रत्त रहना है। तो मेरे प्यारे! बड़े गम्भीर विचार हैं, बेटा! ऋषि मुनियों के, ऋषि मुनि जब अपने विचार देना प्रारम्भ करते हैं, तो उनकी वृत्तियाँ बड़ी निर्मल और स्वच्छ होती हैं। मानो उनके हृदय में बड़ी विचित्रताएं, हमें दृष्टिपात आती रही हैं। तो बेटा! देखो, अतिथि के रूप में, बेटा! महर्षि भृगु जी ने उन्हें यह उपदेश दिया अथर्वा को, और अथर्वा से कहा कि तुम यौगिकवाद में जितना जाने हो, वह बड़ा प्रिय है, परन्तु इसको जान लो, जब इसको जानने लगोगे, तो मानो देखो, प्रभु की ही, इस रजोगुणमयी, त्रिगुणमयी माया, त्रिगुणमयी यह जो जगत है, इसको जान करके, जब उपरामता को प्राप्त होंगे, तो आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न को जान करके,केवल प्रभु के राष्ट्र में, मानो इन दोनों को एक सूत्र में सूत्रित हो करके, तुम मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करने लगोगे।

ब्रह्मा

तो मेरे प्यारे! देखो, जब अथर्वा ने यह उपदेश दिया, तो देखो, जब अथर्वा को यह उपदेश दिया, महात्मा भृगु ने, तो भृगु जी ने कहा कि सम्भव ब्रह्मा हे अथर्वा! तुम जान गएं हो, मानो देखो, वहाँ न तो उपाधि हैं, ब्रह्म उपाधि भी उसी में हैं, जब तक वह इस प्रकार के विचार है, जैसे ब्रह्मा है, वह वेद के पठन पाठन करने वाला है, यज्ञ में उसकी नियुक्तियां की जाती हैं। परन्तु क्रियाकलापों में भी नियुक्तियां की जाती हैं, जब तक वह ब्रह्मा है, चारो वेदों में चतुर्थता को दृष्टिपात करने वाला, ब्रह्मा नही कहलाता। वह ब्रह्मा नही कहलाता है। ब्रह्मा वह होता है, जो मानो चतुर्थता को त्याग करके, एक वेद रूपी प्रकाश को अपना लेता है, और वह प्रकाश में रत्त हो जाता है। तो प्रकाश में जाने वाले को ब्रह्मा कहते हैं। और जो पालन करने वाला है, पालना के मूल में, यह जो कुछ देता है, वह देवता है, उससे पालना हो रही है। अरे, लेने की इच्छा तुम मत उत्पन्न करो, उससे उपराम होने की इच्छा करो। उपराम हो जाओ, जिससे देखो, तुम्हारी भावना यह न बनी रहे, तुम किसी से कुछ प्राप्त करना चाहते है, ऐसी प्रबलता में चले जाओ, जहाँ तुम्हें यौगिकता प्राप्त हो जाएं, तुम परमात्मा के राष्ट्र में, स्वतः प्रकाश में

बन जाओ। तो मानो देखो, हम अपने में, प्रकाश में ही रत्त हो करके, वेद रूपी प्रकाश को अपना करके, और वह सूत्र में सूत्रित हो रहे है, माला के रूप में, हम अपने को दृष्टिपात करें।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश की परीक्षा

तो महात्मा भृगु ने यह वाक् प्रगट किया, महात्मा भृगु ने यह कहा कि हे अथर्वा! जबकि यह सभा थी, ऋषि मुनियों की, तो ऋषि मुनियों की सभा में ये विचार आया, क्या देखो, यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनकी परीक्षा लेनी चाहिए। तो मानो देखो, इनकी परीक्षा लेने लगे, और परीक्षा ले करके क्या वृद्धं ब्रह्मे मुनिवरों! देखो, महात्मा भृगु कहने लगे, कि मैंने सबसे प्रथम ब्रह्मा को, अपने पदों को वृत्त करते हुए, उन्हें ठुकराया और उनको कृत किया, तो वह मानो देखो, वह अप्रतम् देखो, तमोगुण में आ गएं, और उनकी क्रोधाग्नि, तमोगुणी बन गई।मैंने वहाँ से गमन करता हुआ, जब उनको इस प्रकार पगों से ताड़ना दी, तो मानो देखो, वह भी रजोगुण में छा गया, दण्डित करने के लिए। जब ब्रह्मा, विष्णु के द्वार पर पंहुचे, जब उन्हें पगों से दूरी किया, तो वह नम्रता में परणित हो गए, और यह कहा हे ब्रह्मण! आपके मानो इन चरणों में, मेरा यह शरीर, मेरा यह व्रत है, यह कठोर है,

आपके चरणों से, किसी प्रकार का दुखद तो नही हुआ।

सतोगुण में नम्रता

तो उस समय मैंने यह निर्णय कर लिया, क्या देखो, उत्पति में तमोगुण है, और शासन में रजोगुण है और पालना में सतोगुण रहता है। सतोगुण नम्रता का प्रतीक है, जब नम्रता अन्तर्हृदय से होगी, तो मानो देखो, जब नम्रता अहे हृदय से बाह्य जगत के हृदय से, नम्रता जब अपना बखान करने लगती है, तो वह नम्रता में पालन है, देखो, माता का पुत्र है, माता से विरोध कर रहा है, क्षुधा के लिए, मां क्षुधा को परणित करा, तो माता में नम्रता आ जाती है। जब तक नम्रता नही आती, जब तक वह लोरियों का पान नही करा सकती, क्षुधा की पूर्ति नही हो सकती। हे मा! तू नम्र बन करके, क्षुधा की

पूर्ति करती है।

इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, वह विष्णु, वह सतोगुण नम्रता में रहता है, परन्तु जहाँ नम्रता है। उस नम्रता के साथ साथ, उससे भी मुनिवरों! देखो, योगी को उपराम होना होगा। उस नम्रता से उपराम होना होगा। जब बेटा! देखो, वह प्राण गति कर रहा है, जो परमात्मा प्रतिनिधितव कर रहा है और देखो, जो ज्ञान है, वह प्राण गति है, देखो, वह जो ज्ञान है, वह भी मानो देखो, आत्म तत्त्व का मनस्तव का प्रतितिधितव कर रहा है, प्राण और मन जब दोनों एक सूत्र में आ जाते हैं, तो इन तीनों गुणों से उपराम हो करके, यौगिकवाद में प्रवेश कर जाते हैं।

तीनों गुणों का त्याग

बेटा! मैं बहुत दूरी चला गया हूँ, विचार देता हुआ, मानो देखो, योग की चर्चा चल रही थी, तो मुनिवरों! देखो, महात्मा भृगु ने यह कहा, कि यह शब्द वेद के हैं, परन्तु आलांकारिक हैं। देखो, इससे तुम्हें यह सिद्ध हो गया होगा, क्या तीनों गुणों से उपराम होना है। ये प्रत्येक मानव के हृदय में विद्यमान हैं, मानो रजोगुण, तमोगुण सबमें व्याप्त रहा है, सबमें उत्पति की इच्छा है, सबमें मानो ही देखो, पालन करने की इच्छा है, और सबमें ही ताड़ना देने की प्रबलता बनी रहती है। तो उन तीनों गुणों से उपराम होने का नाम यौगिकवाद है। तुम्हारा यौगिकवाद सार्थक हो। तो इसीलिए देखो, तीनों गुणों में ही जो आत्मकता है, उस मायावी जगत को त्याग करके, देखो, प्रकाश में जाना चाहते चाहिए। प्रकाश में जाने के पश्चात, मानव के हृदय में एक महानता का जन्म, आभा की उत्पति उत्पन्न हो जाती है। उस आभा में गमन करने का नाम तीनों गुणों से उपराम होना है, प्रभु के प्रकाश में जाना है।

तो मुनिवरों! देखो, यह वाक् मैं बहुत दूरी ले गया हूँ, विचार यह चल रहा है, क्या याग से हमें क्या वस्तु प्राप्त होती है? तो महात्मा भृगु ने, बारह वर्ष तक, मानो साकल्य स्वतः एकत्रित करके, मौन रह करके और वह वायु का सेवन करते हुए, जब मुनिवरों! उन्होंने याग को रचा, बारह वर्ष के उस साकल्य याग का, परिणाम यह हुआ, कि वह

अपने अन्तःकरण में जो, अपने पूर्वजों के चित्र अग्नि की धाराओं में गमन कर रहे थे उसे, अन्तरात्मा के गर्भ में, अन्तर्हृदय में, बेटा! उनका दृष्टिपान करने लगे, और चित्त के मण्डल में उनकी तरंगें, उनके रक्तोमयी जो तरंगें थी, उनका समन्वय, दृष्टिपात आने लगा,... आज जिस वन में बड़ी विचित्र विवित्र, मानो समुद्र में से मुद्राएं मुझे प्राप्त हो रही हैं।

तो आओ, मेरे प्यारे! देखो, इन मुद्राओं की चर्चा, तो फिर ही द्वितीय काल में प्रकट होंगी। आज का विचार विनिमय क्या कह रहा है, क्या याग जो करने वाले,पुरातन काल में जो, बेटा! ऋषि मुनियों का जीवन, उनके क्रियाकलाप जब स्मरण आते हैं, तो बड़ा विचित्रतव दृष्टिपात आता है। परन्तु देखो, इस आभा में रत्त होने से, हमारा जीवन, एक महान और पवित्र बनता हुआ, इस सागर से हम पार हो जाएं, ऐसा हमारा आज का मन्तव्य है, समय मिलेगा, मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूं सकूँगा । दिनांक 02 11 1988, स्थान श्री सहगल जी, 3 ई 31, लाजपत नगर, नई दिल्ली 110024।

१२ 03 11 1988 याग से प्राप्ति

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर प्रायः वैदिक साहित्य में, उनका वर्णन आता रहता है। इसीलिए वे परमपिता परमात्मा हमारा पुरोहित है। मानो देखो, वह पुरोहित बन करके, हमारा कल्याण करने वाले है। सबसे प्रथम परमपिता परमात्मा को कल्याण कर्त्ता, सर्वत्र, बुद्धिजीवी प्राणी स्वीकार करते हैं। चाहे वह पृथ्वी मण्डल का प्राणी का हो, चाहे वह किसी लोक लोकान्तर का हो, मानो देखो, वह जो रजोगुण, तमोगुण है, वह सर्वत्र व्याप्त है, और परमपिता परमात्मा की उपासना करते रहते हैं, मानो जब उपासना के स्वरूप को, मानव अच्छी प्रकार नही जान पाता, तो मानो वहीं से अन्धकार

की प्रतिभा में निहित हो जाता है। तो हमें विचारना है, कि हम सबसे प्रथम, उपासना के मूल को जानने का प्रयास करें और उसके ऊपर मनन और चिन्तन करना चाहिए।

कल्याणकारी परमात्मा

तो आज हम देखो, उस परमपिता परमात्मा की उपासना में, सदैव रत्त हो जाएं। वे परमपिता परमात्मा जो कल्याणकारी है, उसे कल्याणकारी क्यों कहते हैं? क्योंकि वह, उसका जो क्रियाकलाप है, वह इतना महान है, क्या उसके अनुसार यदि मानव अपने जीवन को व्यतीत करने लगे, तो उसका कल्याण हो जाएं। उसके लक्षणों को अपने में धारण करना है। परन्तु वे परमपिता परमात्मा तो पुरोहित हैं, वेदमन्त्र कहता है। परा विद्या को प्रदान करने वाले हैं। इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर सदैव विचार विनिमय करते चले जाएं।

आज का हमारा वेदमन्त्र मानो त्रिवर्धा, परमपिता परमात्मा की जो तीनों गुणों वाली ये रचना है, त्रि गुणात्मक, तो हमें तीनों गुणों वाली जो प्रकृति है, इसको जानना चाहिए। यह जो एक नृत्त हो रहा है, भिन्न भिन्न प्रकार का, जो यह नृत्त हो रहा है, मानो उसको हमें जानने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। बिना जाने हमारा कल्याण, या हम प्रतिभाशाली नहीं बन पाएगें। मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है, बहुत सी विचारधाराएं स्मरण आती रहती हैं, और वेदमन्त्रों का कुछ विचार विनिमय प्रारम्भ रहता है, और यह जो मनस्तव है, यह बड़ा विचित्र है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से बेटा! बड़ा विचार विनिमय होता रहता है, सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना प्रकार का अन्वेषण और मनन होता रहा है। क्योंकि यह जो सृष्टि है, अव्रणात कहलाती है। मानो यह बड़ी महानता में गमन करने वाली है। तो आज हम प्रकृति के, इस त्रि गुणमयी आत्मा, त्रि गुणमयी यह जगत, एक बड़ा विचित्र सा दृष्टिपात आता रहता है।

ऊर्ध्वा गमन का आधार

बेटा! यह बड़ा विचित्रतव, हमारे यहाँ, ऋषि मुनियों की जब भी सभाएं हुई हैं। विचार

विनिमय हुआ है, तो उन्होंने प्रवृत्ति के ऊपर बड़ा बल दिया है और यह कहा कि मानव को अपनी प्रवृत्ति को ऊर्ध्वा में ले जाना है। इसके ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियां भी होती रही हैं, और नाना तपस्या भी होती रही, तपस्या के रूप में, मानव अपने को उग्र क्रिया में भी ले गया है, और यह विचारने का प्रसंग बना ही रहा, कि हम कैसे ऊर्ध्वा में गमन करें? राष्ट्रवेत्ता, जब राजा एकत्रित होते हैं, कि वहाँ भी यह प्रश्न बना ही रहता है, कि हम कैसे अपने को ऊर्ध्वा बनाए, मृत्युञ्जय बन जाएं, प्रकाश आ जाएं, अन्धकार चला जाएं, दर्शन आ जाएं, रूढ़िवाद समाप्त हो जाएं। ये प्रायः विचार आते रहते हैं, रूढ़िवाद को भी मानव शान्त करना चाहता है। रूढ़ि किसे कहते हैं? जो रूढ़ियों में, अति रूढ़ि आ जाती है, क्योंकि रूढ़ि तो होनी चाहिए। परन्तु जब उसमें अति आ जाएगी, अनियमितता आ जाएगी, तो वह रूढ़ि अज्ञान के मूल में चली जाती है, और जब तक वह सीमा में रहती है, जैसे माता है, अपने पुत्र का पालन कर रही है, पुत्री का पालन कर रही है, तो यहाँ कर्तव्य में रूढ़ि भी स्वीकार की जाती है। परन्तु रूढ़ि शब्द जब बनता है, जब उसमें अति आ जाती है, जब उसमें अनियमितता आ जाती है, तो वह ऋणी बन करके ही हमारे जीवन का शोषण करने लगता है।

तो इसीलिए मुनिवरों! हमें ऋणवाद के ऊपर बहुत गम्भीरता से मनन करना चाहिए। हमारा जो जगत है, यह बड़ा विचित्र है। तो बेटा! मैं आज तुम्हें एक ऐसे मूलक में ले जाने के लिए, तो नहीं, केवल विचारों की एक झड़ी है, जो ऋषि मुनियों की धाराएं हैं, जिनमें जाने के पश्चात मानव भी, एक ऋषितव की एक घोषणा करने लगता है।

तपस्वियों को राजा सगर द्वारा गो दान

तो विचार आता रहता है, क्या मुनिवरों! परम्परागतों से यह विचार बना रहा, एक समय बेटा! मुझे स्मरण है, राजा सगर के यहाँ, जब अश्वमेध याग हो गया, अश्वमेध याग होने के पश्चात, उन्होंने बेटा! ऋषि मुनियों को दक्षिणाएं दी, अपनी श्रद्धामयी दक्षिणा प्रदान की। राजा सगर ने यह दक्षिणा में दी, कि हे पुरोहितजन! जो प्रत्येक राष्ट्र में जो तपस्वी है, उन सब तपस्वियों को मुझे एक एक गऊ प्रदान करनी है तो मुनिवरों!

महात्मा कपिल ने कहा प्रभु! यह तो बहुत प्रियतम है। तो राजा सगर देखो, राजाओं के समीप मानो देखो, जब उन्होंने यह कहा, तो कपिल जी ने यह कहा कि प्रभु! यह इतना महान याग आपका सम्पन्न हुआ है, परन्तु देखो, आपको कुछ प्रदान भी तो करना है। कपिल जी से बोले कि प्रभु! जो इच्छा हो आप प्रगट कीजिए। ऋषि ने कहा कि क्या हे राजन! जो तेरे राष्ट्र में, तेरी मनोनीतता में, स्वार्थपरता है, स्वार्थपरता को आप मुझे, दक्षिणा के रूप में प्रदान कर दीजिए। मेरे प्यारे! देखो, राजा ने, ऋषि के वाक् को स्वीकार कर लिया, और राजा सगर ने, यह अपने में संकल्प किया, ब्रह्मणे ब्रहे कृतं मानो मैं आपको दक्षिणा में यह प्रदान कर रहा हूँ। तो मुनिवरों! देखो, वह उन्होंने अपने में यह स्वीकार कर लिया, और राजा मुनिवरों! अपनेपन में रत्त हो गया। तो मेरे प्यारे! महात्मा कपिल ने जब यह स्वीकार कर लिया, और उन्होंने प्रदान कर दिया। तो उन्होंने यह कहा कि तुम बुद्धिजीवी ऋषि मुनियों को गऊ क्यों देना चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! मेरी इच्छा यह है, कि राजा का जो नियमवाली बनती है, राष्ट्र के संचालन करने के लिए, तो उस राष्ट्र के संचालन में, बुद्धिजीवी ब्रह्मवेत्ताओं का सर्वोपरि मानो, उसकी मानो देखो, अप्रतां उनका बड़ा सहयोग रहता है, राष्ट्र के संचालन में। और देखो, राजा ने अपने में तो यह नियम कर ही दिया था, तो राजा ने अपना यह एक निर्णय कर ही लिया था, कि मैं एक सूक्ष्म सा, दो गऊ के बछड़े हैं, उनके द्वारा उन दोनो गऊ के बछड़ों के द्वारा, मानो माता वसुन्धरा के गर्भ में मानो देखो, मैं पृथ्वी के गर्भ में, बीज की स्थापना करके, स्वतः परिश्रम करने के पश्चात, जो अन्न आता है, उस अन्न को पान करना हमारा कर्तव्य है। क्योंकि यह राजा की बुद्धि भ्रमित हो गई, और दूषित अन्न ग्रहण करने से भ्रमित हो गई। तो राजा की राष्ट्रीयता समाप्त हो जाएगी।

राजा को मनु आदेश

तो यह भगवान मनु को इस प्रकार, यह राष्ट्र के निर्माणवेत्ताओं को, यह विचार लेखनीबद्ध करते हुए, उन्होंने व्यक्त किया है, क्या राजा वही होता है, जो राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नही करता। तो स्वयं पुरूषार्थ से अन्नाद को उत्पन्न करता है। स्वयं परिश्रम करता है।

माताएं अपने में परिश्रम कर रही है। तो जो इस प्रकार, राजा सगर के यहाँ बेटा! स्वतः वह क्रियाकलाप करते रहे। तो उस समय मुनिवरों! देखो, अन्नाद को, अपने में उत्पन्न करना, उसको पान करना, कामधेनु गऊ उनके यहाँ, उससे दुग्धाहार करना, तो बेटा! देखो, राष्ट्र का निष्पद्म हो करके, क्रियाकलापों में रत्त रहना, वह राष्ट्र अपने में महान बना करता है। जहाँ राजा स्वयं कला कौशल करते हुए, कृषि उद्गम करते हुए माता वसुन्धरा से अन्न को उत्पन्न करके, उसको पान करता है, अथवा उसको देखो, उसी में वह याग करता है, तो ऐसे जो राष्ट्रपिता होते हैं, वह बड़े महान और अपने राष्ट्र को महान बनाने में लगे रहते हैं।

ब्रह्मनिष्ठ

बेटा! राजा सगर ने जब यह नियम बनाया, क्या मैं जितने बुद्धिजीवी प्राणी हैं, ऋषि कोटि के हैं, कुछ ब्रह्म कोटि के हैं, कुछ मानो ऋषि कोटि के हैं, और कुछ मानो ब्रह्मवर्चोसि कोटि के हैं, तो यह भिन्न भिन्न प्रकार के, यह जो विचार विनिमय मानो देखो, वह ब्रह्म कोटि के होते हैं, जो ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाते हैं, वह मानो देखो, ब्रह्मं ब्रहा स्वर्ग सुति, मेरे पुत्रों! देखो, वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते हैं, कुछ मानो देखो, ब्रह्मनिष्ठ कहलाते हैं, जिनकी ब्रह्म में निष्ठा हो गई है, और जो ब्रह्म का ही सदैव अपने में मनन करते हैं, वह ब्रह्मनिष्ठ कहलाते हैं। एक ब्रह्मवेत्ता है, और एक ब्रह्मनिष्ठ है, और एक मुनिवरों! देखो, वह व्रत्यां देवाः एक मानो देखो, वर्चोसि कहलाते हैं। तो वर्चोसि कहते हैं, परमपिता परमात्मा को, वर्चोसि कहते हैं, ब्रह्मचारी को, और वह ब्रह्मचारी जो ब्रह्म का चिन्तन करके, ब्रह्म को मानो देखो, एक सूत्र में पिरोने का प्रयास करता रहता है।

महर्षि कौटिल्य मुनि का, गो न स्वीकार करना

तो बेटा! मानो देखो, उस आभा में विशेषता में नही, केवल यह उद्गीत गाने के लिए हम आए हैं, कि मानो अपने कर्तव्य अन्नादं भूतं ब्रह्मा वह अपने एक मानो अन्न की उपासना करो, और अन्न को मानो देखो, उस दुग्ध का आहार करे, जो निष्पद्म हो।

परन्तु देखो, राजा के मनों की, जब एक समय राजा जब महर्षि कौटिल्य मुनि महाराज को और उनके जो महापिता थे, सोमकेतु कौटिल्य तो मुनिवरों! देखो, वह अपने आश्रम में अध्ययन कर रहे थे, और वह इस अध्ययन में लगे हुए थे कि चन्द्रमा की किरणों, चन्द्रमा की कान्ति, सूर्य की किरणों में जब मिलन करती है, तो उनका कैसा स्वरूप बनता है? तो इस सम्बन्ध में विचार विनिमय कर रहे थे। परन्तु देखो, राजा के यहाँ से, एक गऊ उनके द्वारा पंहुची, और ऋषि ने सोमकेतु कौटिल्य ने यह कहा कि अब मैं इस गऊ को स्वीकार नही करूंगा। उन्होंने, बेटा! सेवकों ने कहा प्रभु! क्यों? उन्होंने कहा मैंने आपसे स्वीकार कहा, मैं स्वीकार नही करूंगा। मेरे प्यारे! देखो, वह सेवक राजा के समीप पंहुचें, और राजा से कहा कि प्रभु! गऊओं को, वह स्वीकार नही कर रहे हैं, ऋषिवर! उन्होंने कहा बहुत प्रिय, चलो, हम गमन करते हैं।

दान का अधिकार

मन्त्री के सहित, मेरे पुत्रों! देखो, राजा सगर, अपने पुत्र सुखमंजस के सहित बेटा! तीनों प्राणी वहाँ से गमन करते हैं, वाहन में जा करके, जब ऋषि के द्वार पर पंहुचे, तो ऋषि के उन्होंने बारी बारी चरणों को स्पर्श किया, और चरणों को स्पर्श करके, उन्होंने कहा कहो, ब्रह्मणे कुशलं ब्रहे उन्होंने कहा प्रभु! कुशल हो? उन्होंने कहा सम्भव ब्रहे कृतप्रव्हा सर्वत्रता मानो देखो, हम सर्वत्रता में कुशलवत हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने यह उत्तर कहा, तो विचार वही था, कि जब कामधेनु ऋषि को प्रदान करने लगे, तो महात्मा सोमकेतु कौटिल्य ने कहा कि राजन! मैं इस गऊ को स्वीकार नही करूंगा। उन्होंने कहा प्रभु! क्यों नही करोगे? उन्होंने कहा राजन! तुम्हें इस गऊ देने का अधिकार ही नही हैं। दर्शन की भाषा में जब पंहुचोगे, तो दर्शनों की भाषा में तुम्हें यह अधिकार नही है कि तुम गऊ प्रदान करो। उन्होंने कहा प्रभु! क्यों नही हैं? उन्होंने कहा ब्रह्मणा राजन! जब तुम स्वयं कला कौशल करते हो, अन्न के द्वारा मानो देखो, अन्न को उद्गमता के साथ प्राप्त करते हो, तो यह गऊ किसके द्रव्य में से प्रदान कर रहे हो? उन्होंने कहा प्रभु! राष्ट्र का जब नियम बना, तो द्रव्य के विभाग बन गएं थे और द्रव्य के विभाग होने

से, एक विभाग ऋषि मुनियों का है, जो कोई भी राष्ट्र में मानो दीनता को प्राप्त न हो।

दीन

देखो, ऋषि ने जब, यह श्रवण किया, राजा ने कहा प्रभु! दीन कौन होता है? उन्होंने कहा दीन वह होता है, जो किसी के आश्रित रहता है, उन्होंने कहा, तो हम किसी के आश्रित हैं, हम उसके आश्रित रहते हैं, जो मानो संसार का नियन्ता, निर्माण करने वाला है। उसमें भी कुछ वार्त्ताओं में हम, मानो उससे परा वृत्तियों में रत्त रहते हैं, उसमें नही। वह वर्णन करते हुए कहा, कि देखो, जैसे हम कर्म करने में स्वतन्त्र हैं, कर्मों का फल भोगने वाला, मानो देखो, उसको दण्ड देने वाला प्रभु है, उसका दण्ड देने के नाते, मानो देखो, हम, उसको स्वीकार करते हैं, और वह स्वीकार करने के पश्चात हमारी मनोनीतता पवित्र बन जाती है।

मानो देखो, राजा ऋषि ने कहा हे राजन! वही तो दीन होते हैं, जो परमात्मा से विमुख हो जाते हैं। जो परमपिता परमात्मा को नही जानते, मानो देखो, वही तो दीन होते हैं तो हम दीन नही हैं प्रभु! हम तो मानो सदैव अपनी आभा में गमन करते रहते हैं। जैसे वायु अपने कक्ष में भ्रमण करती रहती है, अग्नि के परमाणु अग्नि अपनी आभा में रत्त होते रहते हैं, तो इसीलिए राजन! हम अन्नं ब्रह्मा, इस अन्न को ग्रहण नही करेंगे, क्योंकि जब स्वतः तुम कला कौशल करते हो, उसके बदले जो द्रव्य आता है, उस द्रव्य की तो गंऊए नही हैं। इसीलिए राजन! गऊओं को देने का तुम्हें अधिकार नही है।

तीनों गुणों की व्यापकता

बेटा! राजा सगर के मस्तिष्क में एक नवीन क्रान्ति जागरूक हो गई, एक नवीनता आ गई। उन्होंने कहा ऋषिवर! वाक् तो आपका यथार्थ है। भगवन! परन्तु देखो, इसे मैं समर्पित करना चाहता था, क्या राष्ट्र का जो द्रव्य है, उसका उपयोग मानो सत्य से गुथा होना चाहिए। उन्होंने कहा हे राजन! राष्ट्र का जो अन्न होता है, वह मानो वेद कहता है, त्रिवर्धं त्रिवर्तं ब्रह्मण ब्रीहि त्रिवर्धा वेद का वाक् कहता है कि त्रिवर्धा तीनों गुण, सब में व्याप रहे हैं। इसीलिए राष्ट्र का जो कोष होता है, उसमें रजोगुण, तमोगुण व्याप्तम्

होता है, सतोगुण का भी होता है। परन्तु तीनों गुणाधानम होते रहते हैं। जब तीनों गुणाधानम होते रहते हैं तो प्रभु! मैं इस अन्न को इसीलिए ग्रहण नहीं करूंगा, क्योंकि राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करने वाला, जो जिज्ञासु है, जो यथार्थी है, जो प्रभु का मानो देखो, जो प्रभु की पूजा में रत्त रहता है, उसकी प्रवृत्तियां नष्ट हो करके और प्रभु से जो विमुख हो जाता है, तो इसीलिए देखो, राजा को भी उस राष्ट्र कोष को ग्रहण नही करना चाहिए।

तप से राष्ट्र

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने, इस प्रकार वर्णन किया, तो राजा सगर के विचारों में यह वाक् आया, उन्होंने पुनः से यह प्रार्थना की, प्रभु! मुझे इसका स्पष्टीकरण और कराईए। उन्होंने कहा हे राजन! जिस समय राजा के राष्ट्र में अज्ञान का अन्धकार आता है, राजा के मस्तिष्क में भी, तो उस काल में आता है, जिस काल में, उस राजा के समाज में तप होता है, ब्रह्मवेत्ताओं का एक तप होता है, महापुरूषों का एक मानो वही मानो देखो, ऋषि मुनि हैं, जब वह विवेकी पुरूष मानो राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण करके, स्वयं पुरूषार्थी न रह करके, उस अन्न को, जो जिज्ञासु ग्रहण करने लगता है। तो राजा के राष्ट्र से जिज्ञासा नष्ट हो जाती है, और जब जिज्ञासु नष्ट हो जाते हैं, तो तीव्र इच्छा वाले तपस्वी चले जाते हैं। तो राजा के राष्ट्र में विवेक नही रहता है और जिस समाज में, जिस गृह में, जिस राजा के राष्ट्र में, मानो देखो, विवेक नही होता, तो उस राजा का राष्ट्र, तो एक समय रक्तमयी क्रान्ति के मुखारबिन्दु में परणित हो जाएगा। मेरे प्यारे! देखो, राजा सगर बड़े आश्चर्य से, ऋषि के उन वचनों का अमृत का पान कर रहे थे। उन्होंने कहा प्रभु! यह तो वाक् यथार्थ है, क्योंकि हमारे पिता महापिता भी यही वर्णन करते चले आए हैं, क्या राष्ट्र के अन्न को ग्रहण न करें, जिससे बुद्धि भ्रमित हो जाती है, राष्ट्र में स्वार्थवाद आ जाता है।

अलंकार से वेद की सजातीयता

जैसे मानो देखो, मुझे एक लोलुक्तियां स्मरण आती रहती है, क्योंकि वेद में एक

आलंकारिक भाषा एक ऐसी विचित्र है, जो देखो, वेद के ज्ञान को सजातीय बना देती है, मानो देखो, जैसे अलंकार आते हैं, अलंकारों के रूप को देखो, ब्रहे हमारे यहां बहुत समय से, मेरे पुत्र महानन्द जी ने एक समय मुझे प्रगट कराया, क्या बहुत समय साहित्य में, इतिहास में, मानो देखो, जब इतिहास में अलंकार भाषा का उपयोग होने लगता है, और उस आलंकारिक भाषा को इतिहास में ले लिया जाता है, तो समाज का, इतिहास भ्रमित हो जाता है। समाज का जो साहित्य होता है, वह भ्रमित हो जाता है, उसके भ्रमित होने पर नाना प्रकार की रूढ़ियां, ईश्वर के नाम पर पनपने लगती हैं, और वह रूढ़ियां अधूरेपन में रमण करती हैं, और वह मानो उसमें रक्तमयी क्रान्ति, उसके गर्भ में निहित होती है।

अश्वमेध याग से समाज में क्रियापन

तो राष्ट्र यह विचारता है, कि अब मैं क्या करूं, जो रूढ़ि बन गई है, तो राजा को यह चाहिए क्या राजा यदि अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, जैसा राजन! तुमने अश्वमेध याग किया है, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न रहा है, अश्वमेध याग जब राजा करने लगता है, प्रजा और समाज और राष्ट्र अपने में सम्मिलित हो करके, जब अश्वमेध याग करता है, तो मानो वह मौन रहता है, अनुष्ठान के रूप में करता है और वह जब उसको करता है, तो समाज में एक क्रियापन आ जाता है, वह क्रिया महान है, वह क्रिया में देखो, रत्त रहने वाला, उस क्रिया के गर्भ में अहिंसा परमोधर्म निहित रहता है।

गौ का स्वरूप

इसीलिए हमारा विचार यह कहता है, हे राजन! इस गऊ को अपने आश्रम ले जाओ, मुझे गऊ की आवश्यकता नही हैं, मुझे तो इन गऊओं के बछड़े और गऊओं को जानना है, जो मेरे यहाँ देवासुर संग्राम के रूप में मानो गतिवान होते रहते हैं। गऊ के देखो, गऊ का बछड़ा कौन है? मानो गो नाम इन्द्रिय है, और इन्द्रिय में गौ, ज्ञान मानो देखो, चेतना, जड़ का मानो देखो, दोनों के सम्पर्क से, यह ज्ञान की तरंगें उत्पन्न होती हैं और उन तरंगों से, वह तरंगें मानो देखो, जो बछड़े हैं, गऊ के बछड़े बन गएं और

वह बछड़े बन करके, वह चंचल होते हैं, परन्तु उन विषयों को, अपने अधीन करना है, उन विषयों को अपने में धारणा करना है, और धारणा करके, हमें सबको विवेकी बनना है। राजा सगर ने कहा प्रभु! आप तो बड़े महान हैं, आपको तो बड़े बुद्धि प्रखर कहलाते हैं प्रभु! आप जो यह उच्चारण कर रहे हैं, यह वाक् तो दर्शनों का है, वह वैदिकता से अमृति कहलाता है।

बाह्य जगत में संग्राम

मुनिवरों! देखो, ऋषि ने कहा, सोमकेतु ने कहा प्रभु! ब्रह्मणा ये मानो देखो, कृति लोका कहलाता है। तो इसीलिए यह गऊ नही, हमें गो चाहिए, हमें इन्द्रिय परक कहलाती हैं। बेटा! देखो, इन्द्रियों का नाम गो हैं, गो नाम इन्द्रियों का है, उनको गऊ भी कहते हैं, पशु है, इन्द्रिय पशु कहलाती है। तो मानो देखो, जब पशु है, तो मंगलं ब्रहे बेटा! देखो, उस आभा में हमें जानना है, जब वह गो है, तो गो को जानना है, जान करके मानो देखो, उसके बछड़ों को जान करके, हमें देवासुर संग्राम में सफलता को प्राप्त करना है। बेटा! हमारे जीवन में बहुत से हैं, वास्तव में,बाह्य जगत में भी संग्राम होते रहते हैं, बाह्य जगत में, जब मानो संग्राम होते हैं, जब धर्म के, ईश्वर के नाम पर रूढ़ियां हैं, और रूढ़ियों में कर्तव्यवाद नही रहता, और देखो, उस समय स्वार्थपरता आ जाती है, जब स्वार्थ आया, उस स्वार्थ के छेदन्य करने के लिए, नाना प्रकार की क्रान्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। और वह क्रान्तियां मानो देखो, एक अभ्योदय के रूप में रहती हैं, जिससे राष्ट्र और समाज उस क्रान्ति से महान भी बन सकता है, और राष्ट्र का विनाश भी हो सकता है।

राष्ट्र में धृष्टता

तो मुनिवरों! देखो, इसीलिए हमें विचारना है, कि हम अपनेपन में कितने गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो करके, अपने में अपनेपन को जानें।, मेरे प्यारे! देखो, राष्ट्र जब भी, यह धृष्टता को प्राप्त होता है, जब माता माता नही रहती है, मानो देखो, पुत्री पुत्री नही रहती, जब भगिनी भगिनी नही रह पाती, परन्तु देखो, वह अपने अपने स्वरूप को,

जब नही जानेंगी, तो राष्ट्र में अन्धकार, उस काल में भी आता है।

माता से राष्ट्र

एक समय बेटा! महर्षि कपिल मुनि महाराज से यह प्रश्न किया गया था, कुछ ऋषियों के द्वार पर, कि राष्ट्र को समाज को ऊँचा बनाने में किसका सहयोग चाहिए? मेरे प्यारे! उन्होंने कहा सबसे प्रथम माता का सहयोग चाहिए, माता जब यह जान लेती है, कि मुझे इस राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना है, तो माता के लिए कोई वस्तु असम्भव नही हैं। मेरे प्यारे! कोई भी वस्तु असम्भव नही रहती हैं। बेटा! मैं बड़ी विचित्र वार्त्ता आज मैं प्रगट कर रहा हूँ, इसको जानने के लिए मनन करना है, माताओं का सहयोग क्यों चाहिए? क्योंकि माता राष्ट्र की भावी होती है, मानो देखो, राष्ट्र को ऊँचा और गृह को ऊँचा बनाने में तत्पर रहती है। परन्तु माता शृङ्गार वाली नही चाहिए, माता के द्वारा यदि शृङ्गार हो, तो वह ज्ञान भी होना चाहिए, माता के कण्ठ में यदि कोई सजातीय वस्तु हो, तो मानो वह ज्ञान और विज्ञान भी होनी चाहिए। जिससे वह अपने गर्भस्थल में, वह देवताओं के मध्य में, शिशु पनपने लगा है, जल की आभा में जो रक्त रहता है, वही ओढ़न बना हुआ है माता को अपने विचार यहाँ देने हैं। विचारों को दे करके देखो, एकान्त स्थली में विद्यमान है।

माता सीता का जीवन

तुम्हें प्रतीत होगा, मैंने कई काल में वर्णन किया है, तुम्हें त्रेता के काल में, देखो, क्या जब माता सीता देखो, जीवन पर्यन्त देखो, उन्हें एक आपत्ति का एक वृत्त रहा है। कहीं सिंहराज से वह मानो ज्ञान से वार्त्ता कर रही है, कहीं मानो अपने चरित्र और मानवीयता की रक्षा कर रही है। इनके जीवन में एक बड़ा कौतुक होता रहा है, परन्तु देखो, जब अयोध्या में आ गएं, तो माता के गर्भस्थल में, जब गर्भ की वृत्तियाँ प्राप्त हो गई, तो राम ने लक्ष्मण से यह कहा कि हे लक्ष्मण! जाओ, सीता को, महर्षि बाल्मीकि के यहाँ त्यागो। देखो, वहाँ इनका पोषण होना चाहिए, क्योंकि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है, और राष्ट्र को, माताओं का सहयोग इसलिए चाहिए, क्योंकि उनके गर्भ से एक महान तपस्वियों

का जन्म होना चाहिए। जिससे राष्ट्र तपस्वियों का होता है, राष्ट्र मानो देखो, संकीर्ण प्राणियों का नही होता, राष्ट्र पद की लोलुपता से उसका कोई समन्वय नही होता, राष्ट्र मानो देखो, जब शिखर पर जाता है, ऊर्ध्वा में गमन करता है, उसमें एक विवेक होता है, एक धारणा होती है, कि राष्ट्र मुझे प्राप्त हो या नही हो, परन्तु मेरी आत्मा की जो वृत्तियाँ है, वह नष्ट नही होनी चाहिएं। मेरी आत्मा से जो तरंगों का जन्म होता है। वे तरंगें तरंगों के रूप में रहनी चाहिएं।आत्मा के विचारों का ह्रास नही होना चाहिए।

मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण है, लक्ष्मण ने अपने रथों में व्रतः माता सीता को महर्षि बाल्मीकि आश्रम में त्यागा गया। महर्षि बाल्मीकि आयुर्वेद के मर्म को जानते थे, आयुर्वेद की प्रतिभा को जानते थे, आयुर्वेद में लगे रहते थे। तो आयुर्वेद के कथानुसार किस माह में कैसा अन्न, कैसा भोजन होना चाहिए, किस प्रकार का औषध होना चाहिए, यह सब आयुर्वेद से ले करके, मुनिवरों! देखो, यह अनुसन्धान होता है। मेरे पुत्रों! देखो, माता ने जीवन में तपस्या करने के पश्चात, पुत्रों को प्राप्त किया।

माता का राष्ट्र निर्माण में योगदान

तो परिणाम क्या, मुनिवरों! ब्रह्मचारियों का बन जाता है, तो राष्ट्र ऊँचा बनता है। अरे, राष्ट्र मानो देखो, ऊँचे ऊँचे ऐश्वर्यों में राष्ट्र ऊँचा नही बनता, राष्ट्रीयता तो मानो देखो, उसमें होती है, जहाँ त्याग प्रवृत्ति बनी रहती है। जहाँ समाज में एक शान्ति की स्थापना कर सकें। अपनी इन्द्रियों में शमन करके, अपनी इन्द्रियों को जान करके, इन्द्रियों में लय हो जाऊं।

तो मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तो तुम्हें देने नही आया हूँ, विचार देता हुआ, बेटा! दूरी चला गया हूँ। विचार केवल यह कि ब्रह्मणं ब्रहे, माता का सहयोग, क्या जब माता अपने गर्भ में निर्माण करती है, जो माता प्रभु का चिन्तन करती है, विवेक को उत्पन्न करती है, तो मुनिवरों! देखो, माता, माता होनी चाहिए और जब माता, माता बन जाती है, उसके गर्भ से तपस्वी, प्राणियों का जन्म होता है, तो उसको कोई माता से वंचित नहीं कर सकता है संसार में, तो वह माता, माता ही बन करके रहती है। परन्तु देखो,

ब्रह्मणां ब्रह्म, मेरे पुत्रों! देखो, वह जब अपने में श्रृङ्गार को प्राप्त न हो करके, वह सन्तान को, सन्तान उसका मानो एक श्रृङ्गार है, उस श्रृङ्गार में श्रृंगरित हो जाती है। तो उस माता का सहयोग राष्ट्र के लिए क्या बेटा! देखो, राजा का राष्ट्र उस काल में ऊँचा बनता है। मुझे एक समय मेरे प्यारे महानन्द जी ने वर्णन कराया क्या, आधुनिक काल के जो राष्ट्रवेत्ता हैं, वर्तमान के, वह माताओं को सहयोग, सन्तान में न ले करके, वह मानो देखो, पद की लोलुपता में उसे ले जा रहे हैं। और विनाश का मार्ग बनता जा रहा है।

तो यह बेटा! मैं इस सम्बन्ध में कोई चर्चा नही करूंगा, विचार केवल यह है, कि हमें यह विचारना है, कि हमे सहयोग चाहिए, आगे आने वाले समाज के लिए, और राष्ट्र के लिए, वीरतव के, तो मुनिवरों! देखो, मैं तुम्हें बहुत दूरी पंहुच गया हूँ, बेटा! विचार यह, कि राजा सगर, महाराजा सोमकेतु ऋषि महाराज के द्वारा, बेटा! देखो, अपने विचार, दोनों व्यक्त कर रहे थे, और गऊ के लिए, उन्होंने कहा कि मुझे विवेकी पुरूषों को, गऊ नही चाहिएं। जहाँ गऊओं की रक्षा कर सकें, गऊओं का दुग्धाहार कर सकें, मानो देखो, उसी के लिए, यहाँ इस प्रकार की गऊ हैं, उसी का हमें पान करना है, उसी के द्वारा गऊं हो, तो समाज में उसकी महानता है, समाज उसकी गो कहलाती है, आज्ञा का पालन करने वाली और ब्रह्म ज्ञान में रत्त होने वाली हो। मानो देखो, प्रजा उसकी गो कहलाती हैं, यहाँ पशु का सम्बन्ध नही हैं, और यदि वह जिज्ञासु बन करके, प्राण और मन को और विचार, शमन करना चाहता है, तो वहाँ जैसे सूर्य की नाना प्रकार की किरणें हैं, रश्मियां हैं, वहीं तो सूर्य के रूप में, वह सूर्य की गाथा गाती हैं। तो इसीलिए समाधिष्ट होने वाले प्राणी हैं, ऋषिवर हैं। मानो देखो, उनके लिए गऊं चाहिए, एकाग्र, जैसे इन्द्रियों का एकाग्र करके, अपने में, इन्द्रियों का समावेश करना ही, मेरे पुत्रों! देखो, गऊं, उसमें परणित हो जाती हैं। राजा के लिए, गो नाम का पशु चाहिए। क्योंकि राजा को वृद्धि करनी है राष्ट्र में, राजा के राष्ट्र में, जब वृद्धि होती है, जबकि उसके राष्ट्र में गऊंओं की सेवा होती है, गऊओं का पालन होता हो। जैसा जिसका कर्तव्य है, जैसा जिसका क्रियाकलाप है, वैसी ही गऊं होनी चाहिए। परन्तु

देखो, दुग्धाहार करना चाहता है, तो पशु होना चाहिए, मानो एको ऋषि अपने में पान करना चाहता है, तो ब्रह्मवेत्ता, आचार्य, शिक्षालय होने चाहिएं।

गौ पालन से साधना

मेरे प्यारे! देखो, वह गऊओं की पूजा हो सकती है। मेरी प्यारी माता को भी तो, गो के रूप में परणित करते हैं, क्योंकि वह इन्द्रियों का शमन करके, वह अपनी इन्द्रियों पर जय करके, बाल्य को तपस्वी बना देती है। तो मुनिवरों! देखो, उस माता की आवश्यकता है, उसके सहयोग की आवश्यकता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय, जब ऋषि ने यह वर्णन किया, ऋषि ने उद्धधृत करते हुए, कि एक समय जिज्ञासु, जब पिप्लाद ऋषि के द्वार पर पंहुचें, तो पिप्लाद ने यह कहा था कि आचार्य, अपने ब्रह्मचारियों से यह कहते हैं कि तुम गऊओं की सेवा करो, गऊओं की सेवा करने से निरभिमानी बनता है, गऊंओं पर जय होने से, वह अपने में संयमी बन जाता है, और मुनिवरों! देखो, गऊओं पर जय करने से, वह समाधिष्ट होने से, योगी बन जाता है और गऊओं का समन्वय करने से, मानो देखो, गऊओं की आभा में रत्त हो जाता है। बेटा! सूर्य की किरणों के साथ, वह गो जान करके और गऊंओं की सेवा होगी, गऊंओं की सेवा का अभिप्रायः जिज्ञासा में यह क्या, गो नाम का पशु का प्रसंग नही हैं, यहाँ यहाँ गो नाम इन्द्रियों का प्रसंग है, और इन्द्रियों की इन्द्रिय मानो देखो, गो के रूप में, उनके विषयों को ले करके, उनकी पालना करनी है, हमें उसके अनुसार गमन करना है, ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचरिष्यामि बन करके, हम मानो देखो, अपने में महान बन सकें।

मेरे प्यारे! देखो, राजा सगर, इन वाक्यों को पान करते हुए, ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गए, उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! आपने मेरे हृदय की, मानो जो अन्धकार की जो ग्रन्थियां लगी हुई थी, उनका स्पष्टीकरण हो गया। आपको धन्य है प्रभु! मेरे प्यारे! इस प्रकार राजा को, ऋषि ने एक गऊं को ले करके, जब अपना उद्गीत गाया, वह

कितना विचित्र है।

राजा के राष्ट्र में महानता

तो इसीलिए बेटा! मैं उच्चारण कर रहा था, आज का विचार क्या चल रहा था। मेरे प्यारे! देखो, राजा को वह अन्न ग्रहण करना चाहिए, जिस पर किसी का अधिकार न हो, स्वयं कला कौशल करने वाला हो और कला कौशल करने के पश्चात, राष्ट्र के क्रियाकलापों में रत्त रहना चाहिए। राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करना, राजा को, मृत्यु को अपने समीप लाना है और यदि वह स्वयं कला कौशल करके पान करेगा, तो वह मृत्यु से पार हो जाएगा, वह प्रभु के द्वार पर चला जाएगा और यदि राजा देखो, यह विचारता रहेगा, मैं गो अपनं ब्रहे राष्ट्र के वैभव और श्रृङ्गार को ग्रहण करने वाला राजा बन जाएगा, जानो, अन्धकार की तरंगें आती, वह ईश्वर को नही जानता। जो राजा ईश्वर को जानता है, उसके राष्ट्र में ईश्वर के नाम पर रूढ़ियां नही बनती है, और जब रूढ़ियां नही बनती हैं, तो अन्धकार नही होता है, और जब अन्धकार नही होता, तो रक्तभरी क्रान्ति नही आती, उस राजा के राष्ट्र में एक महानता का दर्शन होता है।

रूढ़ियों की समाप्ति का आधार

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैंने बहुत पुरातन काल में ही विचार प्रगट, पूर्व काल में भी यह दिए हैं। राजा यदि अपने राष्ट्र में शान्ति चाहता है, यदि राजा शान्ति नही चाहता है तो दूसरी वार्त्ता है, यदि शान्ति चाहता है तो रूढ़िवाद को जानना होगा, रूढ़ियों को समाप्त करना होगा, ज्ञान और विज्ञान को लाना होगा, विवेकी पुरूषों की सेवा होनी है और देखो, वृत्तियां में रूढ़िवादियों का विनाश कर देना है। उनको ज्ञान से, शिक्षा से, दण्ड से और शस्त्र अस्त्र को ले करके, वेद की पोथी उसके द्वार पर होनी चाहिए। तो मुनिवरों! देखो, ये रूढ़ि समाप्त होने पर अन्धकार चला जाता है। और अन्धकार के जाने से प्रकाश आ गया, प्रकाश राजा के राष्ट्र में कहां से आता है? अपने अपने कर्तव्य का पालन करने वाला समाज हो, तो राष्ट्र ऊँचा बन जाता है।

तो बेटा! यह मैं विशेष चर्चा नहीं, यह सोमकेतु ऋषि ने प्रगट कया था, राजा सगर

को। और महात्मा कपिल मुनि महाराज ने बेटा! उस याग को सम्पन्न करना, गो इत्यादि भी प्रदान की गई, गो उसकी रक्षा। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि को कुछ दीजिए, महात्मा को कुछ प्रदान मत कीजिए। गो दे दीजिए, दुग्धाहार करने के लिए, वह उसी में प्रसन्न हो जाएगा।

तो यह है बेटा! आज का वाक्, मैं विचार क्या कर रहा था, कि गो ऋषि का, गो क्या है? इन्द्रियों का विषय है। इन्द्रियों का मन्थन करना है, परन्तु देखो, उसी के द्वार पर, अपने जीवन को महान बनाना है, यह है बेटा! आज का वाक्, मैं विशेष व्याख्याता नही हूँ, चर्चा बहुत कुछ उच्चारण करने के लिए, बेटा! विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए, परमात्मा को अपना पुरोहित स्वीकार करके, इन्द्रियों के विषयों और प्रभु की महती को, उसमें सम्मिलित करते हुए, हे माता! तू राष्ट्र की सहयोगी बन, महान बनाने के लिए, परन्तु देखो, पुत्र को उत्पन्न करके, न्याय के लिए, राष्ट्र को ऊँचा बना सकती है। राष्ट्र में न्यायालय में विराजमान हो करके, राष्ट्र को ऊँचा बना सकती है। परन्तु देखो, वह शिक्षा प्रणाली पवित्र होनी चाहिए, यह आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् ब्रह्म गा याः आभ्यां ऋषि वायु गतं माहं आपा रथं आभ्यां रुद्राहं मनु गा ताः। अच्छा भगवन्!। आज्ञा। याग से प्राप्ति दिनांक 03 11 1988, स्थान श्री सहगल जी, 3 ई 31, लाजपत नगर, नई दिल्ली 110024।

१३ 04 11 1988 याग में जीवन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे । ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, वह जो परमपिता परमात्मा है, जो अनन्तमयी है, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह अनन्त है, और महान है, वह सर्वत्र विद्यमान है । हमारा एक वेद का मन्त्र, उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में बड़ी ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ता रहता है। उस

परमपिता परमात्मा का यह जो ज्ञान, विज्ञानमयी जगत है, उसकी चर्चाए, हमारे वैदिक साहित्य में प्राप्त होती रही हैं, और ऋषियों ने जब उन मन्त्रों के ऊपर मनन और उनको साक्षात क्रिया में लाने का प्रयास किया, तो उसी काल में, एक अनुपमता और महानता उन्हें क्रियाकलाप में दृष्टिपात होती रही है। मुझे बहुत सा काल स्मरण है, उस बहुत से काल में मानव ने जो भी कल्पना की है, और अनुसन्धान किया है, तो ऐसी ऐसी ऊर्ध्वा में, हमें विचार धाराए प्राप्त होती रही हैं, जिन विचारों को हम साकार रूप देकर, अपने मानव जीवन को ऊँचा बना सकते हैं। वैदिक साहित्य में भिन्न भिन्न वार्त्ताएं प्रायः हमारे समीप, आचार्यों ने हमारे कल्याणार्थ के लिए प्रदान की हैं। बेटा! मैं विशेष चर्चा, इस सम्बन्ध में करने नही आया हूँ, विचार केवल यह देना है, कि हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में राष्ट्र में, अनुशासन का बड़ा वर्णन आता रहता है। राष्ट्र का भी वर्णन हैं, और राष्ट्र का जो अनुशासन है, उसकी बड़ी चर्चायें हैं, और उसके ऊपर मानव ने अपनी उड़ाने भी उड़ी हैं।

राष्ट्रीयता का निर्माण

मुनिवरों! देखो, आज हम तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं, जहाँ राष्ट्रीयता का निर्माण हुआ, हमारे यहाँ मनु काल में, मनु जी ने इस राष्ट्रीय प्रणाली को साकार रूप देने का प्रयास किया। उन्होंने वेद के मन्त्र को ले करके, राजा का वर्णन किया। राजा उसको कहा जाता है जिसके राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी की रक्षा होती हो। राजा के राष्ट्र में रक्षा होना, यह उसकी राष्ट्रीयता का प्रतीक है। बहुत काल हुआ है, जब मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत सी वार्त्ताएं प्रगट कराईं। परन्तु आज मैं तुम्हें उन विचारों में नही ले जा रहा हूँ। विचार केवल यह है, कि हमारे वेद के पठन पाठन में, राष्ट्रीयता की बड़ी चर्चाएं हैं और आध्यात्मिकवाद से उसका समन्वय किया है। और यह विचार हमारे एक एक वेदमन्त्र में आते रहे हैं।

राजा से राष्ट्र की पवित्रता

आओ, पुत्रों! आज मैं तुम्हें भगवान मनु की उस ऐतिहासिक ओर साहित्यिक चर्चाओं

में ले जा रहा हूँ, जहाँ नाना ऋषिवरों ने विद्यमान हो करके, अपने विचारों की एक भूमिका बनाना प्रारम्भ किया, और यह कहा, कि यह जो राष्ट्र है, इसका निर्माण होना चाहिए, और क्यों होना चाहिए? यह प्रश्न उसके साथ में लगा हुआ है उसके ऊपर गम्भीरता से विचार विनिमय प्रारम्भ हुआ, तो अनियमितता आ जाती है, तो किसी शासक की आवश्यकता होती है, जैसे मानव के शरीर में जब प्रवृत्तियों में विकृतियां आ जाती है, तो मानव शनै शनै उसका परिशोधन मार्ग प्राप्त करता है और वह उसमें विलिन हो जाता है। इसी प्रकार राजा जब अपनी नियमावली का निर्माण करता है, तो निर्माण करते समय, नाना प्रकार के विचार उसके समीप आते हैं, कि राष्ट्र की आवश्यकता होती है। और यदि राजा व्यवस्थित नही हैं, तो प्रजा को व्यवस्थित नही बना सकता। जैसे आचार्य के कुल में जब ब्रह्मचारी प्रवेश करता है, तो आचार्य उसे अपने गर्भ में धारण करता है और यदि आचार्य को, ब्रह्मचारी को, गर्भ में धारण करने की (ओडियो से) सत्ता नही हैं, शक्ति नही हैं, तो वह आचार्य पवित्र नही बना सकता ब्रह्मचारी को।

गुरु की तीन रात्रियाँ

तो विचार आता है, कि वह गर्भाशय कौन सा है, मानो देखो, वह तीन दिवस तक, अपने गर्भ में धारण करता है, वह तीन दिवसों का विचार यह है, कि तीन दिवस ब्रह्मचारी को अपने संरक्षण में निहित करके, बाह्य जगत की वार्त्ता, आन्तरिक जगत की चर्चाएं, अन्तःकरण को स्पर्श करने वाली सत्ता, ब्रह्मचारी में जब उत्पन्न हो जाती है, तो उसका स्वयं का क्रियाकलाप एक साकार रूप में परिणित हो गया है और वही मानो तीन रात्रियां कहलाई गई हैं। उन्हीं तीन रात्रियों में, गर्भ में धारण करता है। गर्भ का अभिप्रायः यह है, कि अपने विचारों से, उन विचारों का, एक मानो वस्त्र बना करके, उस ब्रह्मचारी को ढ़ांप लेता है। मेरे प्यारे! जैसे जलं वर्णासुताः जैसे जल माता के

गर्भस्थल को ढांप लेता है, इसी प्रकार वह भी, उसमें वृत्तियों में रत्त हो जाता है।

सुचरित्रता से आत्मा की प्रसन्नता

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, कि राजा भी प्रजा को अपने गर्भ में धारण करता है, राजा जब ही कहलाता है। तो इसीलिए राष्ट्र के जो क्रियाकलाप हैं, नियमावली हैं, वह ऐसी भव्यता में निर्माणित होनी चाहिए, क्योंकि राजा का जीवन व्यवस्थित होना चाहिए। मैं बहुत समय से व्यवस्था की चर्चा कर रहा हूँ, पुत्रों! कि मानव को अपने जीवन को, सुचरित्रता में इतना व्यवस्थित बना लेना चाहिए, जिससे उसकी आत्मा प्रसन्न हो जाएं। जब तक उसके क्रियाकलाप से, आत्मा प्रसन्न नही होता, तब तक मुनिवरों! देखो, उस आभा को नियुक्त नही करा सकता। उसका अभ्योदय नही होगा।

राजाओं की नियमावली

तो आओ, बेटा! देखो, यह भगवान मनु ने, राष्ट्र का निर्माण किया, और राष्ट्र को व्यवस्थित बनाया, और अपना वाक् यह कहा, कि उनके राष्ट्र में, प्रत्येक प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। चाहे कोई जल में गमन करने वाला है, चाहे कोई पृथ्वी पर रेंगने वाला है, चाहे वनों में, भयंकर वनों में विचरण करने वाला, सिंहराज है, सबकी रक्षा वह राजा करता है, जिसको आत्मबल होता है। जिसके द्वारा आत्मा का बल नही होता, केवल राष्ट्रीय बल होता है, आत्मा का बल नही होता, वह उसको नही ला सकता, इस व्यवस्था को बना नही पाएगा।

वह उस समय की चर्चाएं हैं, बेटा! राजाओं के यहाँ एक नियमवली बनती रहती थी, और जीवन में एक महानता का, प्रातःकाल का एक क्रियाकलाप रहता, महाराजा अश्वपति के यहाँ, एक समय बेटा! देखो, कुछ ऋषि मुनि पंहुचें, और ऋषि मुनि जैसे गृह में पंहुचे, तो राजा ने उनका स्वागत किया, राजा के उचित स्थलियों पर जब वह विराजमान हो गएं, तो राजा ने कहा कहो भगवन! कैसे मेरे आसन को पवित्र किया? मानो व्यवहार में राजा ऋषियों का स्वागत कर रहा है, व्यवहारिक प्रणाली कितनी

विचित्र होती है।

महाराजा अश्वपति का जीवन

तो ऋषि मुनियों ने कहा कि प्रभु! आपकी राष्ट्रीय धारा को दृष्टिपात करने आए हैं। तो राजा का प्रातःकाल का जो क्रियाकलाप था, बेटा! वह मुझे स्मरण है। उसे में उच्चारण कर रहा हूँ। सबसे प्रथम मानो देखो, रात्रि के अन्तिम प्रहर में, महाराजा अश्वपति और उनकी पत्नी शकुंत श्वेति मानो देखो, वह दोनों रात्रि के अन्तिम चरण में जागरूक हो करके, ब्रह्म की चर्चा में संलग्न हो जाना, और ब्रह्म वाद की चर्चा करना, जिससे अन्तरात्मा बलिष्ठ हों, क्योंकि यह नियमावली बनी कि जितना मानव परमात्मा के निकट होता है जितना परमात्मा को अपने में अन्तर्हृदय में जानता रहता है, प्रकट करता रहता है, उतना ही वह महान बनता रहता है उतना उसका आत्म बल बलिष्ठ होता रहता है और जब उस परमात्मा से मानो विमुख, वह प्राणी हो जाता है, वह संसार के वैभव में आ जाता है, और संसार के वैभव में परिणत हो करके, मुनिवरों! देखो, अपनी आभा में लय कृतियों में रत्त न रह करके, मेरे पुत्रों! वह अपनेपन की आभा वर्णा, तो मेरे प्यारे! देखो, अपने में वृत्तियों में जब रत्त हो जाता है, आत्म बल बलिष्ठ होने लगता है और आत्मा की चर्चा, परमात्मा की प्रातःकालीन चर्चा करता है, और प्रातःकालीन चर्चा करते हुए, मानो देखो, ब्रह्म की चर्चा लगाता है, ब्रह्म का यह साम्राज्य, ब्रह्म का यह जगत, जो रचना में हैं, गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो जाना।

मेरे प्यारे! उसके पश्चात, अग्नि के समीप विद्यमान हो करके, अग्नि के मुखारबिन्दु में, देवताओं का भोज्य प्रदान करना, उसके पश्चात बुद्धिमान पुरोहित जन, मानो देखो, अकस्मात उनके गृह में प्रवेश हो करके, बेटा! वह ब्रह्मवाद की चर्चाएं, अग्रणीयता की चर्चाएं करते थे। तो राजा के यहाँ, बेटा! ऋषि मुनियों ने देखो, प्रातःकालीन यह सब दृष्टिपात किया, राजा ब्रह्म की चर्चा कर रहा है, आत्म बल को बलिष्ठ बना रहा है, मुनिवरों! देखो, राजा अपने में ही अपनेपन का दर्शन कर रहा है। तो राजा का राष्ट्र उन क्रियाकलापों को दृष्टिपात करने वाला समाज, पवित्र बन जाता है। तो मानो वह

पवित्रतव को प्राप्त, महाराजा अश्वपति से जब प्रातःकालीन क्रियाकलापों को, ऋषि मुनियों ने दृष्टिपात किया, तो बड़े प्रसन्न हुए, और उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! ऐसा जीवन, ऐसी क्रियाकलाप वाला जीवन, मानो जो ऋषि मुनियों का भी नही हो पाता। राजन! तुम्हारा तो बड़ा एक नृत्त होता रहता है। उन्होंने कहा, राजा अश्वपति ने कहा प्रभु! यह तो मानव का कर्तव्य है। जब यह राष्ट्रीयता की स्थली पर विराजमान होते, तो प्रजा में शान्ति, आनन्दवत होता हुआ, दृष्टिपात आता रहता है।

राजा का प्रजा में भ्रमण

मेरे प्यारे! राजाओं का एक नियम बना था किसी काल में, मानो राजा अपने स्वयं को, अस्वरूप में ले जा करके, रात्रि काल में, गृह नगर में, मानो वह भ्रमण करता था, और वह किसी को किसी प्रकार का कष्ट तो नही हैं, मानो देखो, उस प्रकार भ्रमण करना, यह राजाओं का एक नियम रहा है, और यह प्रणाली बेटा! किसी काल में अयोध्या नगरी में, इसका निर्माण हुआ था, यह विचित्रता है, क्या वह अपने में मानो देखो, राष्ट्र को कितना ऊँचा बनाएं। मेरे प्यारे! देखो, प्रजा में विराजमान हो करके, प्रजाओं के हृदयों के उदगार लेना, और राजा अपने उदगारों को देना, यह समाज के लिए, राष्ट्र के लिए बड़ी सुन्दर एक उपलब्धियां हैं, जिससे समाज में एक महानता का जन्म हो जाएं। तो मेरे पुत्रों! देखो, राष्ट्र वैसे ही ऊँचा बनता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे कई काल में, उनके हृदय की जो वेदना है, वह प्रायः बनी रहती है। परन्तु ये वेदना वैसे ही पूर्ण नही होती, आचार्य जन पवित्र हों, ब्रह्मचारी पवित्र हों और राष्ट्रवाद पवित्र हो। मेरे प्यारे! देखो, राजा के राष्ट्र में, किसी प्रकार का भी अवधन नही हो पा रहा है, वह केवल उसी में रत्त रह करके, उसको विचारते रहते हैं।

याग का स्वरूप

आओ, मेरे प्यारे! मुझे बहुत समय हो गएं हैं, विचार देते हुए, राष्ट्र की चर्चा, तो आज देने नही आया, केवल यह कि हमारे यहाँ एक विचार चल रहा था, बहुत समय से, क्या याग मानो देखो, उसे कहते हैं, जहाँ देव पूजा, संगतिरण और दानेषु ये मानो तीन

वस्तुएं मानव को प्राप्त होती हैं। जिनकी चर्चाएं बेटा! मैं बहुत समय से कर रहा हूँ, उसका मानो देखो, संगतिकरण की चर्चाएं, मानो इसको मापने लगो, मापते रहो। तो यह सर्वत्र जगत एक संगतिकरण दृष्टिपात आता है। मानो एक एक परमाणु को मापने लगो, उस परमाणु के माप दण्ड में ही तो मानो देखो, वह विद्यमान रहती है, सम्भवां रेवं मेरे प्यारे! देखो, संगतिकरण चर्चाएं बहुत है, बहुत करते रहते हैं, प्रत्यके वस्तु संगतिकरण है, दानेषु में, देवपूजा की चर्चाएं और बेटा! मैं तुम्हें दान की चर्चा करने जा रहा हूँ, दान किसे कहते हैं? हमारे यहाँ दान की बड़ी विचित्र महिमा का वर्णन आता रहता है।

दान

मेरे प्यारे! देखो, राजा जब याग करते है, तो ब्रह्मवेत्ताओं को, वह गऊओं को प्रदान करते रहते थे। और याग में गऊओं का, मानो ब्राह्मण को देना, ये उनका बड़ा शुद्ध मानो देखो, राजा के राष्ट्र में या समाज में तीन प्रकार के लाभ होते हैं, उसका द्रव्य लाभ है, और देखो, वह पशु सेवा है ओर मानो देखो, उसका जितना भी उदगार, उद्घृतियां प्रबल हो जाएं, वह उतना ही सूक्ष्म। तो यह इसीलिए देखो, राजा, महाराजा भी अपने यागों में, दान में, गऊ प्रदान करते थे। दान नहीं मानो देखो, उसे अत्तिय कहते हैं। तो विचार यह कि गऊ के पशु को दान देना, पशु कोई दान नही होता, अन्त में ये कहते हैं कि दान नही दिया जा रहा है, दान कोई वस्तु नही होती। अपने द्रव्य में से इसीलिए दानं ब्रह्मा मानो वह प्रदान की जाती है, जिससे देखो, राष्ट्र और समाज का कल्याण हो। उसमें राष्ट्र और समाज का कल्याण होता है, जो दुग्धाहार करते हैं, मानो देखो, समाज प्रबल होता है, अहिंसा परमोधर्म को विचार लेता है, और जब मानो अपना द्रव्य अपने द्रव्य में से कुछ द्रव्य प्रदान कर देता है, तो मानो देखो, उसका हृदय और उल्लास में परिवर्तित हो जाता है।

माता मदालसा के ब्रह्मवादी पुत्र

बेटा! मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया था, दान की बड़ी विचित्र महिमा का वर्णन

हैं हमारे यहाँ देखो, माताएं (पुस्तक से) अपने पुत्रों! को प्रदान करती रहीं, मुझे बेटा! स्मरण है, बेटा! जब हृदय के उदगार, ऊर्ध्वा में गमन करते हैं, तो माता मदालसा के तीनों पुत्र ही ब्रह्मवेत्ता बन गये। और यह कहा कि जाओ, तुम ब्रह्म ज्ञान और यौगिकता को प्राप्त करके समाज को ऊँचा बनाओ। देखो, माता द्रव्य नही चाहती। माता कहती है कोई भी द्रव्यपति ब्रह्मवेत्ता नही बन पाता। दानात्वा दानं ब्रह्माः माताओं ने अपने को समर्पित कर दिया, मेरे प्यारे! वह समर्पित क्यों किया? क्योंकि उनकी (शब्द ध्वनि से) जब माता यह चाहती है, जब माता कोई भी बुद्धिमान हो, यह चाहती है कि मेरा पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन जाएं, माता यह चाहती है कि मेरा पुत्र प्रभु के निकट चला जाएं, माताओं के जो उदगार है, वह बड़े विचित्र रहे हैं, माताओं का बड़ा सहयोग रहा है।

ऋषि द्वारा पुत्र याग

बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था, बहुत ऊर्ध्वा में उदगार थे, बेटा! जो मंगलं देखो, मुनिवरों! देखो, ऋषि कालेत्वर कावत ऋषि महाराज अपने में अध्ययन करते रहते थे, और कालेत्वर ऋषि महाराज के हृदय में एक जिज्ञासा जागरूक होने लगी, क्या मैं एक सन्तान को पुत्रयागी बनना चाहता हूँ, कालेत्वर ऋषि मानो देखो, अपनी पत्नी से बोले कि हे देवी! हमें पुत्रेष्टि मानो देखो, पुत्र याग करना है। देवी ने कहा भगवन! बहुत प्रियतम। परन्तु यह तो वृत्तियाँ हैं, दर्शन यह कहता है कि जब तुम किसी को उत्पन्न करना चाहते हो, तो पूर्व विचारों में मग्न हो जाओ।

मेरे प्यारे! देखो, कालेत्वर ऋषि महाराज ने अपने में यह निश्चय किया, छह माह तक रमण करना और मनन करते हुए, उन्होंने एक पुत्र याग किया, और जब पुत्र याग किया, बेटा! देखो, माता उसे अपने गर्भ में ही पुत्र याग और विशेष करने लगी, गर्भ में ही पुत्र याग होता है, बाह्य जगत में नही होता। अपने सूक्ष्म सूक्ष्म विचार दे रही है। बेटा! देखो, वह कहती है, कि मैं इस संसार में, एक अपने गर्भ की, एक मेरा हृदय है, इस हृदय को, मैं संसार को समर्पित करना चाहती हूँ। वह दानेषु बनना चाहती है, वह दानं ब्रह्मा कृतो मेरे प्यारे! वास्तव में दान तो कोई वस्तु नहीं, मैंने पूर्व काल में

कहा है, कर्तव्यवाद में, संसार अपने में कटिबद्ध हो रहा है, और संसार देखो, एक कर्तव्यवाद की वेदी पर आ करके, अपनी मानवीयता को जानने लगता है। इसी प्रकार मेरी प्यारी माताएं, अपने में यह जानती रही हैं, कालेत्वर ऋषि महाराज, अपनी पत्नी श्वेतकेतु वृणि से बोले कि हे देवी! आप तो मानो पुत्र को ऊर्ध्वा में गमन कराओ।

मेरे पुत्रों! देखो, उनके गर्भ से, उत्पन्न होने वाला, बाल्य बड़ा मुनिवरों! देखो, विचित्र मानो देखो, वह तपस्या में परणित और वह बाल्य को भी उसके उदगार देने लगी। दोनों उदगार देते हुए, प्रभु को दृष्टिपात करो हे बाल्य! तू प्रभु को दृष्टिपात कर। मानो तुम आत्मा हो, आत्मा प्रभु के निकट रहता है, आत्मा चेतना है, ज्ञान युक्त है, और ज्ञान में ब्रीणि व्रताः ज्ञान युक्त होते हुए, मानो देखो, वह अपने से प्रयत्न युक्त जानाति जानं ब्रह्मे दोनों में युक्त है, आत्मा! तू आ।

ब्रह्मवेत्ता

मेरे पुत्रों! देखो, इस प्रकार माता पिता जब, ऊर्ध्वा से उसे आह्वान करते हैं, तो मानो वह अन्तर में प्रसन्न होता है, विचारवान बनता रहता है, विचारवानं ब्रहे विचार मेरे प्यारे! देखो, वही तो अपनें में, संस्कार समं दो शलं ब्रह्मा मेरे पुत्रों! देखो, भार प्रव्हा इस संसार रूपी समुद्र को जान करके, मुनिवरों! देखो, उसे त्याग देता है, वह ऐसा बाल्य मानो देखो, माता जब ऐसा दानेषु, दान देना प्रारम्भ कर देती है, देखो, ब्रह्मवेत्ता जब देखो, सिंहराज, भयंकर वनों में विचरण करता है, और वह मानो देखो, वह सिंहराज बनता है, तो धिराज है। इसी प्रकार देखो, ऋषि मुनि जो सिंहराज से भी, ऊर्ध्वा में गमन करने वाले, मानो चरित्र की उग्रगति बना करके, जो उसे मुनिवरों! देखो, उसके चरणों में नतमस्तिष्क होने वाले, मृगराज, सिंहराज उसके चरणों में नतमस्तिष्क हो करके, उसके चरणों को स्पर्श करते थे। ऐसी माताओं के जो बाल्य होते है, वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते हैं। ब्रह्मवेत्ता को, किसी प्राणी मात्र से, बेटा! वह प्रीति तो करता है, परन्तु

उसे निर्द्वन्द्वता प्राप्त होती है, वह निर्द्वन्द्व होता है। उसे भयभीतता प्राप्त नहीं होती।

याग से दान

तो मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार का जो विचार है, वह प्रायः देखो, दानेषु से प्राप्त होता है, दान किसे कहते हैं, क्योंकि दिया जा रहा है। यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान है, वह याग कर रहा है, और वह श्रद्धामयी घृत्त दे करके, साकल्य अग्नि के मुखारबिन्दु में परणित कर देता है। वह नही जानता, इसकी क्या गति होनी है, वह नही जानता, कि अग्नि के मुखारबिन्दु में, मैंने द्रव्य को, सूक्ष्म बना करके, वायुमण्डल में प्रसारित कर दिया है, वह कैसा सुन्दर दानस्सुता यह दानेषु है, जो अग्नि के मुखारबिन्दु में जा रहा है, देवता ग्रहण कर रहे हैं, वह देवता, मानव के शरीर में हो, चाहे वह बाह्य जगत में हो, वह देवता पान कर रहे हैं। वह पृथ्वी, नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन रही हैं। तो मुनिवरों! देखो, यह दान है, उसको यज्ञमान को यह प्रतीत नहीं है, कि तेरा द्रव्य कहाँ जा रहा है, तेरा साकल्य कहाँ जा रहा है, परन्तु उसके ऊपर वह मनन करता है, विचार विनिमय करता है, तो मेरे प्यारे! विचार क्या, क्या दान होना चाहिए, दानेषु एक वस्तु ब्रह्मणां है मुनिवरों! देखो, मुझे एक वार्त्ता स्मरण आ रही है दानेषु के ऊर्ध्वा में।

महाराजा रघु का अश्वमेध याग

मुनिवरों! देखो, महाराजा रघु, महाराज दिलीप के पुत्र कहलाते थे। मेरे प्यारे! महाराजा दिलीप का तो तुम्हें प्रतीत ही होगा, क्या महाराजा दिलीप बारह वर्षों तक, एक नन्दिनी के पीछे भ्रमण किया और नन्दिनी के पीछे और मानो देखो, नन्दिनी के पीछे, जहाँ नन्दिनी जाती, वहीं पीछे जाते। वह इतने गऊओं की सेवा करने वाला राजा, मेरे प्यारे! पशु पालन करने में, कितने तत्पर हैं। मैं जब उन वाक्यो में परणित होता हूँ, तो बेटा! मेरा अन्तरात्मा तो गदगद हो जाता है, वे पुत्रेष्टि याग में सफल हुए, और मानो उनके पुत्र का, वही पुत्र, राजा रघु के नाम से प्रसिद्ध हुए। मेरे पुत्रों! देखो, महाराजा रघु, सम्भव ब्रहे लोका मुनिवरों! देखो, वह तो गऊओं की सेवा करते थे, वह मेरे प्यारे!

इतने विचित्र दानेषु में गमन करते, क्या मुनिवरों! देखो, एक समय वह मुनिवरों! देखो, यज्ञ ब्रह्मा अपने पुरोहित से बोले क्या हे प्रभु! मैं जितना राष्ट्र कोष में अन्न है, प्रजा का, मैं सबका अश्वमेध याग करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। वशिष्ठ ने भी यही कहा, कि राजा के विचार, जितने सु आ जाएं, उतना ही पवित्रतम है, आप याग कीजिए। महाराजा रघु ने सर्वत्र द्रव्य याग के लिए, उन्होंने अपना क्रियाकलाप बनाया, और ब्रह्मवेत्ताओं को निमन्त्रित किया, और बेटा! मानो देखो, उन्होंने याग किया, याग में सर्व द्रव्य, सब हूत कर दिया अग्नि में, देवताओं के लिए, अग्नि के मुख में परणित कर दिया। क्योंकि उसे, अग्नि देवताओं का मुख है। मेरे प्यारे! देखो, उस देवतं ने अपने में ग्रहण कर लिया, ग्रहण करने के पश्चात, यह अग्नि तो बड़ी महान तत्पर रहने वाली है। तो बेटा! देखो, क्योंकि देवताओं का जो मुख है, वह मानो इस संसार को, अपने में धारण कर लेता है, और उसको निगल जाता है। जैसे संसार में मृत्यु, संसार को निगल रही है, और मृत्यु के ही गर्भ में ही, यह मानव परणित हो रहा है, और यह संसार, संसार को मानो देखो, मृत्यु अपने में धारण करके, उसको निगल जाती है।

कौत्स की गुरु दक्षिणा

इसी प्रकार, मेरे पुत्रों! देखो, राजा ने, अपने सर्वत्र द्रव्य को, अग्नि के मुखारबिन्दु में, साकल्य बना करके अग्नि के मुख में परणित कर दिया। परणित हो जाने के पश्चात, मेरे प्यारे! देखो, याग सम्पन्न हो गया। मुनिवरों! देखो, कौत्स और वरतेन्तु दोनों देखो, गुरु, शिष्य की आभा में निहित रहते थे। मानो कौत्स के हृदय में, मानो उन्होंने कहा प्रभु! मैं आपको दक्षिणा देना चाहता हूँ। उन्होंने कहा क्या, दक्षिणा देना चाहते हो? हे प्रभु! जो इच्छा। आपने मुझे महान बनाया है, आपने मुझे बुद्धिमान और विवेकी बना दिया है, प्रभु! मैं आपको कुछ समर्पित करना चाहता हूँ। उन्होंने आवेश में आ करके कहा, जाओ, मुझे चौदह लाख मुद्रा चाहिएं। उन्होंने उदगार अपने में, ब्रह्मचारी ने विचार

किया, यह मुझे कहाँ कहाँ प्राप्त हो सकती हैं, क्योंकि आचार्य को तो देनी ही हैं। मेरे प्यारे! देखो, कौत्स ब्रहा कृतो देवा वरतेन्तु के चरणों को स्पर्श करते हुए, उन्होंने कहा प्रभु! मुझे आज्ञा दीजिए, वह भ्रमण करते हुए, अयोध्या में पधारे, अयोध्या में मुनिवरों! देखो, राजा रघु और उनकी पत्नी ने, मुनिवरों! देखो, दोनों ने उनके चरणों को स्पर्श किया, और दोनों वह मानो देखो, वह मिट्टी, रज के पात्रों को ले करके, बेटा! उनका स्वागत करने लगे, जलं ब्रह्मा एकत्र, मुनिवरों! वह विराजमान हो गएं, ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मैं यहाँ से गमन कर जाऊंगा। महाराजा रघु और उनकी पत्नी ने चरणों को स्पर्श करके, कहा प्रभु! ऐसा क्यों? उन्होंने कहा मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान करनी है, और आपके स्वागत से मुझे यह प्रतीत हो रहा है, क्या, मेरे वचनों की यहाँ पूर्ति नही हो सकेगी। राजा रघु ने कहा आप पधारिए, हम प्रयास करेंगे। मेरे पुत्रों! देखो, वह विराजमान हो गएं।

कुबेर की स्वर्ण मुद्राएँ

मुनिवरों! देखो, जब विराजमान हो गएं, तो वह चिन्तन करने लगे। राजा ने रात्रि के काल में, अपने राष्ट्रवेत्ताओं को, और सेनानायकों को एकत्रित करके,कहा भई! देखो, धर्म संकट आ गया है, और ऐसा संकट आ गया है, ब्रह्मणां ब्रहे हे प्रभु! एक ब्रह्मचारी, मेरे द्वार पर, यदि उसकी इच्छा पूर्ण नही होगी, तो वह मेरे राष्ट्र को धिक्कार है। मानो देखो, उसकी पूर्ति होनी चाहिए, मेरे प्यारे! उन्होंने कहा भगवन! जो आप आज्ञा देंगे। उन्होंने कहा जाओ, ब्रह्मचारी के लिए चौदह लाख मुद्रा नहीं, ये सेना इसीलिए होती है, क्योंकि राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति। तो मुनिवरों! देखो, उस समय, राष्ट्रवेत्ताओं ने, मानो देखो, राज के वृत्तियों ने कहा, कि हे प्रभु! किसके द्वार पर जाकर, इतनी मुद्रा ला सकते हो, कुबेर के द्वार पर, मेरे पुत्रों! देखो, कुबेर के वहाँ एक गुप्त वृत्तियों में रत्त रहने वाली, प्राणी देखो, उसके राष्ट्र में थे, वह वहाँ से गमन करते हैं, और महाराजा कुबेर से जा करके,उन्होंने कहा कि तुम पर आक्रमण होने वाला है। राजा ने जो यह योजना निर्माणित किया है, परन्तु तुम्हारा द्रव्य ले जाएंगें, अन्यथा उन्हें प्रदान

करो। मेरे प्यारे! देखो, राजा, महाराजा कुबेर के हृदय में यह वार्त्ता समाहित हो गई। उन्होंने मुनिवरों! देखो, रथों में, अपने वाहनों में, वह स्वर्ण की मुद्राएं ले करके, बेटा! वह गमन कर दिया और प्रातःकालीन बेटा! वह मुद्राएं, उन्होंने आक्रमण करने से पूर्व ही, वह मुद्राएं प्राप्त हो गई।

मुद्राओं पर विवाद

मेरे प्यारे! राजा बड़े प्रसन्न हुए, और राजा के प्रसन्न होने पर,उन्होंने शून्यं ब्रहा राष्ट्र में धन्य होने लगा। मेरे प्यारे! देखो, जब मुद्रा, गणना में लाने लगे, तो चौदह लाख मुद्राओं से, वह कुछ मानो विशेष थीं, प्रवाति थी, तो मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने कहा भगवन! मुझे तो चौदह लाख मुद्रा ही चाहिएं, राजा ने कहा ऋषिवर! ब्रह्मचारी! यह जो द्रव्य रह गया है, इसको मैं अपने राष्ट्र कोष में समर्पित नही करूंगा, इसको राष्ट्र में नही ला सकूंगा, तो उन्होंने कहा तो प्रभु! मैं भी उतनी ही मुद्रा चाहिए, जितनी मुझे पूज्यपाद गुरुदेव के चरणो में समर्पित करनी हैं। मैं विशेष नही, मैं विशेष नही अपना सकूंगा। मेरे प्यारे! देखो, राजा का और ब्रह्मचारी का दोनों का विचार विनिमय होने लगा। परन्तु देखो, न तो राजा स्वीकार करें, न ब्रह्मचारी करें। मेरे प्यारे! देखो, यह निर्णय हुआ, कि चलो यह जो द्रव्य है, और द्रव्य है वह कुबेर को प्रदान कर दिया जाएं।

उन्होंने बेटा! देखो, कुबेर को निमन्त्रित किया, और कुबेर जब निमन्त्रित के अनुसार देखो, राजा रघु के यहाँ विराजे, राजा रघु ने प्रार्थना की, कि महाराज! आपका जो द्रव्य है, वहं कहीं विशेष है, भगवन! इस द्रव्य को अपने राष्ट्र कोष में ले जाईए। उन्होंने, महाराजा मानो कुबेर ने कहा प्रभु! ऐसा नही होगा, जो मेरे से द्रव्य आ गया है, वह द्रव्य तुम्हारा है, या ब्रह्मचारी का है। मेरा इस पर कोई अधिकार, अब नही रहा। मेरे प्यारे! देखो, जब कुबेर ने यह कहा, कि मेरा इस पर कोई अधिकार नही हैं, ये मैंने इसको प्रदान कर दिया है, तो मानो देखो, कुबेर और राजा रघु का दोनों का संघर्ष होने लगा। जब विचार विनिमय होने लगे, तो दोनों में से, कोई स्वीकार न करें।

ब्रह्मचारी को कहा तो वह भी स्वीकार न करे।

गौ के लिए मुद्राएँ

तो मेरे प्यारे! उन्होंने महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज को निमन्त्रित किया, और महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज जब निमन्त्रण के, पुरोहित रूप में आए, उन्होंने कहा प्रभु! यह द्रव्य है, इसका बंटवारा कीजिए। आप, उन्होंने कहा धन्यं ब्रव्हा व्रते मानो यह क्या चाहते हो? मानो यह द्रव्य है, यह द्रव्य कोई भी अपना नही रहा है। द्रव्य देखो, रघु कहता है, कि यह मेरे राष्ट्र कोष में, जाना चाहिए। ब्रह्मचारी कहता है, जितना मुझे लेना है, उतना ही लेना है, और कुबेर कहता है कि जो मेरे द्वार से आ गया, वह वहाँ नही जा सकता। तो अब क्या होना चाहिए? सम्भवो महाराजा मुनिवरों! देखो, वशिष्ठ मुनि महाराज ने माता अरूणधती से कहा देवी! यह भी एक संकट है, धर्म संकट इसके लिए विचारा जाएं, दोनों विचारने लगे। मेरे प्यारे! देखो, जब किसी इसको स्वीकार नही किया, तो उन्होंने कहा राजन! तेरे राष्ट्र में जो गऊएं हैं, उन गऊओं का जो कोष तुम्हारे राष्ट्र में, उसे प्रदान करो। और इस द्रव्य से गऊओं की सेवा होनी चाहिए।

मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् रघु ने भी और मुनिवरों! देखो, कुबेर ने भी स्वीकार कर लिया। और वरतेन्तु, ब्रह्मचारी हर्ष ध्वनि करने लगे, वह चौदह लाख मुद्राएं ले करके, बेटा! वह गमन करते हैं और वह महाराजा, अपने आचार्य के समीप पंहुचे। मुनिवरों देखो, वरतेन्तु सम्भवं व्रत्यं हे ब्रह्मचारी! यह कहाँ से तुम्हें प्राप्त हो गई? उन्होंने कहा ब्रो ब्रहा वर्णासुतं ब्रहा देखो, सम्भवं ब्रह्म लोकाम् हे प्रभु! राजा रघु के यहाँ से, ये मुद्राएं प्राप्त हो गईं। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने सब संघर्ष को, उदगार रूप में प्रगट कराया। मेरे प्यारे! देखो, वरतेन्तु ने ये कहा ब्रह्मचारी! यह जो तुम द्रव्य मुझे लाए हो, यह महाराजा कुबेर को, यह ज्ञान हो गया, कि मेरे ऊपर आक्रमण होगा, तो उसमें मानो तुम्हें त्रास हो करके, यह द्रव्य तुम्हें प्रदान किया होगा। उन्होंने कहा नही, पूज्यपाद! उन्होंने यह तो प्रसन्नता से प्रदान किया है। उन्होंने कहा कि प्रसन्नता से करते, तो उनके गुप्तचर विभाग वालों ने, गुप्तचर वालों ने, जब यह कहा कि आक्रमण होने वाला है, अन्यथा

द्रव्य दे दो। तो ये द्रव्य हे ब्रह्मचारी! यह द्रव्य मेरा भी नही हैं। मानो पुनः से अग्नि के मुख में इस द्रव्य को प्रदान करो।

द्रव्य में भावना

मेरे प्यारे! देखो, यहाँ ऋषि, गुरु शिष्य का, दोनों का परस्पर एक बड़ा विचार विनिमय होने लगा। प्रभु! आपने ऐसा क्यों कहा? उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम्हें प्रतीत है, ऐसे द्रव्य से, ऋषि मुनियों का विवेक नष्ट हो जाता है, और वरतेन्तु ने जब यह कहा, तो एक बड़ा आश्चर्य ब्रह्मचारी को प्रतीत हुआ,कहा हे वरतेन्तु! हे ब्रह्मचारी! जब कुबेर ने यह द्रव्य दिया, तो उन्होंने यह विचार की, कि राजा का आक्रमण होगा, भयभीत हो करके, यह द्रव्य प्रदान किया है। मानो यह द्रव्य राष्ट्र का द्रव्य है, राष्ट्र ऋषि मुनियों के हृदय में यह प्रवेश करेगा, या मुद्रित हो करके जाएगा, तो उनकी जो स्वर्णमयी जीवन है ऋषि मुनियों का ज्ञान युक्त है, विवेकमयी है परन्तु उनका विवेक और ज्ञान समाप्त हो जाएगा।

मेरे प्यारे! कौत्स ने कहा प्रभु! वाक् तो आपका यथार्थ है, क्योंकि दर्शन और विवेक तो यही कहता है, अब भगवन! किया क्या जाएं? उन्होंने कहा इस द्रव्य को, सबको गऊओं को ले करके अग्नि में समर्पित कर दो। मेरे प्यारे! उन्होंने पुरोहित इत्यादियों को निमन्त्रित किया, और साकल्य एकत्रित करके बेटा! देखो, वरतेन्तु और देखो, उनके शिष्यों ने साकल्य एकत्रित किया, द्रव्य एकत्रित करके, मुनिवरों! देखो, वह अग्नि के मुखारबिन्दु में, उस द्रव्य के द्वारा याग किया गया। याग करने के पश्चात बेटा! देखो, उसके विचार, अग्नि में भस्म कर दिए और वह मानो देखो, वेदमन्त्रों की जो शुद्ध पवित्र ध्वनि है, उस ध्वनि से स्वाहा के ऊपर, प्रत्येक मानव देखो, अग्नि की धारा, अग्नि के ऊपर विश्राम करके, बेटा! द्यौ लोक को चला गया। तो मानो देखो, द्रव्य का यह उपयोग हुआ।

तो विचार मेरे पुत्रों! देखो, यह दान की कितनी विचित्र महिमा है, अरे, एक दान को राजा भी यदि स्वीकार नही कर रहा है, ब्रह्मचारी अपना करके, आचार्य को दे रहा है, आचार्य भी स्वीकार नही कर रहा है। वह कहाँ पंहुचाता है, जहाँ उसे जाना होता है।

मेरे प्यारे! देखो, वह कहाँ चला गया, सम्भो ब्रहो सम्भवाः मेरे पुत्रों! देखो, अग्नि की धाराओं पर, विद्यमान हो करके, द्यौ में चला गया। द्यौ से मुनिवरों! देखो, वही परमाणु रूप बन करके, वह मेघों के रूप में, मानो देखो, वह कहीं नाना प्रकार के व्यंजनों के रूप में, सूक्ष्म बनता हुआ, बेटा! देखो, वह पृथ्वी के गर्भ में स्थापित हो गया, उसका अन्नाद, वही रस, अन्नाद में परिणित हो गया (पुस्तक से) परिणित हो करके चन्द्रमा की कान्ति में परिणित हो करके, समुद्र के माध्यम से, वही सूक्ष्म बन करके, बेटा! वह अन्नादि में वहीं तरंगित हो गया, जहाँ तरंगों को जाना था।

श्रद्धा में दान

तो मेरे प्यारे! विचार क्या, मैं यह विचार दे रहा हूँ कि यह जो दान है, इसकी बड़ी विशेषता मानी गई है। दानं ब्रह्मणे देखो, अपने विचारों को दान दे रहा है, अपने विचारों से संसार को ऊँचा बनाने में लगा हुआ है। तो विचार आता है, कि हमें दानी बनना चाहिए। याग में जहाँ संगतिकरण है, जहाँ देव पूजा है, वहाँ यह दान भी है। ऋषियों ने सबसे प्रथम श्रद्धा से इस दान को मापने का प्रयास किया है, श्रद्धा से हृदय, हृदय से ही मानो दक्षिणा, दानेषु कहलाती है। बेटा! आचार्यों ने उसका सम्बन्ध कहीं द्रव्य से माना है, कहीं यज्ञमान की त्रुटियों से माना है, जब यज्ञमान याग कर रहा है, वह द्रव्य का त्याग करता है जिसके द्वारा उसे प्रकाश अपने हृदय में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उस अग्नि में, विचार रूपी तरंगों में, कहीं त्रुटियां आ गई हैं। तो हे यज्ञमान! तू उसे पुरोहित को प्रदान कर दे। दान के रूप में प्रदान करता है, क्योंकि यज्ञ उस समय सफल होता है, जब यज्ञमान अपनी त्रुटियों को त्याग देता है, अपने में सुसज्जित हो जाता है और किसी भी प्रकार का उसमें दोषारोपण, किसी भी प्रकार की त्रुटि हो, जब तक वह उसे त्यागता नही, तक तक उसका याग सम्पन्न नही होता।

सृष्टि के प्रारम्भ से याग

यह विचार दर्शनों से प्राप्त होता है, दर्शन कहता है, इस विचार को और पुरोहित इतना स्वच्छ होना चाहिए, निष्कपट होना चाहिए, उसके हृदय में, द्रव्य की लोलुपतता नही

होनी चाहिए। वह जो उसे संस्कारों के बोध से प्राप्त होगा। उसे तो दक्षिणा में ले करके, यज्ञ के द्वारा भस्म करना है, जो उसमें त्रुटि रूप में विद्यमान है, जिससे उसकी अन्तरात्मा को निकृष्ट नही बनने देता है। इसीलिए याग की रचना सृष्टि के प्रारम्भ में हुई। यही रचना मानो ऋषि मुनियों के द्वारा, तपस्वियों के द्वारा, वेद में मन्त्र का देवता को ले करके, इसका निर्माण किया। मैं इस सम्बन्ध में विशेषता में नही जाऊंगा। विचार केवल यह है कि हमारा कि हम परमपिता परमात्मा की महती को विचारते हुए, और यज्ञमयी स्वरूप को जानते हुए, उसमें दान की महता को जाने। जिसका स्वरूप जानते हुए, उसमें दान की महता को जानें, जिसक उदगार हृदय ही इस संसार की पूंजी बना हुआ है। मानव के जीवन में विशिष्ठता की कुंजी बना हुआ है। जिससे उसमें रमण करता रहे। विचार मैं क्या दे रहा हूँ, कि मानव को जहाँ देवपूजा और संगतिकरण करना है, वहाँ उसे दान भी करना है, दान की प्रवृत्तियां से मानव महान बनता है। दान से ऊँचा बनता है, दान से मानव देवता बनता है, और देवता से महादेव बन जाता है। और वह मोक्ष को पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है। समय आता रहेगा, तो विचार देता रहूँगा। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है, कि अध्ययन करने से बहुत सी वस्तुओं को प्राप्त किया जाता है।

मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, हम अपने मानव जीवन को अध्ययन करें, और दान के ऊपर विचार करें, आज का विचार केवल यह, कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए, और यह जो परमपिता परमात्मा सर्वत्रता में निहित रहने वाला है। उसके ऊपर मनन और चिन्तन करना है, यह है बेटा! आज का वाक् समय मिलेगा तो अब शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। दिनांक 04 11 1988, स्थान श्री सहगल जी, 3 ई 31, लाजपत नगर, नई दिल्ली 110024।

१४ 25 01 1989 पुष्प 58 राष्ट्रवाद मानववाद और यौगिकवाद

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से,

जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परगतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं, और यह जो जगत है, यह मानो उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा है, उसका मानो एक वृत्त रूप कहा गया है। हमारे यहाँ, प्रत्येक वेदमन्त्रों में, उस परमपिता परमात्मा की महती और उसकी अनन्तता के ऊपर, सदैव विचार विनिमय किया जाता है। हमारे यहाँ ऋषि मुनि, परम्परागतों से बेटा! अन्वेषण और अनुसन्धान करते रहे हैं, एक एक वेदमन्त्र के ऊपर, उनका बड़ा अधिपथ्य रहा है और विचार विनिमय करने वाले, मानो उस परमपिता परमात्मा की महती और उसके ज्ञान और विज्ञानमयी स्वरूप में प्रायः उसमें रमण करते रहे हैं, और ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ते रहे हैं। आज का हमारा वेदमन्त्र, उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है, मानो जिसके ऊपर, हमारा वृतं ब्रह्मणां लोकां वायु सम्भव ब्रहा क्योंकि हमारे यहाँ जितना भी पाण्डितव रहा है, वह वेदमन्त्रों की मानो ध्वनियों में मानो ध्वनित होता रहा है। जिसके ऊपर, मानव बड़ी गम्भीरता से मानव अपने में मनन और अनुध्यासन करता रहा है।

राष्ट्रवाद और मानववाद

आओ मेरे प्यारे मैं आज तुम्हें साहित्य के उन पृष्ठों में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ हमारे यहाँ, राष्ट्रवाद और मानववाद और उनके ऊपर बेटा! विचार विनिमय होता रहा है। मुझे वह काल भलि भांति स्मरण आता रहता है, जब मुनिवरों! देखो, महर्षि कपिल मुनि के यहाँ, नाना ब्रह्मचारी अध्ययन करते रहते। और वह पातालपुरी में अपना वास करते, तो मेरे प्यारे! देखो, एक समय जय और विजय दोनों ही उनके शिष्य कहलाते थे, परन्तु अस्त्रों शस्त्रों की विद्या में वे पारायण थे, तो जय और विजय ने बेटा! देखो, अपने में अन्वेषण और अनुसन्धान करते रहें, और नाना प्रकार का जो ज्ञान और विज्ञान और अस्त्रों शस्त्रों में वो रत्त रहे हैं, और उनका विचार और मनन करने और क्रियातमकता में लाने के लिए, बड़ा अनूठा बड़ा एक अधिपथ्य रहा है, और वह अपने में ये विचारते

रहे हैं, कि हम मानो अपने में अध्ययनशील बनें, और एक एक परमाणु और अणु तरंगों के ऊपर हमारा अधिपथ्य होना चाहिए। तो मेरे प्यारे! देखो, जय और विजय दोनों ही यह महर्षि कपिल मुनि महाराज के विद्यालय में अध्ययन करते रहते थे मेरे प्यारे! देखो, वह कपिल मुनि महाराज, अपने में बड़े अनुभवी और वह मानो देखो, अश्वमेध याग के ऊपर, अपना विचार विनिमय करते रहते थे।

पातालपुरी में क्रान्ति

तो मुनिवरों! देखो, उसके ऊपर उनका बड़ा अधिपथ्य रहा। कि अश्वमेध याग में क्या क्या होना चाहिए, किस प्रकार का क्रियाकलाप होना चाहिए, उसके ऊपर बेटा! बड़ा अनुसन्धान करते रहे। आओ बेटा! देखो, आज मैं उस साहित्य में या आज तुम्हें विशेषता में नही ले जा रहा हूँ, तुम्हें एक वाक् ऐसा प्रगट करने जा रहा हूँ, जब बेटा! पाताल पुरी में एक मानो देखो, रक्तमयी क्रान्ति उत्पन्न हुई, और उस रक्तमयी क्रान्ति में, बेटा! राज्य और उनकी जो समाज थी वह अस्त व्यस्त हो गई। समाज बिखर गया। बेटा! समाज के प्राणी मानो देखो, प्रत्येक राष्ट्रों में जा पंहुचे, मेरे पुत्रों! देखो, एक नाग जाति एक नाग सम्प्रदाय मेरे प्यारे भारत की भूमि पर उनका वास तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने अपना वास किया, वह मानो देखो, यही परणित हुयी वृत्यं ब्रीहि कारणा सुताः मेरे प्यारे! देखो, हम ही में वह सम्मिलत हो गएं। और उनकी मिलानता, उनकी वृत्तिका मानो देखो, हम ही में परणित हो गएं। मेरे प्यारे! देखो, नाग जाति बहुत समय तक यहाँ, मेरे प्यारे! देखो, जब द्वापर का काल आया जब तक मुनिवरों! देखो, उसका वास होता रहा है। और द्वापर के काल में, जब पुनः से क्रान्ति आई, रक्तमयी क्रान्ति आई, तो मुनिवरों! देखो, कुछ इसी प्रकार नाग सम्प्रदाय के प्राणी, मानो पुनः अवस्तं महाभारत काल से पूर्व बेटा! इसमें वास कर गएं और मुनिवरों! देखो, एक कालीदह है, मानो एक स्थान नियुक्त किया, और उसी में वास करते रहते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, भगवान कृष्ण के काल में, मुनिवरों! देखो, उनका विलय देखो, वह अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात करने लगे। तो मेरे प्यारे! देखो, वह नाग सम्प्रदाय कालीदह एक

स्थान था। जो मुनिवरों! देखो, पर्वतों की आभ्यों में रमण करता रहता था, तो उसी में वह वास करते थे। तो मेरे प्यारे! देखो, भगवान कृष्ण ने जब विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात जब युवा हुए तो मुनिवरों! देखो, उनको उस सम्प्रदाय में उनको परणित किया। तो बेटा! मैं इस साहित्यिक चर्चाओं में तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ, मैं तुम्हें यह निर्णय देना चाहता हूँ, क्या यह सब प्राणी मानो किसी भी राष्ट्र के आ जाएं, चाहे वह पाताल पुरी से आ जाएं, चाहे मुनिवरों! देखो, मंगल मण्डल से आ जाएं, उनका सबका एक ही विलय होता रहा है। एक मानव समाज, एक ऐसी प्रतिभा है, जिस मानव समाज में मानव अपने में मानवीयता की दृष्टि से जब मनन करता है, तो वह ईश्वरीय और मानो देखो, वह यौगिकता में परणित हो जाते हैं।

मानव के तीन प्रकार

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा, कि हमारे यहाँ दो प्रकार की विचारधाराएं परम्परागतों से रही हैं बेटा! एक रूढ़ि होती है, एक यौगिक होती हैं। तो बेटा! देखो, रूढ़ि में पालन है, राष्ट्रवाद है, और रूढ़ि में ही मेरे प्यारे! देखो, राह कहलाया जाता है, और एक यौगिक सम्प्रदाय एक यौगिक होता है, यौगिक उसे कहते हैं, जिसका आत्मा से समन्वय होता है। आत्मा से जिसका सम्बन्ध होता है, और वह आत्म चिन्तन करने के पश्चात बेटा! देखो, वह अपने में यौगिकवाद में ले जाते हैं। यौगिकवाद में आध्यात्मिकवाद है, मानव दर्शन है, और वैदिकता की मानो प्रतिभा उसमें निहित रहती है। तो विचार आता रहता है, आज हम बेटा! देखो, रूढ़िवाद को त्याग करके यौगिकवाद में रमण करते चले जाएं। क्योंकि यौगिकवाद एक मानव तत कहलाता है और वह मानवीयता से गुंथा होता है। तो इसीलिए वह मेरे पुत्रों! देखो, रूढ़ि कहलाता है। हमारे यहाँ भगवान कृष्ण के जीवन में, केवल देखो, रूढ़ि नही थी, उनके यहाँ एक यौगिकवाद था, जितना भी उनका क्रियाकलाप रहा है। वह सर्वत्र एक क्रियाकलाप उनका मानो देखो, रूढ़िवाद में न रह करके वह यौगिकवाद में परणित रहा है। हमारे यहाँ दो प्रकार के मानो त्रि वर्णानं प्रमाणां ब्रहे, यह तीन प्रकार के प्राणी होते हैं बेटा!

एक वह प्राणी होता है, जो संसार में हारा हुआ दृष्टिपात आता है। एक प्राणी वह होता है जो मेरे प्यारे! देखो, प्रभु के राष्ट्र में अपने में यह स्वीकार करता है, क्या मुझे मानव रहना है, और मानवीय जगत में मैं मानव दर्शन को अपने में लाता हुआ, परमात्मा को प्राप्त होना चाहता हूँ। जैसा मैं परमात्मा की सृष्टि में आया हूँ, वैसा ही मेरा देखो, यह जीवन चला जाएं। और तीसरा प्राणी वह होता है जो अति मानव होता है। अति मानव उसे कहते हैं, जो यौगिकवादी होता है। वह योग में अपनी आभा अपना विचार अपनी मानो देखो, तरंगों को उसमें तरंगित कर देता है। तो विचार आता रहता है बेटा! हारा हुआ कौन सा प्राणी है? जो मानो परमात्मा के राष्ट्र में आ करके, अपने को उग्रवादी बना देता है, उग्रवाद भी हमारे यहाँ दो प्रकार के माने गएं हैं, एक उग्रवादी वह होता है, जो मानो देखो, निम्न श्रेणी को होता है, वह निम्न श्रेणी का ऐसा होता है कि वह प्राणी प्राणी के नष्ट करने के लिए तत्पर है, अपने स्वार्थ के लिए तो मानो देखो, अपने शरीरों में अपने भुजों से जो मानव क्रियात्मक कर्म नही कर पा रहा है। वह केवल दूसरों के भुजों के द्रव्यों को अथवा उसे मानो अपने में स्वार्थवाद की परता में तत्पर हो जाता है। तो वह प्राणी हारा हुआ प्रतीत होता है, वह हारा हुआ है, वह परमात्मा की सृष्टि में एक मानव, मानव को नष्ट कर रहा है, उसका आयु भी सूक्ष्म बन रहा है, आयु में उसके लिए गति नही हो रही है। वह केवल देखो, निम्नता में परणित हो रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह मानव हारा हुआ प्रतीत होता है। वह हारा हुआ है जो मुनिवरों! देखो, अपने मानवतव को ऊँचा नही बना सकता, वह उग्रवादी, एक प्राणी प्राणी को नष्ट कर रहा है। अपने द्रव्य की लोलुपतता से, द्रव्य की आभा में वह अपने को नष्ट कर रहा है, तो बेटा! वह प्राणी हारा हुआ दृष्टिपात आता है।

मेरे प्यारे! देखो, दूसरा जो प्राणी है, वह मंगलं ब्रह्मा वह परमात्मा की सृष्टि में आया है, और सृष्टि में आ करके मुनिवरों! देखो, वह अपने में अपनेपन का भान कर रहा है, योग साधना में क्या, मेरे प्यारे! देखो, प्राणायाम प्राण सत्ता को अपने में धारण कर रहा है, मेरे प्यारे! देखो, वह मानव है, वह मानव मानव कहलाता है, जो बेटा! देखो, राष्ट्रीय स्तर पर अपने जीवन को ऊँचा बना रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, राष्ट्र में मानो सत्यता को

अपने में धारणा कर रहा है, और वह राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, अपने में उसको ले जाता है। मेरे प्यारे! वह परमात्मा के राष्ट्र में, अपने को भी स्वीकार करता है, और स्वीकार करके बेटा! देखो, अपने में अपनेपन का भान करता हुआ, मुनिवरों! देखो, जैसा प्रभु के राष्ट्र में वह आया है, वैसा ही प्रभु के राष्ट्र में, उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। तो वह बेटा! मानव कहलाता है, वह मननशील है, और मनन करता हुआ, अपनें में ये स्वीकार कर रहा है कि मैं परमात्मा के राष्ट्र में आया हूँ, मेरा कर्तव्य है, कि मैं अपने भुजों से अपने से क्रियाकलापों में परणित हो जाऊं, मेरे शरीर में, मेरे जो पिता ने परमपिता परमात्मा ने जो मुझे प्राण दिए हैं, मानो दस प्राण हैं इन्हीं प्राणों के आश्रित हो करके, मुझे अपने जीवन को व्यतीत करना है। अग्नाधानं ब्रह्मा गुरुतव वह अग्नि का ध्यान करता है, वह आपो में रमण करता हुआ, वह गुरूतव में मुनिवरों! देखो, अपने में वास करता हुआ, वह स्वीकार कर रहा है, कि मैं परमात्मा के राष्ट्र में विद्यमान हूँ, और मेरा यह कर्तव्य है कि मैं परमपिता परमात्मा की महती और अनुपमता अपने को जान करके, इस सागर से पार हो जाऊं, तो बेटा! देखो, वह परमात्मा को प्राप्त होना चाहता है। मेरे प्यारे! देखो, वह मानव कहलाता है और मानवीय दर्शन में दर्शित हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह मानव जिसको हम अति मानव कहते हैं। अति मानसतव कहते हैं। वह अति मानव कैसा है मेरे पुत्रों! देखो, जो ऊर्ध्वा में गमन करता है, अपनी मानो देखो, दर्शनों की उग्र क्रिया बनाता है, मेरे पुत्रों! देखो, प्राण सत्ता के द्वारा प्राण में रत्त होता हुआ, वह अपने को प्राण में परणित कर देता है। मेरे पुत्रों! देखो, वह प्राण को, जब अपान में परणित कर देता है, तो मानो देखो, वह यौगिकवाद में परणित हो जाता है। वह अपने में यह स्वीकार कर रहा है, क्या यह प्राण सत्ता तो सर्वत्रता में विद्यमान है, ये प्राण में मानो देखो, वायु में, पृथ्वी में, अग्नि में, मेरे पुत्रों! देखो, यह आपो ज्योति सबमें यह प्राण सत्ता है। यह प्राण के कारण ही मानो देखो, इस ब्रह्माण्ड का पिण्ड बना हुआ है, इस प्राण के कारण ही मानो देखो, यह गतिशील हो रहा है, और यह गतिशील जो प्राणी मानो देखो, जो जगत हो रहा है, इस गतिशील को विचारना है। मानो देखो, इसकी आभा में रत्त होना है, और परमात्मा के राष्ट्र को

मानो चिन्तन में लाना है, जिससे मुनिवरों! देखो, हम अति मानव बन सकें, और अति मानव बन करके हमारी उग्र क्रिया बन जाएं। हमारे यहाँ आध्यात्मिक जो उग्र क्रिया है, वह मुनिवरों! देखो, अति मानवतव में परणित हो जाती है। और वह यौगिकता कहलाती है।
मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहता है, जब मैं देखो, नाना ऋषि मुनियों की चर्चाए मुझे स्मरण आने लगती हैं। मेरे पुत्रों! देखो, बड़ा संसार कहीं आश्चर्य में दृष्टिपात आने लगता है, मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय बेटा! देखो, महर्षि विभाण्डक मुनि के जो पिता थे रोहणी वृत्तिका मेरे प्यारे! देखो, रोहणी वृत्तिका मुनि अपने आसन पर विद्यमान थे। अपने में यह विचारने लगे वेद में एक मन्त्र आया था और वेद का यह मन्त्र कह रहा था आस श्वंजनं ब्रह्मे यौगिक असुतां ब्रह्म लोकाः वेद की आख्यिका कह रही है, वृत्तिका मुनि ने यह विचारा कि मुझे मानो देखो, अति मानव और मुझे अति मानव बन करके और मेरा जीवन यौगिकवाद में परणित हो जाएं। और यौगिक कैसे बनेंगें। मेरे प्यारे! देखो, प्राण सत्ता को जानने के पश्चात, हमारे शरीर में बेटा! यह दस प्राण कहलाते हैं। एक प्राण का नाम है, वह मुनिवरों! देखो, जिसको हम नाग कहते हैं। यह जो नाग प्राण है, इस नाग प्राण के ऊपर मुनिवरों! देखो, त्रेता के काल में मेरे प्यारे! वृत्तिका मुनि ने और मुनिवरों! देखो, रावण के पुत्र मेघनाथ ने, दोनों ने नाग प्राण के ऊपर बड़ा अध्ययन किया था। मानो देखो, उनका इतना अधिपथ्य रहा, नाग प्राण के ऊपर, क्या मुनिवरों! देखो, नाग प्राण कहते किसे हैं। जब मानव को अति क्रोध आता है, जब क्रोध मानो देखो, अति आता है। तो नाग प्राण का ऊर्ध्वा मुख हो जाता है। ऊर्ध्वा मुख होने से जो जाना है, जो मानव के अन्तःशरीर में जो अमृत बह रहा है। उस क्रोध के कारण अति क्रोध के कारण आवेश के कारण मेरे प्यारे! देखो, वह नाग प्राण का ऊर्ध्वा मुख हो करके वह मुनिवरों! देखो, विष को उगलने लगता है। वह विष को पालन ब्रहे विष को मुनिवरों! देखो, अवृत्ति कर देता है और मुनिवरों! देखो, जो अमृत बह रहा है उसको वह भस्म कर देता है। वह अमृत को भस्म करना, और नाग प्राण मुनिवरों! देखो, वह अमृत को भस्म करना, और देखो, अपने विष को उगलना

उसको मुनिवरों! देखो, मानव में एक विष धरता आ जाती है एक विष उत्पन्न हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, राजा रावण के पुत्र मेघनाथ ने भी, मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मणं ब्रव्हा कृतं मानो देखो, उसी प्राण उसी नाग प्राण के आश्रित हो करके उन्होंने इन्द्र को विजय किया। और वह ही नाग प्राण मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने जब राम और रावण का संग्राम हुआ था तो उन्होंने बेटा! देखो, लक्ष्मण के ऊपर भी उसका प्रहार किया, तो मानो देखो, यह नाग प्राण हमारे यहाँ एक बड़ा विशिष्ठ रहा है। हमारे यहाँ विद्याएं परम्परागतों से रही हैं, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में बेटा! इन विद्याओं का चलन और इन विद्याओं के ऊपर बड़ा अधिपथ्य होता रहता है। मानो देखो, मुझे स्मरण है, वृत्तिका मुनि महाराज ने बेटा! इसके ऊपर बड़ा अध्ययन किया और बड़ा मानव देखो, प्राण और अपान को दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया। मेरे प्यारे! देखो, प्राण को अपान में और अपान को व्यान में व्यान को मुनिवरों! देखो, समान में और समान को मुनिवरों! देखो, उदान में परणित करते हुए, एक सूत्र में परणित हो करके बेटा! इसके पश्चात नाग प्राण की विशिष्ठता मानी गई है। तो आज बेटा! मैं इस सम्बन्ध में विशेषता प्रगट करने नही आया हूँ। विचार क्या तुम्हें यह प्रगट करने के लिए आया हूँ, क्या मुनिवरों! देखो, वह जो वृत्तिका मुनि की चर्चा हो रही थी, वह मुनिवरों! बेटा! देखो, यौगिकवादी थे और यौगिकवादी जो प्राणी होता है, वह प्राण को सर्वत्रता में दृष्टिपात करता है। मानव मानव को प्राण में दृष्टिपात करता है। और वही प्राण को मेरे प्यारे! मनस्तव के साथ गमन कराता हुआ, मेरे पुत्रों! देखो, वह किसी भी लोक लोकान्तरों में परणित हो जाऐ। परन्तु देखो, वहाँ भी उन्हीं की प्रतिभा निहित रहती है। आभा अप्रा आभा उदय हो जाती है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या मुनिवरों! मैं विचार यह दे रहा था, कि वह मानव अति मानव बनता है, जो अति मानव बेटा! प्राणों के ऊपर अध्ययन करता है, प्राणों को मेरे प्यारे! देखो, अति मानवता में प्रवेश करा देता है, तो वह मानव, अति मानव, वह मुनिवरों! देखो, ब्रह्मणा वह रूढ़ि को त्याग करके वह मेरे प्यारे! यौगिकवाद में परणित होता हुआ, और यौगिकवाद में रत्त होता हुआ मुनिवरों! देखो, अपने को इस संसार में वह यौगिकवादी स्वीकार करके बेटा!

अति मानवता में प्रवेश कर जाता है।
तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या मैं बेटा! तुम्हें उच्चारण कर रहा था, मुनिवरों! देखो, सबसे प्रथम वह मानव है, जो हारा हुआ दृष्टिपात करता है, जैसे बेटा! देखो, मैंने तुम्हें कई कालों में तुम्हें वर्णन कराया, जैसे मुनिवरों! देखो, जो मानव अपनी मानव दूषित व्यवहारों में परणित हो जाता है, वह अपने को हारा हुआ, स्वीकार करता रहता है, जो स्वार्थपरता में रत्त होता है, मेरे प्यारे! जो रूढ़ियों से भी अति रूढ़ि में वह मेरे प्यारे! देखो, विनाश के मार्ग पर चला जाता है। राजा अपने राष्ट्र में, राष्ट्रीयता को नष्ट कर देता है। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, मुनिवरों! देखो, जब अति स्वार्थता में परणित हो जाता है। मेरे प्यारे! उसकी मानवीयता नष्ट हो जाती है उग्रता आ जाती है। वह मेरे प्यारे! मानव मानव को नष्ट करने लगता है।
मेरे प्यारे! देखो, महाभारत काल का स्मरण, मुझे आता रहता है महाभारत के काल में बेटा! दुर्योधन अति मानव न बन करके उग्रवादी बन गया, और उग्रवादी बन करके, स्वार्थपरता के कारण, मेरे प्यारे! देखो, महाभारत का काल, ऐसे मानो कृतियों में रत्त हो गया, कि शान्त हो गया। मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है, अति मानव को स्वार्थपरता ही मुनिवरों! देखो, उग्रवादी बनाती है, विनाश के मार्ग पर ले जाती है, और मानव शान्त चित्त रहता है, मेरे प्यारे! देखो, वह मानव बन करके प्रभु को प्राप्त होता है, और मुनिवरों! देखो, अति जो मानव है अति मानसतव है, वह मेरे प्यारे! देखो, प्राण और अपान और मन को एकाग्र करता हुआ, वह यौगिक बन करके, वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है, वह परमात्मा की आभा में परणित हो जाता है। मैंने इससे पूर्व काल में, बेटा! तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था, कि हम अपने में बेटा! देखो, अति मानव बन करके, बेटा! याज्ञिक बनें। याज्ञिक बेटा! अति मानव बन जाता है, जब बेटा! देखो, बाह्य जगत के, याग में परणित हो करके बेटा! अग्न्याधान करता है। वही मुनिवरों! देखो, जब प्राण की पंचाग्नि को जागरूक कर देता है, और पंचाग्नि को जब प्रदीप्त कर देता है तो मेरे प्यारे! देखो, वह जो मनस्तव इन्द्रियों का साकल्य है, वह उसमें प्रवेश करके बेटा! वह यौगिक बन जाता है। मेरे प्यारे! वह अति योगी बन जाता है अति

मानव बन जाता है।

तो विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, वह जहाँ विद्यमान होता है, वहीं सुगन्धि आने लगती है, बेटा! मुझे वह काल ऋषियों का जीवन स्मरण आता रहता है, जहाँ बेटा! देखो, महर्षि कागभुषुण्ड जी विद्यमान होते थे, वहीं बेटा! देखो, सुगन्ध आने लगती थी वह सुगन्ध में परिणित हो जाते थे, तो मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार जब मानव अपने मानवीयता को वह यौगिकवाद में ले जाता है। तो मुनिवरों! देखो, वह अति मानव बन करके जीवन से सुगन्धि आने लगती है। और वे परमपिता परमात्मा की महती और अनुपमता को प्राप्त करने लगता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ आज मैं तुम्हें बेटा! यह उच्चारण कर रहा था, क्या मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार की क्रान्ति राष्ट्रों में होती हैं। मेरे प्यारे! देखो, महात्मा कपिल मुनि की चर्चा कर रहा था, कपिल मुनि महाराज बेटा! देखो, उनके यहाँ जय और विजय दो ब्रह्मचारी थे, जो अणु और परमाणु की विद्या को जानते थे। मेरे प्यारे! देखो, दोनों को ब्रहे मेरे प्यारे! पातालपुरी में एक क्रान्ति हुई, जिस क्रान्ति में, बेटा! देखो, मानव इस मानव भूमि पर आए, और वह इसी में रत्त हो गएं, एक क्रान्ति बेटा! देखो, महाभारत काल से पूर्व हुई थी, जो मेरे पुत्रों! देखो, यहाँ ब्रह्मण देखो, यहाँ जब पाण्डु राजा ब्रह्मणे मानो देखो, उन्होंने अपने राष्ट्र को उन्नत किया, तो वह देखो, पातालपुरी में पंहुचें और पाताल पुरी में रक्त भरी क्रान्ति उस काल में भी आई, परन्तु देखो, वहाँ से नाग जाति नाग एक सम्प्रदाय था वह मुनिवरों! देखो, उस भूमि पर पुनः परिणित हुए देखो, एक हिमालय की आभा में एक कालीदह एक स्थली थी जो मुनिवरों! देखो, वहाँ उनका वास रहता था ओर वह मुनिवरों! देखो, अपने को ऐसा क्रान्ति में, अपने को रत्त कराते रहते थे। जो भगवान कृष्ण उनको बेटा! अपने में रत्त कराया और मुनिवरों! देखो, अपने में मिलान की चर्चा, यह चर्चाएं कल बेटा! शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा।

आज का विचार विनिमय क्या, कि हम परमपिता परमात्मा की महती और अनुपमता के ऊपर, विचार विनिमय करते चले जाएं। और हम विचारों में रत्त होते चले जाएं,

मानव देखो, उग्रवादी स्वार्थपरता में न जा करके, वह मानव बने, या अति मानव बने यौगिकवाद में अपने को ले जाएं। और यौगिकवाद बेटा! देखो, मानव को ऊँचा बनाता है। यौगिकवाद में जाने वाला प्राणी अपने में योगेश्वर कहलाता है, वह अति मानव कहलाता है। वे परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। ये है आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं। वे परमपिता परमात्मा महान है, पवित्र हैं, वह मानो देखो, इस संसार को देखो, एक एक आभा में निहित रहता है। तो हम उस परमपिता परमात्मा की महती अनन्तता के ऊपर विचार विनिमय करते बेटा! सागर से पार हो जाएं, हम इस मानो देखो, अपनी प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना करके और वह मुनिवरों! देखो, हम याज्ञिक बनते चले जाएं, तो बेटा! देखो, हम अपने आत्म तत्त्व को जानने वाले, प्राण और अपान को जान करके बेटा! देखा अपने में, इस विद्या को धारण करते चले जाएं, इस विद्या का विश्लेषण और विचार हम कल प्रगट करेंगें। आज का यह विचार, अब समाप्त होने जा रहा है। आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर विचार विनिमय करते हुए सागर से पार हो जाएं। बेटा! हम अपने में अपनेपन का भान करते चले जाएं। अपने में अपने को दृष्टिपात करने से बेटा! यौगिकवाद आता है। यह यौगिकवाद की चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगें, आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् देवाः आभ्यां रुद्रा रसो मां रेवाः ओ३म् यशश्वां रथं आपा रेवं गायन्त्वा माहं आपाहम्। ओ३म् यज श्वंजनाः मां रेवं दधि वाचन्नमाः रथप्रायशो मां रथाः अच्छा भगवन्! आज्ञा।

१५ 18 03 1989 ब्राह्मण और अश्व द्वारा राष्ट्र उत्थान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वाणी में, परमपिता परमात्मा की

महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र, मानो उसी का गीतां ब्रह्मे गान गा रहा है और जिस गान को श्रवण करने के पश्चात, मानव का अन्तर्हृदय पवित्रतव में रमण करता रहता है।

तो आओ, मेरे प्यारे! आज हम उस अपने देव का गुणगान गाते हुए, और वेद की आभा में सदैव रत्त रहते रहें, ऐसा हमारा वेद का मन्त्र कहता है, और उद्गीत गाने वाला, यही उद्गीत गा रहा है। मानो बाल्यकाल से वृद्धकाल आ जाता है, जहाँ से उसका जीवन प्रारम्भ हुआ हैं, उस जीवन को वही आ जाना है, जहाँ से वह प्रारम्भ हुआ है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव को यह विचारना है क्या जिस भी काल में हम परमपिता परमात्मा की महती में रत्त हों, मानो उसी काल में हम ये अपने में विचार विनिमय करते चले जाएं, कि हमारा जीवन तो जहाँ से प्रारम्भ हुआ वही आ जाना है। और उसी में मध्य दिवस आ जाता है, उसी में मानो देखो, उसका मध्य दिवस, और त्रिकाल में प्रवेश कर जाता है। और वही अन्त में बेटा! जहां प्रारम्भ हुआ, जो प्रवृत्ति उसकी, बाल्यकाल में रही है, वही प्रवृत्ति बेटा! अन्त में वृद्धकाल में बन जाती हैं। वैसी ही प्रवृत्ति बन जाती है। तो उस प्रवृत्ति को हमें अपने में धारण करना चाहिए, क्या जहाँ से हमारे जीवन का प्रारम्भ हुआ है, वहीं हमारा जीवन आ जाना है, तो इसके ऊपर हम सदैव विचारते रहें।

परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ कह रहा है, प्रेरित कर रहा है मानो याग कहता है, सम्भव ब्रह्मे लोकाः मानो वह जो ब्रह्म है, जो सर्वत्र जगत का नेतृतव करने वाला है, हम उस परमतिपा परमात्मा की महती और उसका ज्ञान और उसका विज्ञान उसकी आभा में सदैव रत्त रहे, और अपने को प्रकाश में ले जाएं, अन्धकार को हमें त्याग देना चाहिए। परन्तु जब हृदय आलिंगन करते हैं, तो हृदय में ऐसी ऐसी तरंगों का प्रादुर्भाव होता है, जिन तरंगों के ऊपर मानव बेटा! गमन करता रहता है जैसे सूर्य मण्डल है, उसकी किरणों के साथ में, योगेश्वर गमन करता है।

तो आज मैं विशेष चर्चा नही प्रगट करूंगा, आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है, और वेदमन्त्र कहता है कि अश्वान ब्रह्मणे देवत्ताः क्या ब्राह्मण अश्व दोनों मानो

मिलन करते हुए मानव और समाज को ऊँचा बनायें, और आध्यात्मिकवाद को पनपाने वाले क्योंकि आध्यात्मिकवाद ही पनप जाता है तो मानवीयतव की आभा में मानव सदैव रत्त रहता है। तो इसीलिए आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं। मेरे प्यारे! देखो, आज का वेद का मन्त्र, हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है, और वह प्रेरणा यह कि हम याज्ञिक बनें, और याज्ञिक बन करके हम सूर्य की किरणों के साथ, अपनी सुगन्ध को मानो अपने चित्र को और अपने क्रियाकलापों को मुनिवरों! देखो, वह द्यौ में प्रवेश कराते चले जाएं और द्यौ में प्रवेश हो करके अन्तिम आभा में रमण कर जाते हैं। तो मानो ऐसा हमारा मन्तव्य रहा है हम परमपिता परमात्मा को जड़ और चेतनता का नेतृतव को करने वाला स्वीकार करते हैं। तो आओ, मुनिवरों! देखो, मैं विशेष चर्चा तो प्रगट नही करूंगा आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् दिव्यां रथं मन्थाः मां ऋषि वरुणा दधि मन्था। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! और भद्र समाज! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे मानो दो ही शब्दों में वे गागर और सागर की आभा में हमें उड़ान उड़ा रहे थे। क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, विचित्र उड़ाने उड़ता रहा है। अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, आध्यात्मिकवाद में जाने के लिए और मानवीय दर्शनों की आभा में रत्त होने के लिए, हमें प्रेरित किया है और यह कहा है कि मानव को मानवीय दर्शन में रत्त हो जाना चाहिए। मानो देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कई समय से अश्वमेध याग की चर्चा कर रहे थे। और राष्ट्रवाद पर, कर्तव्यवाद पर इनकी कितनी गम्भीर विचारधारा रही है। आज मैं उन विचारों को पुनः से तो उद्गीत रूप में नही गाना चाहूँगा, क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव का जो विचार है वह बड़ा गम्भीरता में मानो निहित रहा है और ये विचारता रहा है विचार इनका सदैव यह रहा है कि संसार ब्रह्मवेत्ता बनें प्रत्येक मानव प्राणी मात्र ब्रह्मवेत्ता हो और इनके विचारों में सदैव ये भी रहा है क्या देखा वनचर हो सिंहराज मृगराज सब ब्रह्मवेत्ता की आभा में सदैव

रमण करते हों।
परन्तु हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने तो इस सम्बन्ध में कई कालों में बहुत सी वार्त्ताएं प्रगट कराई, और बहुत से विचार मानो आपके समीप लाने का प्रयास किया हमारे यहां अश्वेमध याग की चर्चाएं बड़ी विशुद्ध रूप से मानी गई हैं मानो देखो, पातालं ब्रहे हमारे यहाँ यह हमने स्वीकार किया है, और साहित्यकार कहता है क्या राजा सगर तो अयोध्या का राष्ट्रवेत्ता था और महात्मा कपिल मुनि महाराज महर्षि, वे पातालपुरी के मानो देखो, वासी थे। वह पाताल पुरी में वास करते थे महात्मा कपिल मुनि महाराज बुद्धिमान एकोकीचरण रहा है संसार में, आज जब मैं यह जब विचारता रहता हूँ कि आधुनिक काल के राष्ट्रवेत्ता शिक्षा प्रणाली में क्या विचारते हैं? तो मानो देखो, इनका विचार ही नहीं है जब विचार नही है यह विचारते कि महात्मा कपिल और गौतम दोनों पातालपुरी के वासी थे। और पातालपुरी में उनका विद्यालय उनकी अनुसन्धान शालाएं मानो देखो, वह अपने में राजा सगर से उन्हें कितनी प्रीति रही है, परन्तु देखो, वह कितने अपने ज्ञान में विज्ञान में कितने विस्तृत रहे हैं।

देवभाषा

तो विचार मैं यह देना चाहता हूँ क्या देखो, राजा सगर अयोध्या के राजा थे और देखो, वह पातालपुरी के थे, परन्तु देखो, याग उन्होंने किया। तो जहाँ देखो, आज हम यह उच्चारण करते रहते हैं कि उनकी भाषा संस्कृत और देखो, देव भाषा से भिन्न है, क्योंकि हमारे यहाँ वेद की जो भाषा है वह देव भाषा कहलाई जाती है। और जो संग्रह की हुई मानो मातृ भाषा है वह संस्कृत ही कहलाई गई विचार आता रहता है, उसी से देवनागरी का जन्म होता है। मानो देखो, जैसा वह है वैसा उच्चारण किया जाता है तो यह उसकी महानता कहलाती है। मानो देखो, वेद देवभाषा में हैं जो मानो ब्रह्मणे जैसे बाल्य माता के गर्भ से जन्म लेता है और वह इस संसार में आते ही वह अपनी वाणी से कुछ कहता है या रूदन मचाता है या रुदनों में रत्त हो जाता है तो उसका मैं इस प्रकार निर्णय देता रहता हूँ क्या वह जो बाल्य है, जो माता के गर्भस्थल से उत्पन्न होते

ही मानो देखो, उपराम देखो, संसार में आते ही वह रुदन करता है और वह व्याकुल हो जाता है उसके इसी प्रकार अमृतं देखो, देवां ब्रव्हे जब वह व्याकुल होता है, तो व्याकुलता को न माता ही जानती है, और न पितर ही जानता है, न आचार्य जानता है, उस भाषा का नाम जो उद्गीत रूप में गा रहा है, उसको देवं ब्रह्मणा देव भाषा कहा जाता है। वह देव भाषा के रूप में परणित होती है, मानो देखो, इसी प्रकार हम देवतव को प्राप्त होते हुए, पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा है। इनकी वर्णन शैली बड़ी विचित्र रही है।

चरित्र में राष्ट्रोत्थान

आज मैं इनकी प्रशंसा नही कर रहा हूँ, विचार केवल यह देना चाहता हूँ कि इनके उदगार कितने भव्य और विचित्र हैं आज जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि वह उच्चारण क्या करते हैं जब मैं नाना प्रकार की रूढ़ियों में परणित होता हूँ, तो वे रूढ़ियाँ भी राष्ट्रवाद के माध्यम से रूढ़ियों का निकास होता है, एक समय देखो, महर्षि व्यास मुनि से यह प्रश्न किया गया, क्या हमारा यह हस्तिनापुर कैसे ऊँचा बनेगा? तो उस समय महात्मा व्यास ने कहा था क्या बिना चरित्र के और देवतव को जाने बिना देखो, हम अपने राष्ट्र को देखो, उन्नत नही कर सकते। हमारे यहाँ जब तक देवतव नही आयेगा, एक दूसरे में मान प्रतिष्ठा की आभा बनाने वाले समाज नही रहेंगें, तो यह समाज मानो देवतव को प्राप्त हो करके, वह ऊर्ध्वा में गमन करता रहेगा। ये महर्षि वेद व्यास ने वर्णन किया था।

परन्तु देखो, आज मैं इस सम्बन्ध में न चर्चा देता हुआ, केवल यह कि हम अपने जीवन को एक क्रिया में लाना चाहते हैं, जब क्रिया में लाना चाहते हैं तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आपने बहुत पुरातन काल में बहुत सी वार्त्ताएं प्रगट कराई परन्तु देखो, परन्तु आधुनिक यह जो काल चल रहा है, जो वर्तमान का काल चल रहा है मेरा एक निश्चय हो गया है, क्या महाभारत काल के पश्चात देखो, विज्ञान लुप्त हो गया। और विज्ञान जब लुप्त हो गया तो मानो मैनें अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि देखो, जहाँ यह हमारी

आकाशवाणी जा रही है इस स्थली पर विद्यमान हो करके देखो, महाराजा भीम, घटोत्कच्छ और वेद व्यास की देखो, उनकी आज्ञा पा करके उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। जिस यन्त्र में वह अन्तरिक्ष में यन्त्र को निर्धारित कर दिया था, और यह यन्त्र देखो, उन्होंने अन्तरिक्ष में से अपने में लाने का प्रयास किया, वह आया, और यहाँ उन्होंने यहाँ से स्थली त्याग करके, समुद्रों के तट से, इस यान को वायुमण्डल में प्रवेश कर दिया और उस मानो देखो, यन्त्र की जो आयु है, वह लाखों वर्षों का है और समुद्र पर छाया ऐसी आती है, उस यन्त्र की इतना शक्तिशाली, इतनी आकर्षण शक्ति हैं उसमें क्या, जब उसकी छाया के नीचे कोई भी समुद्र में यन्त्र में या प्राणी चला जाता है, वह भस्माभूत हो जाता है। तो मानो देखो, वर्तमान का जो विज्ञानवेत्ता है, वह इस आभा में, प्रतियों में लगा हुआ है, वह मानो यह जानने में लगा हुआ है, कि यह क्या है? कोई उसे देव कहता है कोई उसे मानो देखो, छाया कह रहा है। परन्तु वैज्ञानिक आधुनिक काल का उसे जान नही पा रहा है, और वह यन्त्र इस स्थली पर मानो देखो, हरनन्दी के तट पर विद्यमान हो करके यह जो मानं ब्रहे मानो देखो, यह जो इसके तट पर विराजमान हो करके यन्त्र का निर्माण किया था और समुद्र के तट से उसे अन्तरिक्ष में स्थिर कर दिया था और वह देखो, उसका आयु लाखों वर्ष का आयु है यन्त्र का देखो, वह आधुनिक काल का विज्ञान, कितना अधूरेपन मे मुझे दृष्टिपात आ रहा हैं।

जब मैं यह विचारता रहता हूँ क्या आधुनिक काल का विज्ञान क्या, कह रहा है? परन्तु विज्ञान होते आधुनिक काल का जो राष्ट्रवाद है, वह सब चिन्तित है, एक चिन्तन कर रहा है, अशुद्ध चिन्तन कर रहा है, और वह अनुभव कर रहा है कि यह समाज कैसे ऊँचा बनेगा? प्रत्येक राष्ट्र विचार रहा है। क्योंकि वायुमण्डल में दूषित वायुमण्डल हो गया है, देखो, नाना खनिजों को वाहन के द्वारा, अन्तरिक्ष में प्रवेश कर दिया गया है, उससे समाज जब श्वास लेता है, तो वह दूषितपना है उससे विचारों में विडम्बनित हो

जाता है।

विज्ञान से रूढियां

परन्तु जब मैं यह विचारता रहता हूँ, कि हे मेरे पूज्यपाद मैंने आपको कई काल में यह वर्णन कराया है, भगवन! परन्तु आज भी वह काल और वह विचार मुझे स्मरण आ रहा है मानो देखो, जब भौतिक विज्ञान अपने में पनपने लगता है, अपने में वृत्तियों में रत्त हो जाता है, और मानो देखो, उस विज्ञान से रूढ़ियाँ नष्ट नही होती, ईश्वर के नाम की रूढ़ियाँ नष्ट नही होती, तो वह विज्ञान अधूरेपन में व्यक्त होता रहता है। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा है कि आधुनिक काल के राष्ट्रवेत्ता यह कहते हैं क्या धर्म और राज सभा वह जो नीतियां है वह भिन्न हैं। परन्तु चलो मैं यह सब स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि धर्म किसे कहते हैं? जिस धर्म को तुम राज्यों से भिन्न करना चाहते हो, वह कौन सा धर्म है, एक मानो क्षत्रिय है, वह संग्राम करने के लिए तत्पर है, और वह संग्राम कर रहा है, क्या वह अपने कर्तव्य का पालन नही कर रहा है और जब कर्तव्य का पालन कर रहा है तो उसको धर्म नही कह सकते, वही तो धर्म है। जो कर्तव्यवाद का पालन है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से ये विचारता रहता हूँ कि प्रत्येक मानव के हृदय में जब मानव से वार्त्ता प्रगट करता है। एक ही उसकी मुद्रणा देखो, उसका मग्न होना है, एक सा ही देखो, कोई भी विचारधारा का प्राणी हो, मानो कोई देखो, रूढ़िवाद में पनपने वाला हो, उसकी बहुत से ईश्वरीय जो विधान है, वे मानो देखो, सर्वत्र व्याप रहता है, चाहे वह इस पृथ्वी मण्डल का प्राणी हो, चाहे वह मंगल का प्राणी हो, चाहे वह देखो, बुध इत्यादियों में रमण करने वाला प्राणी क्यों न हो। परन्तु जो वह ईश्वरीय नियमावाली है, वह सर्वत्र के लिए एक ही तुल्य मानी गई है हमारे यहाँ जब धर्म को, राज सभाओं से भिन्न कर दिया जाता है तो राष्ट्रवाद ही कुछ नही रहता, जब कर्तव्यवाद नही रहेगा।

अज्ञान से रूढ़ियां

तो मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा था क्या देखो, मेरे

पूज्यपाद गुरुदेव मनु जी की चर्चा करते हैं मेरे पूज्यपाद राजा सगर की चर्चा करते हैं, बहुत से वंशलजों की चर्चाएं करते हैं परन्तु जहाँ हिंसा नही, जिस पातालपुरी की मैं चर्चा कर रहा हूँ जिस पातालपुरी से भाषा का एक नृत्य सा ही चल रहा है मानो देखो, वहाँ महर्षि कपिल जी ने विवेक के ऊपर अध्ययन करके नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया है और उन्हीं यन्त्रों के द्वारा देखो, विज्ञानवेत्ता कहलाए। परन्तु जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह आज्ञा पाता रहता हूँ, कि प्रभु! मैं अपने उदगार प्रगट करना चाहता हूँ तो मानो वह समय मेरे उदगारों का आ गया, इसी प्रकार देखो, यहाँ जब ईसा मसीह का जन्म मानो देखो, ईशु अप्रता जन्म हुआ तो वह देखो, रूढ़िवाद में परणित हो गया, जब भी रूढ़िवाद पनपता है, उसमें अज्ञान होता है, और यदि अज्ञान नही होगा, तो रूढ़ियों का निर्माण नही हो सकता। और जब वह मानो देखो, रूढ़ियों का निर्माण हो जाता है, उसको जन समूह मे जब वह पूर्ण नही होती तो वही जन समूह रक्त भरी क्रान्ति में परिवर्तित हो जाता है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में ये प्रगट करते हुए कहा है, कि जो राष्ट्र देखो, अपने आहारों और व्यवहारों को सुसज्जित नही बनाना चाहता है, मानो देखो, जो जिस राजा के राष्ट्र में देखो, हिंसा अपने में बलवती होती जा रही है, मैं हिंसा की चर्चा कर रहा हूँ, जिस राजा के राष्ट्र में प्राणी, प्राणी को नष्ट कर रहा हो, स्वार्थवाद से, या रूढ़िवाद से, अरे, राजन! तू ऐसे रूढ़िवाद को क्यों नही नष्ट कर सकता है? ऐसा रूढ़िवाद ईश्वर के नाम पर नष्ट हो जाना चाहिए। क्या उसे ईश्वरवाद कहेंगें? ईश्वर तो निरभिमानी है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहते रहते हैं, ईश्वर निरभिमानी है, परमपिता परमात्मा देखो, अकाय है, उसका प्रकाश मानो उसका मानो ज्ञान सर्वत्रता में मानो एक ही तुल्य माना गया है। माता के गर्भस्थल में निर्माण किया है, परन्तु उसका निर्माण देखो, जो राम के भक्तजन हैं, या मोहम्मद के भक्तजन हैं, या ईसा के भक्तजन हैं, परन्तु वह तो एक रूढ़ियों में हैं। परन्तु देखो, इनका निर्माण तो एक ही तुल्य है। तो ईश्वर के नाम पर, जब वह अपनी रूढ़ियों का निर्माण करते हैं, तो वह इसीलिए कि यह राष्ट्रवाद हमारा हो जाएं। राष्ट्र हमारा हो जाएं, उसमें धर्म या ईश्वरवाद का लेशमात्र भी उसमें चिन्तन नही होता। जब मैं यह

विचारता रहता हूँ, कि कोई भी इस प्रकार के विचारों को कि जहाँ नाना प्रकार की गोष्ठियां होती हो, राजा के राष्ट्र में, और वह गोष्ठियां को राजा को यह प्रतीत हो जाएं कि तेरे राष्ट्र में वह हानि प्रद है, और राजा उस हानिप्रद विचारधाराओं को गोष्ठियों को, चिन्तन में नही लाता तो वह राष्ट्रवेत्ता नही कहलाता। वह राजा नही कहलाता। मानो देखो, यहाँ समय समय पर रूढ़िवादियों ने ऐसे ऐसे नृत्त बनाएं हैं, जो देखो, मानो मृत्यु को दण्ड देने में, और वह बनते रहते हैं, विचारधारा में भी, और क्रियात्मकता में भी बनते रहते हैं यह राष्ट्रवाद को त्याग करके वह सन्यास को प्राप्त हो जाना है।

ऐसे मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था क्या हे प्रभु! यह अज्ञान है, राजा ब्रह्मवेत्ता जब हो जाता है, तो समाज को उन्नति देता है, और जब राजा विज्ञान में रत्त हो रहा है, और मृत्यु से भयभीत हो रहा है, वह राष्ट्र प्रजा को सुखद नही बना सकता। मानो देखो, मैंने कई काल में यह कहा है, क्या राष्ट्रवेत्ता जो होते हैं, वह निर्भय होते हैं, वह वेद का मन्त्र कहता है राष्ट्रं ब्रह्मा वहृदसते अप्रतां मृत्यु यमा रथं ब्रह्मे वेद का मन्त्र कहता है कि देखो, राजा वह होता है, जो यम को विजय कर लेता है, और मृत्यु का भय नही होता, वह राष्ट्रवेत्ता मानो राष्ट्रपिता बन करके वह ब्रह्मवेत्ता बन करके मानो प्रजा को महान बनाता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व काल में देखो, बहुत सी चर्चाएं राजा सगर की चर्चाएं प्रगट की हैं, मैं आधुनिक काल की चर्चा प्रगट कर रहा हूँ। मानो देखो, जब राष्ट्रवेत्ता, राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ जाती है, और स्वार्थवाद आ जाता है अरे, रक्षक जब मानो भक्षक बन जाता है, तो समाज कैसे जीवित रह सकेगा जब मैं यह विचारता हूँ मानो देखो, ब्रह्मवेत्ता यदि राजा के राष्ट्र में नही रहेंगें, ब्रह्मवेत्ता देखो, ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले, वह राष्ट्र ऊँचा नही बन सकेगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था, इससे पूर्व काल में, क्या जिस राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरूष होते हैं, महापुरुष होते हैं, वह राष्ट्र ऊँचा बनता है, मैं राष्ट्रवाद की चर्चा इसीलिए कर रहा हूँ, मैं आध्यात्मिकवाद की चर्चा भी करता रहता हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव से श्रवण करता रहता हूँ, परन्तु यहाँ राष्ट्रवाद की चर्चा इसीलिए उच्चारण कर रहा हूँ, क्या राष्ट्रवाद कुछ मुझे दृष्टिपात नही आया,

रूढ़ि पनप रही हैं, राष्ट्र शान्त हो रहा है, रूढ़ि, रूढ़ि को नष्ट करना चाहती है। मृत्यु दण्ड दे रहे है। और राजा शान्त मुद्रा में विद्यमान है। क्या तेरी स्थली तेरा जो राजस्थल है किसी भी प्रकार की इसकी रक्षा हो जाएं। और यह तेरे तक सीमित रह जाएं, अरे, जब ऐसे विचार बन जाते हैं तो समाज में रक्तमयी क्रान्ति का सञ्चार विशेष हो जाता है।

तो मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वर्णन करते हुए कहा क्या, जिस राजा के राष्ट्र में भिन्न भिन्न प्रकार की मानो देखो, भिन्न भिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ हो, कहीं मोहम्मद के मानने वाले हों, कहीं ईसा के मानने वाले हों, कहीं मानो देखो, कहीं नानक के मानने वाले हों, भिन्न भिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ ईश्वर के नाम पर, कहीं नाना प्रकार का गुरुडम्बावाद हो जो मानो देखो, गुरु तक अपने जीवन को सीमित बना रहे हैं अरे, विचार आता है, हे महानपुरूषों! तुम वेद की पोथी को ले करके अग्रणीय बन जाओ, वेद जो कहता है, उसको समाज को देना प्रारम्भ करो, तो मानो देखो, वेद की जो देव भाषा है, वह तुम्हारी जननी बन करके इस समाज और राष्ट्र को ऊँचा बना सकती है। परन्तु जब मैं यह विचारता हूँ, क्या गुरुजन तो यह कहते हैं कि हमें लाखो मानो करोड़ो शिष्य हमारे बन गएं हैं, हम तो देखो, परमात्मा बन गएं हैं जब यह विचारधारा रहती है, इस विचारधारा में मानवीय दर्शन का ह्रास होता रहता है, और वह जो समाज का ह्रास होता है, वह राष्ट्रवाद पर मानो देखो, रक्त भरी क्रान्ति का, एक समय समूह बन जाता है। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक् कहा था। अपने पूज्यपाद गुरुदेव से मानो देखो, जब हम रूढ़ियाँ पनप जाती हैं, रूढ़ियाँ विनाश को प्राप्त हो जाती हैं, मानो देखो, उनके मौलिक विचार लुप्त हो जाते हैं, और वह मौलिक विचार लुप्त हो करके मानो देखो, वह रूढ़ि एक ऐसी पनप जाती है जिससे मानव, मानव को नष्ट करना चाहता है, जब मैं यह विचारता रहता हूँ, अपने पूज्यपाद गुरुदेव के विद्यालय में, जब अध्ययन करता रहता था, तो विद्यालयों में सबसे प्रथम यह शिक्षा दी जाती है, क्या हम मानो देखो, ब्रह्मचारी बनें, ब्रह्मचर्य के पश्चात गृहस्थ में प्रवेश होना है और यहाँ गृहस्थ के पश्चात वानप्रस्थ में जाना है यह सब राष्ट्रीय व्यवस्था कहलाती

है। राजा के राष्ट्र में जितने विद्यालय हैं, इनमें वानप्रस्थी जो इन्द्रियों से, इन्द्रियों की तृप्ति कर गएं है, वह मानो देखो, विद्यालयों में शिक्षक होने चाहिएं। जब मानो देखो, यहाँ तरंगों का प्रादुर्भाव है तरंगों का जीवन है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो इस सम्बन्ध में कोई ऐसा वाक् नही त्यागा, जिसको देखो, इन्होंने अपना देखो, नृत्त नही बनाया है न उसको देखो, कार्य रूप दिया है परन्तु देखो, आधुनिक काल का विद्यालय कैसा है, आधुनिक काल का विद्यालय पुकार कर रहा है, कर्तव्य का पालन नही कर रहा है तो मानो देखो, जब शिक्षा प्रणाली नष्ट हो जाती है, तो मानो देखो, राष्ट्रवेत्ता कहाँ जीवित रह सकेगा? जब मैं यह विचारता हूँ, क्या देखो, यहाँ विद्यालय में ब्रह्मचारी अध्ययन करते हैं, और ब्रह्मचारी जब अध्ययन करते हैं, वह गुरुओं पर आक्रमण करते हैं, और गुरुजन ऐसे हैं, कि वह कामना की प्रवृत्ति में रत्त हो करके, मानो वह उससे विनती करते हैं। तो हे मानव! यह समाज वर्तमान का काल चल रहा है, यह कैसे ऊर्ध्वा में गमन करेगा। मैं टिप्पणीयाँ नही कर रहा हूँ मैं मानो देखो, दूरिता में न ले जा रहा हूँ, मैं ये विचारता रहता हूँ कि यह सब राष्ट्रवाद में ही दोषारोपण, इस प्रकार के हैं। क्योंकि जब राजा ही यह चाहता है, जब राष्ट्रवेत्ता यह चाहता है कि मेरा आसन बना रहे, यह प्रजा, समाज कही चला जाओ। मेरा आसन बना रहे मानो देखो, जैसे आसनां श्वञ्धनं जैसे राजा रावण के विषय में मैंने देखो, टिप्पणीयाँ देते हुए कहा था, मेरे पूज्यपाद ने भी वर्णन कराया।

कर्तव्य में धर्म

क्या मानो देखो, एक देवी को जब वह लंकापुरी में ले गये, लंका नष्ट हो गई, परन्तु अन्त तक यह विचारता रहा कि मेरा आसन बना रहे, यह लंका कहीं भी भस्म हो जाएं, जब यह विचारधारा एक देवी के ऊपर, राष्ट्रवाद की बन जाती है, तो यह भी देवी है और राज्यसभा भी वही देवी है, इस देवी की रक्षा करना चाहते हो, देवी को अपनाना चाहता है, परन्तु देवी के ऊपर मानो मानव नष्ट हो जाएं। परन्तु उसकी दिव्या बनी रहे ऐसा राष्ट्र का जब विचार बन जाता है। तो मानो देखो, वहाँ प्रत्येक मानव के

हृदय में देखो, प्रत्येक मानव चिन्तित हो जाता है, और देखो, यहाँ ब्रह्मचर्य व्रत नही किया जाएगा, जब मैं विचारता हूँ मुझे स्मरण है राम के काल में भी विज्ञान पनपा, और भारद्वाज के काल में विज्ञान पनपा महाभारत काल में भी विज्ञान पनपा है।

जब मैं आधुनिक काल के विज्ञान को विचारता हूँ अरे, भोले राजन! जब तेरे राष्ट्र में नैतिकता ही नही रहेगी, तो तू मानो देखो, धर्म को दूरी करना चाहता है, तो कर्तव्यवाद का पालन तो कर, यदि कर्तव्यवाद का पालन भी नही कर सकता, कर्तव्यवाद भी नही आ सकता और देखो, ब्रह्मणे व्रतं देवा देखो, वह देखो, धर्म को भी नही अपना सकता, तो समाज कैसे जीवित रह सकेगा? परन्तु देखो, जब मैं यह विचारता रहता हूँ वह क्यों नही चाहते, क्योंकि रूढ़ियाँ हैं, और रूढ़ियाँ ईश्वर के नाम पर हैं, जब राजा यह कहता है देखो, एक स्थली पर विद्यमान हो करके, जन समूह में, क्या हम सब धर्मों को स्वीकार करते हैं। अरे, भोले प्राणी! नाना धर्म तो होते ही नही, अरे, धर्म तो एकोकी वचन कहलाता है। एक ही धर्म और वह धर्म क्या है? वह कर्तव्य का पालन है। अपना धर्म न वैदिक धर्म है, न सनातन धर्म है, न ईसा धर्म है, न मोहम्मद धर्म है, धर्म तो कर्तव्यवाद के पालन करने का नाम धर्म है, मानो देखो, एक राजा है, वह अपनी प्रजा को सुखद में चाहता है।

जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अश्वमेध याग के ऊपर अपनी वार्त्ता प्रगट कराई याग के ऊपर बहुत अध्ययन कराया, परन्तु देखो, जब अपनी प्रजा को महान बनाना चाहता है, और समय समय पर ब्रह्मज्ञान देता है, अरे, ब्रह्मज्ञान तो राज्यसभाओं से भी ऊर्ध्वा में गमन करता है। मानो देखो, इन्द्रियों से, इन्द्रियों के अन्तिम चरण को देखो, जब योगी साकल्य बना करके, अन्तर्हृदय में याग करता है, अरे, वह तो देखो, राज्यों से भी ऊर्ध्वा में गमन कर रहा है, क्या वह धर्म है, दर्शन है, या मानवता है, या मानो देखो, मंगलम ब्रीहि वृत कहलाता है। तो जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहता रहता हूँ कि हे भगवन! यह क्या है यह राष्ट्रवाद है या नृत्त हो रहा है? परन्तु देखो, मैं यह उद्गीत गाना चाहता हूँ, जब मैं विज्ञान में प्रवेश करता हूँ, तो विज्ञान में मेरी पुत्रियाँ, पुत्रियों का नृत्त होता रहता है अरे, वही नृत्त है जिस नृत्त पर देखो, छात्र और छात्रिकाओं

का जीवन भ्रष्ट होता जा रहा है। मानो देखो, मेरी पुत्रियों को, देखो, जब वह नृत्त होना प्रारम्भ होता है, तो ब्रह्मचर्य की स्थिरता कैसे रह सकेगी, क्या हे विद्यालय के आचार्य जनों! हे राष्ट्रवेत्ताओं! यह विचारों देखो, विचारने से तुम्हें प्रतीत होगा, कि हम कहाँ जा रहे है। जब मानो देखो, एक यन्त्र में मेरी पुत्रियों का देखो, अश्लील चित्र आ रहा है, और चित्रों को छात्र छात्रियां, माता और पिता पुत्रियाँ सब ग्रहण कर रहे हैं, तो मानो देखो, यह कैसे ऊँचा बन सकेगा? देखो, यह विज्ञान का दुरूपयोग है, परमात्मा ने तरंगें दी हैं, वह कर्तव्यवाद में लाने के लिए, परन्तु तुम उनका दुरूपयोग कर रहे हो। अपने चरित्र को नष्ट करने का तुमने समूह बना लिया है।

वशिष्ठ राष्ट्र

तो विचार धारा केवल ये विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही आया हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव देखो, अमृतां ब्रह्मा इनके समय में से मैं अपना कुछ प्रगट करना चाहता हूँ मेरी यह हृदय की वेदना है, और वेदना यह है कि ऐसे जैसे आधुनिक काल में, वर्तमान में राष्ट्रवेत्ता हैं, देखो, मृत्यु हो रही है और राष्ट्र अपनी स्थली में विद्यमान है। वह मानो कोई घोषणा नही कर रहा है, वह मानो देखो, अपनी आभा में रत्त हो रहा है, और उसके मन में, एक स्वार्थवाद आ गया। क्योंकि राष्ट्र जो होता है वह स्वार्थवादियों का नही होता, राष्ट्र उसे कहते हैं, भगवान मनु ने जब भी राष्ट्र का निर्माण किया, उन्होंने इसीलिए किया, कि प्रत्येक मानव कर्तव्यवादी बन जाएं, कर्तव्य से विहिन हो गया था। और देखो, जब कर्तव्य से विहिन हो गया, तो उस समय राष्ट्रवाद का निर्माण होता है, और राष्ट्र का निर्वाचन होता है, और वह बुद्धिमानों के द्वारा होता है। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था, कि अज्ञानियों का निर्वाचन किया हुआ राष्ट्र तो अज्ञान में ही परणित होता है। परन्तु बुद्धिमानों का विवेकियों का, योगियों का निर्वाचन किया हुआ, राष्ट्र, वह वशिष्ठ कहलाता है। और वह राष्ट्रवाद को ब्रह्म ज्ञान में और विवेक में ले जा करके,

समाज को ऊँचा बनाता रहता है।

लंका विजय के उपरान्त राम का तप

तो मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि यह जो प्रणाली है, निर्वाचन की, निर्वाचन की प्रणाली परम्परागतों से मानी गई है, जब से राष्ट्रवाद का निर्माण हुआ है, परन्तु जब से राष्ट्रवाद में पुनः अज्ञान आ गया है, विकृति और स्वार्थवाद आ गया, पद की लोलुपता आ गई है, उसी काल में देखो, अज्ञान अग्नि की भांति, अज्ञान अग्नि की भांति वह अवृत्तियों में देखो, नष्ट हो करके समाज को नष्ट कर रहा है। तो मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यही तो कहा है, क्या राम जैसे राष्ट्र होने चाहिए, भरत जैसे सखा होने चाहिएं, राम कहता है कि मैं राष्ट्र को नही भोगता देखो, मैंने पूज्यपाद गुरुदेव ने कितनी ऊर्ध्वा में वार्त्ता प्रगट कराई है एक समय क्या जब लंका से विजय होने के पश्चात वह अयोध्या में उनका प्रवेश हुआ, तो महर्षि वशिष्ठ इत्यादि मुनियों ने यह कहा कि आओ, तुम अयोध्या के राष्ट्र को भोगो। उन्होंने कहा राम कहते हैं कि यह भोगना शब्द नही है, भगवन! आप मेरे पूज्यपाद गुरुदेव हैं राष्ट्र को भोगा नही जाता है, राष्ट्र में तो कर्तव्य का पालन किया जाता है, मानो देखो, राष्ट्र भोगने की कोई वस्तु नही हैं, वह कर्तव्य का पालन करना है, अब भगवन! मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ, क्या मैं तपस्या करना चाहता हूँ, क्योंकि मेरे में रजोगुण, तमोगुण की प्रधानता हो गई थी, जब मैंने रावण से संग्राम किया। मेरा मानो देखो, कुछ समय तक, माह तक चिन्तन चलता रहा, क्या रावण को कैसे नष्ट किया जाएं, रावण की लंका कैसे नष्ट हो, तो वह सब मेरा देखो, नष्ट होने का जो विचार है, वह तमोगुण है, रजोगुण से सना हुआ है, सतोगुण में उसमें लेशमात्र नही हैं, अब मैं तप करने जा रहा हूँ।

तो मुनिवरों! देखो, मुझे स्मरण है, पूज्यपाद गुरुदेव ने तो वर्णन कराया ही है, क्या उन्होंने देखो, चौबीस वर्षों का देखो, तप किया अनुष्ठान किए थे, बारह बारह वर्ष के अन्न का पान नही किया, एक माह तक अन्न को त्यागा, दूसरे माह उन्होंने जल को

त्यागा, जल को देखो, वायु से सेवन करते थे, और देखो, वह महर्षि गणेशाम और श्वातम और देखो, विश्वामित्र की अध्यक्षता में मानो देखो, वह कुछ प्राप्त भी करते रहते थे, एकान्त स्थली में रहना, तो चौबीस वर्षों में उनका अन्तरात्मा पवित्र हो गया। उनका हृदय रजोगुण, तमोगुण से रहित हो गया, और रहित हो करके क्योंकि देखो, विदुषी सम्भूति ब्रह्मणा महते माता उसे मानो देखो, गायत्रियों का छन्द एक मानो देखो, अन्न को पान कराया जाता। जिससे वेद की जो देव भाषा है, वह उसके हृदय में प्रवेश हो जाएं, वही तो गायत्राणि छन्दों से युक्त कहलाने वाली प्रतिभा है, उसको राम ने ग्रहण किया और चौबीस वर्षों का अनुष्ठान करने के पश्चात उन्होंने उसके पश्चात देखो, अयोध्या के राष्ट्र को अपनाया, और अयोध्या के राष्ट्र को अपना करके और भरत को सखा बना करके उसका पालन किया।

आधुनिक काल यह जो वर्तमान चल रहा है यहाँ तो जितनी भी त्रुटियां आ जाएं, वहां तो राष्ट्र की प्रणाली पवित्र बन जाती है ऐसा स्वीकार करता है मानव, क्योंकि देखो, जब जितनी भी अशुद्धियां नष्ट करता रहे प्राणियों को, देखो, अपनी भुषण्डिका से नष्ट करता रहे, जब ही देखो, वह एक एक महान नेतृतव करने वाला है, वह नेता कहलाता है। उसे जगत नेता कहता है, परन्तु नेता अग्नि है जो नेतृतव करने वाली अन्धकार को नष्ट करती चली जाती है, अरे, वह नेतृतव करने वाला है, नेतृतव वही कहलाता है, जो अग्रणीय बनता है, अग्नि के तुल्य जो प्रकाश देता है, ब्रह्मज्ञान का प्रकाश देता है, मानवता का प्रकाश देता है, और वह देखो, देव भाषा को ले करके अपना गमन करता है, अरे, वही तो नेतृतव करने वाला जो अज्ञान को नष्ट कर दे। प्रकाश को लाने का प्रयास करे, ब्रह्मज्ञान को ला दे और मानो देखो, इस संसार की जो त्रुटियां है, उन्हें नष्ट कर दे। ऐसे जो नेतृतव करने वाला है, वह अग्नेय कहलाता है, और अग्नि वाला जो प्राणी है, जो नेतृतव करता है, वही नेतृतव में रमण करने वाला समाज को ऊँचा बना देता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है, आधुनिक काल में देखो, नेतृतव करने वाले, ऐसे ऐसे निकृष्ट हुए हैं, क्या जिन्होंने देखो, न भाषा जानी है, न

कुछ जाना है, वह अपने में प्रति अस्रोत में परणित होते रहे हैं, जैसे देखो, मोहम्मद के मानने वाले न ज्ञान की प्रतिभा है, न उनके नेतृतव में मानो ज्ञान रहा है, उनका नेतृतव तो यह कहता है कि समाज को अज्ञानी बनाओ, और राष्ट्र का पालन करो परन्तु देखो, उनका तो यह मन्तव्य रहा है परम्परागतों से, और आधुनिक काल का यह है, क्या शिक्षा की दो धारा बनाओ, एक धारा ऊर्ध्वा में, एक ध्रुवा में दो धारा बनाओ दोनों में विभाजन होता रहे, और राष्ट्र का पालन करो, परन्तु देखो, पालन में देखो, वह आपस मे संग्राम करते रहें। संग्राम में देखो, वह संग्रहित होते हुए, ऐसा देखो, राष्ट्र और समाज का विचार बन गया है पूज्यपाद!। अब इसमें क्या अपनी टिप्पणीया दे सकेंगें, परन्तु देखो, यह समाज तो टिप्पणीयों से रहित हो गया है।

महाभारत के मूल में शान्तनु

विचार आता रहता है, जब मैं राष्ट्रवाद की चर्चा करता हूँ, तो मानो देखो, मानो मानव समाप्त हो रहा है। हे मानव! तू विचारधारा में परणित हो परन्तु देखो, जब मानवीय दर्शनों की चर्चा होती हैं, विद्यालयों में जाता हूँ, तो संग्राम हो रहा है, जब मानो देखो, किसी गोष्ठी में जाते हैं, तो वहाँ संग्राम हो रहा है, वहाँ मतावृत्तियों में रत्त नही हो रहा है, समाज तो मैं यह कहता हूँ कि हे परमपिता परमात्मन् तू ऐसी सुबुद्धि इस समाज को पुनः से दे जिससे मानो देखो, कणाद जैसे बुद्धिमान व्यास जैसे बुद्धिमानों का जन्म हो क्योंकि देखो, बुद्धिमतं ब्रह्मा देखो, वह अपने में अपनेपन को विचारते रहें क्योंकि महाभारत काल के पश्चात ही यह अज्ञान उत्पन्न हुआ है, जब मैं यह विचारता हूँ, कि महाभारत संग्राम का दोषी कौन कौन है, इसमें तो विचार आता रहता है।

एक समय यह गोष्ठियां हो रही थी। मैं पूज्यपाद गुरुदेव से यह कह रहा था हे प्रभु! महाभारत में इतना संग्राम हुआ कुरूक्षेत्र में मानो इतना रक्त बहाया गया उसका कारण क्या है, इसके मूल में मुनिवरों! देखो, जब उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक शब्द कहा था कि इसके मूल में शान्तनु है, शान्तनु ही इसके मूल में है, अरे, शान्तनु अपने पुत्र से कहता है कि तुम ब्रह्मचारी रहो और मेरा संस्कार कराओ, मानो देखो, इसके

मूल में केवल शान्तनु है, अरे, जब पुत्र भीष्म प्रतिज्ञा बद्ध हो जाता है। और जब पिता देखो, दुराचार में नष्ट हो जाता है। तो राष्ट्र भी उसके साथ नष्ट हो जाता है। तो देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यही वर्णन कराया क्या शान्तनु यदि क्या देखो, माता गंगोत्री के साथ साथ अपने विचारो में जैसा वह शिक्षा दे गई थी, देखो, जब मृत्यु को जब प्राप्त होने के लिए गंगोत्री तो उन्होंने शिक्षा दी क्या इस समाज को दूषित न करना हे राजन! यदि समाज तेरे से दूषित हो गया तो देखो, यहाँ तेरे से अज्ञान छा करके और हस्तिनापुर देखो, रक्त भरी क्रान्ति में परिवर्तित हो जाएगा, यह माता ने देखो, मृत्यु समय कहा था देखो, परन्तु राजा ने उससे विपरीत किया। विपरीत होने का परिणाम यह हुआ, क्या देखो, विज्ञानवेत्ता महान से महान बुद्धिमान वेदों के मर्म को जानने वाले वह समाज नष्ट हो गया, उसके पश्चात वाममार्ग आ गया वाममार्ग में धर्म को नही जाना शब्दों की रचना में अज्ञान आया, शब्दों की रचना में अज्ञान आ करके देखो, उसमें नाना प्रकार के देखो, नाना प्रकार की रूढ़ियाँ बनी, और रूढ़ियों का यह परिणाम हुआ कि उन्होंने देखो, रक्त बहाया, दर्शन को नष्ट कर दिया, वैदिकता को अपने में देखो, धारणा न करते हुए, अपने में स्वार्थवाद परणित हो गया, और उसके परणित होने से यह संसार आज यह अन्धकार में यह भारत भूमि तो विशेषकर अन्धकार में परणित हो रही है। तो सर्वत्र समाज चला गया मानो देखो, बब्रीक पातालपुरी का था जिसको आधुनिक काल में अमेरिका के वर्णन करते है जहाँ के कपिल मुनि महाराज थे क्या जिन्होंने देखो, यहाँ आ करके यह ब्रह्मा बन करके, जिन्होंने अश्वमेध याग कराया, भगवद इत्यादि बहुत से बलवान बलिष्ठ, और विज्ञानवेत्ता सब नष्ट हो गये।

तो इसीलिए मैं विशेषता में जाना नही चाहता हूँ, यह संसार की बहुत सी वार्त्ताएं हैं, परन्तु विचार विनिमय क्या मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रार्थना कर रहा हूँ प्रभु आप तो देखो, राजा सगर के याग की चर्चा कर रहे हैं वह प्रिय है, परन्तु उस समय यागों का चलन राजाओं के राष्ट्र में रहा है, रावण ने भी अश्वमेध याग कराया, परन्तु देखो, इन्द्र वही बनता है जो एक सौ एक अश्वमेध याग कर लेता हैं।

आज का विचार विनिमय क्या मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उद्गीत गाना चाहता हूँ, कि

हे प्रभु! समाज को परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है, क्या रूढ़िवाद नही रहना चाहिए, ईश्वर के नाम पर जितनी रूढ़ियाँ होंगीं, उतनी राष्ट्र और समाज में अशान्तियां उत्पन्न होती जाएगी। जितना गुडम्बावाद होगा उतनी अशान्तियां होगी, परन्तु देखो, इसीलिए एकोधर्मं ब्रह्मा धर्म क्या है, जो मानव की इन्द्रियों में समाहित है, उसको कर्तव्यवाद का पालन करते हुए समाज को ऊँचा बनना चाहिए। यह आज का विचार अब मैं अपने विचारों को विराम दे रहा हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज मुझे समय दिया है, समय और देते रहेंगें तो चर्चा करता रहूँगा, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने भव्य विचार दिए हैं, इनके विचारों में मानो विचारधारा को भी परन्तु इनके विचारों में एक महानता है, इनका अन्तर्हृदय यह चाहता है, कि राष्ट्र और समाज शान्ति युक्त रहे और किसी प्रकार की विडम्बना न हो, और वह विडम्बना मानो देखो, प्रत्येक प्राणी को उग्र रूप में लाना चाहती है, यह आज का विचार समाप्त अब वेदों का पठन पाठन।

१६ 19 03 1989 अद्वितीय क्रियाकलाप याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप और वे परमपिता परमात्मा सर्वत्रता में रत्त रहने वाले हैं। मानो याग उसका आयतन है, उसका गृह है, और उसका सदन है, वह प्रायः उसी में वास करता रहता है इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर सदैव विचार विनिमय करते रहें क्योंकि उसका जो अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है वह महान और पवित्रतम कहलाता है जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही, अध्ययन करता रहा है, और अध्ययन करता हुआ मानो उसको त्याग प्रवृत्ति में रत्त रहा है। मानो जैसे यह संसार के जितने भी सूक्ष्म अव्यय माने जाते हैं उनका किसी भी काल में विनाश नही होता मानो जैसे एक

मानव है यह जो संसार का नाना प्रकार का जो प्रपञ्च माना गया है, और उस प्रपञ्च को जानते हुए उससे उपराम होता हुआ, मानव अपने में ऊर्ध्वा उड़ान उड़ने के लिए तत्पर रहता है, जब यह विचारा जाता है, क्या यह संसार जो रचनामयी कहलाता है, यह नास्ति मानो यह न होने के तुल्य है, और मानो जो इसके जो सूक्ष्म अव्यय होते हैं उनका किसी भी काल में विनाश नही होता। क्योंकि जिसका जो मूल होता है एक वृक्ष का जो मूल है, उस मूल में भी एक मूल है। परन्तु उसका विनाश नही होता। तो इसीलिए प्रत्येक मानव को जितने भी आभा में कामां ब्रह्मा व्रताः जो काम, क्रोध, लोभ, मोह मानो देखो, अभिमान इत्यादियों से घिरा हुआ जितना जगत है वह नास्ति, उसका सदैव विनाश होता रहता है, परन्तु उसके जो सूक्ष्म अव्यय होते हैं, जिनसे उनका निर्माण होता है, वृक्ष बनता है वह प्रायः अपने में ऋतब्रहा वह नास्तता मेरे प्यारे! वह सदैव स्थिर रहने वाले हैं।

अद्वितीय क्रियाकलाप याग

तो हमने यह विचारना है कि हम परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएं, मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेदमन्त्र, हमें कोई प्रेरणा दे रहा है, मानो कहीं से यह प्रेरणा आ रही है यज्ञं भवितां ब्रह्मणां ब्रहे यज्ञा मेरे पुत्रों! देखो, यह विचार आ रहा है, क्या मानव को याग में परणित होना चाहिए, और हमने कई काल में याग की विवेचना करते हुए कहा था, कि जितना भी सुकर्म है, सुक्रियाकलाप है, उस सर्वत्र का नाम एक यागमयी माना गया है। वह यज्ञोमयी माना गया है। जितना भी सु विचार है।

तो इसीलिए मानव को सुविचार में परणित हो जाना चाहिए और सुविचार को ला करके ही मुनिवरों! याग में परणित होना है तो मेरे पुत्रों! देखो, वेद का ऋषि कहता है कि वे परमपिता परमात्मा मानो यज्ञ में ही निहित रहने वाले हैं, यज्ञोमयी कृत लोकां ब्रह्मा तो मुनिवरों! प्रत्येक मानव को यह अध्ययन करना है, विचार विनिमय करना है, कि हमें अपने मानवीयतव को ऊँचा बनाना है, मानवीय धारा को रूद्रां ब्रह्मणो देवा साता व्रते

मेरे प्यारे! देखो, उससे मानव को ऊर्ध्वा में गमन करना है।

तो आओ, मेरे पुत्रों! मैं विशेष चर्चा नही प्रगट कर रहा हूँ, विचारधारा यह कि वेद का मन्त्र कहता है कि हे मानव! तू याज्ञिक बन और यह परमपिता परमात्मा का जो अनूठा जगत है, यह जो हमें दृष्टिपात आ रहा है यह मानो एक प्रकार की यज्ञशाला है, यहाँ प्रत्येक मानव बेटा! शाला में आया है, परमपिता परमात्मा की उपासना करता हुआ, इस सागर से पार होना चाहता है। आओ, मेरे प्यारे! इससे पूर्व काल में भी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने राष्ट्र और समाज और देखो, ऊर्ध्वा बनाने के लिए, इन्होंने अपना व्यक्तव्य दिया। अपना विचार दिया तो मुनिवरों! देखो, विचारों की धारा में, सदैव रत्त रहना चाहिए। तो आओ, मेरे पुत्रों! देखो, जब हम यज्ञमयी साकल्य के ऊपर विचार विनिमय करते हैं, तो वह बड़ा वृत्तियों में रत्त रहता है।

तो आओ, मुनिवरों! हम याग में परणित होते हुए मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब यहाँ बेटा! भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन ऋषि मुनियों के माध्यम से होता रहा है, पुरातन काल में बेटा! देखो, यहाँ राजा रघु इत्यादियों का यह प्रसंग हमारे स्मरण आता रहता है जब वह यह कहते हैं कि सर्वश याग करना चाहते हैं, जितना द्रव्य है, जितनी मुद्रांए है, उन मुद्राओं को ले करके हम सर्वत्र याग करना चाहते हैं, यागां ब्रह्मणा यागां रुद्रा असुतम यागा तो मेरे प्यारे! देखो, यह याग अपने में बड़ा अद्वितीय एक वृतित्व कहलाया जाता है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही, अन्वेषण और अनुसन्धान करता रहा है, मेरे प्यारे! वैज्ञानिकों के मध्य में जब इसका अध्ययन होना प्रारम्भ हुआ, तो मुनिवरों! देखो, महर्षि शिकामकेतु उद्दालक के यहाँ और देखो, महर्षि भारद्वाज इत्यादियों के यहाँ जब मुनिवरों! इसके ऊपर अन्वेषण हुआ, तो महर्षि शिकामकेतु उद्दालक ने तो यह कहा क्या देखो, हमारा रथ बन करके द्यौ लोक में जाता है, और शिकामकेतु उद्दालक ने अपने पूर्वजों का दर्शन भी इसी के द्वारा किया है, परन्तु जब महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में प्रवेश करते है। भारद्वाज की चर्चाएं करते हैं, तो भारद्वाज मुनि के आश्रम में बेटा! देखो, नाना ब्रह्मचारी अध्ययन करते रहते, और प्रातःकालीन याग करते रहते जब वह याग करते रहते थे, यागां यज्ञं श्वंधनं

प्रमा प्रहे मेरे प्यारे! देखो, वह जो याग है अपने में बड़ा अद्विदितीय माना गया है, और उस याग में परणित होना ही हमारा कर्तव्य है तो बेटा! देखो, वह याग कौन सा जिसमें हमें परणित होना है। तो मेरे प्यारे! देखो, यज्ञनं ब्रह्मा कृतं लोकां यह जो परमपिता परमात्मा का जो अनूठा जगत है, इसको जानने के लिए नाना वैज्ञानिक अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते रहे हैं, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ इस याग के लिए एक यन्त्र का निर्माण किया गया था, जो यज्ञमान के शब्द, होताओं का शब्द, ब्रह्म इत्यादियों देखो, वेदमन्त्रों की जो ध्वनियां हैं, वह अन्तरिक्ष में जाती हुई, यन्त्रों में प्रायः दृष्टिपात आती रही हैं। इस प्रकार का यन्त्रवाद है और यह यागवाद है, यह परम्परागतों से बड़ा विचित्र माना गया है। जब मैं इसी वाक् को ले करके मुनिवरों! देखो, वैज्ञानिकों के देखो, हनुमान जैसे और गणेश जैसे महापुरुषों के समीप हमारा विचार और हमारी दृष्टि जाती है, तो हमें ऐसा प्रतीत होता है, तो वह समुद्र के तट पर मानो याग करते और याग के पश्चात मानों समुद्रों की तरंगों को निहारते और उन तरंगों को वे मानं ब्रह्मा कृतसप्ताहं ब्रह्मा, वह उन्ही तरंगों को ले करके, प्रायः अपने में अपनेपन का भान करते रहें। जब यह विचार आता है, कि याग अपने में अद्विदितीय, एक क्रियाकलाप है, याग अपने में महान एक क्रियाकलाप है। तो मुनिवरों! देखो, हमारा हृदय गद् गद् हो जाता है और हम यह उच्चारण करके रहते हैं कि यागां।

मेरे पुत्रों! देखो, एक समय हनुमान और महाराजा गणेश जी ने मुनिवरों! देखो, शिव के पुत्र ने, एक यन्त्र का निर्माण किया था दोनों ने, जो समुद्रों के तट पर विद्यमान हो करके मानो तरंगों का चित्र लेना, उन तरंगों में जो गतियां जो चित्रण हो रहा है, क्रियाकलाप हो रहा है, उस सर्वत्र का चित्र आ जाना तो मेरे प्यारे! यह क्रिया में रत्त होने वाला रहा है, यह एक याग माना गया है, जब हम यह विचारों को ले करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करते हैं, आध्यात्मिकवेत्ता बनने के लिए तत्पर होते हैं, तो आध्यात्मिकवादी बेटा! पूर्व काल में अनुष्ठान के द्वारा याग करते रहे हैं, और जब याग करते रहे हैं, क्योंकि वायुमण्डल को पवित्र बनाना योगी के लिए एक बहुत अनिवार्य है। यदि कोई मानव साधना करना चाहता है, वह यौगिक साधना में प्रवेश करना चाहता

है, तो यह बहुत अनिवार्य है कि वहाँ का वायुमण्डल पवित्र होना चाहिए। यदि विद्यालयों को ऊँचा बनाना है, तो राजा को चाहिए कि राष्ट्रीय व्यवस्था के अनुसार मानो देखो, इन विद्यालयों में, गृह विद्यालयों में याग होना चाहिए, जिससे ब्रह्मचारियों के संस्कार, आचार्यों की मध्यस्थता में मानो देखो, उनके संरक्षण में वह याग में परणित होना चाहिए। परन्तु उसके पश्चात वह गो मेध याग करता है। और गो मेध यागी कौन है? बेटा! देखो, आचार्य और शिष्य दोनों विद्यमान हो करके देखो, गो मेध याग करते हैं गो वर्णनं गो व्रत्यां गो वर्णस्सुता।

गो मेध याग

मेरे प्यारे! देखो, आचार्य और ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में धारण करके, वहाँ गो मेध याग का वर्णन आता रहता है और गो मेध याग का अभिप्रायः यह भी है, कि राजा के राष्ट्र में गो नाम का पशु होना चाहिए, गो पशु की रक्षा करनी चाहिए और गो उसे कहते है। जो मानो देखो, ज्ञान से शून्य होता है, वह पशु है पशु को गो कहते हैं। गो नाम इन्द्रियों का, जब तक हम इन्द्रियों के रहस्यतम को नही जान पाते, तब तक मानो यह क्रिया भी गो कहलाती हैं, यहाँ गो नाम पशु का भी माना गया है, जो पशु मुनिवरों! देखो, गो वृणियों में रत्त होता रहा है, तो वह गो ब्रह्मणा गो रुद्रा गो सर्णसुता तो मेरे प्यारे! देखो, हमें गो मेध याग करना चाहिए। हे राजन! तेरे राष्ट्र में गो मेध होना चाहिए। पशु की रक्षा होनी चाहिए और विद्यालयों में ब्रह्मचारी मानो देखो, याज्ञिक बन करके अपने को ऊँचा बना करके और विद्या को अपने में धारण करके आचार्य के ही चरणों में विद्यमान रहे, तो ऐसे महापुरूषों का देखो, याग सम्पन्न होता है। याग किसे कहते हैं? जहाँ आत्मा को भोज्य प्राप्त होता हो, जहाँ कर्तव्य की प्रतिभा निहित हो, और जहाँ राष्ट्र और समाज ऊँची जहाँ प्रेरणा प्राप्त होती हो, वही तो हमारे यहाँ एक याग माना गया है। यागां रुद्रो यागां भवन्म ब्रह्मा असुता मेरे प्यारे! देखो, यागां अपने में याग्य प्रव्हा तो विचार आता रहता है।

मेरे पुत्रों! जब मैं यह विचार करता रहता हूँ क्या मानवीयतव हमारा पवित्रतव होना

चाहिए तो बेटा! देखो, गो मेध याग की चर्चा आती है गो मेध बेटा! वह भी करते हैं तो वैज्ञानिक समुद्रों के तट पर मानों किरणों को अपने यन्त्रों में शमन कर रहे हैं, वह वैज्ञानिक जन भी मानो गो मेध याग करने वाले हों वह गो याग हो रहा है।
तो मेरे प्यारे! देखो, महाराजा हनुमान और मैं बेटा! देखो, गणेश जी की चर्चा कर रहा था, उनका जीवन बड़ा अद्वितीय माना जाता है, उनके जीवन में एक महानता का दर्शन होता रहा है, जिन दर्शनों में प्रतिभा निहित रहती है, तो आओ, मेरे पुत्रों! विचार आता रहता है, कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते चले जाएं, और राजा के राष्ट्र में गो मेध याग होना चाहिए, और गो मेध उसे कहते हैं, गो नाम पृथ्वी का भी है, कृषक महान हो और महान बन करके इस गो नाम की पृथ्वी से मानो देखो, इसे धुने वाले हों, और इससे अन्न दुहा जाता है, खनिजों को प्राप्त किया जाता है, जिससे विज्ञान ऊँचा बनता है, नाना प्रकार के खाद्यान्न को जाना जाता है।
तो विचार क्या मुनिवरों! देखो, वह गो मेध की एक प्रतिभा कहलाती है, हमारें यहाँ नाना प्रकार के यागों में बेटा! सर्वत्र याग मानो देखो, राष्ट्रीय याग होने चाहिए, जिससे राष्ट्र ऊँचा बनें, समाज में महानता का दर्शन हो मेरे पुत्र महानन्द जी ने इससे पूर्व काल में, अपनी बहुत सी वार्त्ताएं प्रगट की, और हमारे जीवन में तो यह हमें अनुभव हुआ क्या बहुत सी गुथियां इस प्रकार की होती है जो उनका स्पष्टीकरण हो करके वह मानव के लिए मानो लाभप्रद होती हैं, और जीवन के साक्षी बनाते रहते हैं।
तो आओ, मेरे पुत्रों! देखो, मैं विशेष चर्चा तो तुम्हें देने नही आया विचार यह देने के लिए आया हूँ क्या हमारे यागों में वन्धनं देखो, यहाँ एक वैज्ञानिक याग हो मुनिवरों! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब महाराजा भीम और घटोत्कच्छ मानो देखो, जिस स्थलं ब्रह्मा कृतो वह उनका विज्ञान, अपने में साक्षी रहा है, विज्ञान में एक महानता का दर्शन होता रहा है और वही विज्ञान मानो अन्तरिक्ष में जहाँ चन्द्रमा और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है, जहाँ वस्तु स्थिर हो जाती है वहाँ स्थिर हो जाता है अपनी स्थली पर विज्ञान तो विज्ञान अपने में द्वितीय चरण वाला बन करके समाज को मानो प्रेरणा वर्द्धक कहलाता है। तो आओ मुनिवरों! देखो, मैं विशेष चर्चा न देता हुआ आज

केवल क्योंकि मुझे तो इतना विचार देना था क्या यागाम् ब्रह्मणां लोकां अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यमा रथं आभ्यां दधिमा रथं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कुछ याग के सम्बन्ध में अपना विचार विनिमय कर रहे थे, क्योंकि इनका याग के ऊपर बड़ा अध्ययन रहा है, याग का यह एक क्रियाकलाप अपने में एक अद्वितीय कहलाता है। तो हमारे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई, कालों में यह वर्णन किया है, कई काल मुझे स्मरण आते रहते हैं जब मैं यह विचारता हूँ कि याग अपने में बड़ा अद्वितीय माना गया है। अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गो मेध याग की चर्चा कर रहे थे, और गो मेध किसे कहते हैं? पशु की रक्षा को। क्योंकि उसमें ब्रह्मचारी भी आता है और गो नाम पशु को भी कहा गया है, जो दुग्ध देने वाला हो। और देखो, यहाँ गो नाम पृथ्वी को भी माना है, जो नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को प्रदान करने वाली हो। वह अपने में धारयामि बनी रहती है, तो विचार विनिमय यह है कि मेरे प्यारे पूज्यपाद गुरुदेव अपने बड़े भव्यता में परणित करते रहे हैं। तो विचार आता रहता है, कि हमारा विचार भी मानो उन विचारों में मग्न रहना चाहिए। जिन विचारों की भूमिका एक महानता में परणित बन करके रहती है। विचारां ब्रह्मा देखो, पूज्यपाद गुरुदेव उच्चारण कर रहे थे। गो मेध याग गो नाम पशु को कहा गया है। हे राजन्! तेरे राष्ट्र में पशु की रक्षा होनी चाहिए, गो की रक्षा होनी चाहिए, और गो रक्षा उस काल में होती है, जबकि राजा अपने में दुग्धाहार प्रारम्भ करता है, दुग्धाहार करता है। वही तो भूमिका विचित्र बन करके राजा के मस्तिष्क को ऊँचा बनाती है। तो मानो देखो, गो मेध गो नाम इन्द्रियों का भी है, तेरे राष्ट्र में इन्द्रिय जय होनी चाहिए। जिससे इन्द्रियाँ पवित्र बन करके इन्दियां ब्रह्मणा कृते मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं आपको उच्चारण करने के लिए मैं उच्चारण करना चाहता हूँ, कि महानता की

प्रतिभा में सदैव रत्त रहना चाहिए।

प्रभु यागिक

आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अपने विचार याग के सम्बन्ध में प्रभु को याज्ञिक माना है, यह भी बड़ा विचार है, परन्तु मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ, कि हे राजन! तू गो नाम के पशु का पालन कर। ऐसा ऋषि मुनियों का एक संदेश माना गया है, परन्तु आधुनिक काल में वर्तमान के काल में, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मानो देखो, ब्रह्मणां ब्रहे कृतं राष्ट्रवाद की चर्चाओं में जाना ही अप्सराम माना गया है। परन्तु मैं तो यह कहता रहता हूँ, क्या मेरे विचारों की मेरा जो हृदय है, वह मानो जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ है, और मानो देखो, मेरा तो अन्तर्हृदय यज्ञमान के हृदय के साथ रहता है। हे यज्ञमान! मेरा अन्तरात्मा यह कहता है, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, एक समय मानो देखो, जिस भूमि पर यह जिस स्थली पर याग हुआ है, एक समय देखो, यहाँ एक याग हुआ था, जब महर्षि वेदव्यास ने एक याग कराया था, और महर्षि वेद व्यास ने एक याग कराया, और वह याग मानो देखो, ब्रह्मचारियों के सहित हुआ, उस याग में नाना ऋषियों का आगमन हुआ, और वह याग मानो देखो, उसके ब्रह्मा बनं ब्रहे वह ब्रह्मा अपने में अपनी आभा को प्रगट कर रहे थे, जब मुझे यह स्मरण आता है कि इस स्थली पर आज यह याग का सम्पन्न हुआ है। एक याग इस प्रकार के याग मानो देखो, द्वापर के काल में त्रेता के काल में क्या द्वापर के काल में एक याग हुआ था, और वह याग महर्षि वेद व्यास मुनि की संरक्षणता में हुआ, और उस याग में देखो, बुद्धिमानो का नृत्त होता रहा, और वैज्ञानिक तन्तुओं को देखो, निकासने की क्षमता रही, तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो जानते हैं, वह जानते है कि यहाँ एक याग हुआ याग हुआ, क्या विद्यालय भी था, और वह विद्यालय मानो देखो, और वह विद्यालय उसमें महर्षि वेदव्यास और उसमें वहाँ मानो देखो, द्रोणाचार्य भी देखो, यहाँ पधार करके उन्होंने याग किया है, तो याग का अभिप्रायः यह है, कि भू वर्णा भू वर्णा सुताम देवाः आभ्यां दधनं ब्रह्मा लोकां मानो देखो,

याग अपने में अद्विितीय क्रियाकलाप था जिसके ऊपर मानो परम्परागतों से अध्ययन करता रहा है, और उसे क्रियातमकता में लाने का भी प्रयास करता रहा है।
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो बड़ी अद्विितीय, अद्विितीय चर्चाएं प्रगट कीं हैं परन्तु मैं तो केवल इतना उच्चारण करना चाहता हूँ, एक समय माता कुन्ती ने भी यहाँ याग किया था अपने पांचों पुत्रों के सहित, और याग में देखो, जैसे याग तो परम्परागतों की मानव की एक पुंजी कहलाती है, और वह मानव के हृदय को पवित्र बनाने वाला है तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैंने वह समय दृष्टिपात किया, जिस समय में मानव अपनी धाराओं में सदैव रत्त रहा है और उद्गीत गाता रहा है, उदभवंतं ब्रह्मणे लोकां पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में यह वर्णन कराया, परन्तु आज मेरा कोई विशेष विचार नही, अरे, यहाँ गो मेध यागों की चर्चाएं, यहाँ पशुओ की व्याख्या जानने में भी मानव आलस्य और प्रमाद में रत्त रहता है। आधुनिक काल ऐसा यदि राजा से यह कहें कि हे राजन! तेरे राष्ट्र में गऊओं की रक्षा होनी चाहिए, और मानो देखो, गऊओं का पालन होना चाहिए, तो राजा कहता है कि इन वार्त्ताओं को श्रवण करने का मेरे द्वारा कोई समय नही है, मानो समय का अभाव हो जाता है, समय के अभाव में परिणत हो जाता है, और जहाँ समुद्रों में रहने वाला जो मानो देखो, जो जलचर है, वह जलचर यदि देखो, जो संसार प्राणी मात्र के विष को एक दूसरे में निगलता रहता है, उसे जल शोषण करता है, और मछली उसे अपने में ग्रहण करती है, परन्तु देखो, राजा उसका उदघाटन कर रहा है क्या यह दुर्भाग्य है प्राणियों का, मानो देखो, उसके उद्गीत में लगा हुआ है, और यह चाहता है, कि उससे जब यह प्रश्न करते हैं क्या तू ऐसा क्यों कर रहा है तो वह कहता है कि प्रजा को कुछ अन्न चाहिए, क्या यह अन्न तो नही है, मानो देखो, अन्न तो कृषक पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न करता है, और समुद्रों की जो धाराएं है, यहाँ एक एक बड़ी विचित्र मानी गई है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा हे प्रभु! यह जो राष्ट्रवाद की जो घोषणा बनी हुई है, यहाँ देखो, संसार में राष्ट्र भी नही रहना चाहिए, मैं तो यह कहता रहता हूँ, क्योंकि यदि राष्ट्र होगा उसे द्रव्य उपार्जन करने के लिए कोई न कोई क्रियाकलाप करना ही होगा। परन्तु यह द्रव्य को एकत्रित करने का क्रियाकलाप है, यह

मानव के चरित्र और मानव की आभा को बनाने वाला देखो, राष्ट्र अपने में क्रियाकलाप से शून्य होता जा रहा है, जब मैं यह विचारता रहता हूँ, क्या मानवीयता और याग का एक नृत्त होना चाहिए। हाँ, राजा याग कर रहा है, क्या मेरी आयु प्रबल हो जाएं, आयु के लिए याग करता है, और देखो, मृत्यु से बचने का प्रयास करता है। मृत्यु आनी अवश्य है। परन्तु देखो, इस मृत्यु को कोई भी दूरी नही कर सकता।

यहाँ कागभुषुण्ड जी जैसे महर्षि लोमश मुनि महाराज से एक मेरे विधाता से यह प्रश्न किया था श्वेति मुनि ने क्या महाराज! क्या कहाँ गमन कर रहे हो? आप आपने कोई आसन का निर्माण नही किया। तो महर्षि लोमश ने कहा मेरा सूक्ष्म सा आयु है, मेरा बहुत सूक्ष्म आयु है उसे व्यतीत करने के लिए मैं एक आसन लिए रहता हूँ। जहाँ मुझे रात्रि होती है। मैं विश्राम कर लेता हूँ। ऋषि ने कहा महाराज! कितनी आयु है उन्होंने कहाँ की देखो, एक एक कल्प की आयु है हमारी, तो देखो, जब ऋषि कल्पों की आयु का वर्णन करते हैं, और वह भी मानो दृष्टिपात नही आ रहे हैं, वह ज्ञानी जानता है, कि तेरी आत्मा के साथ जो संस्कार है, तेरी आत्मा के साथ जो तेरा नृत्त हो रहा है, वह नृत्त मानो देखो, चला जाएगा, परन्तु आत्मा का विनाश नही होगा। जब महर्षि लोमश यह कहते हैं और वह भी दृष्टिपात नही आ रहे हैं। तो विचार आता है कि हे राजन! तू मृत्यु से क्यों भयभीत हो रहा है, अरे, यह मृत्यु तो आज नही तो कल अवश्य आनी है परन्तु मानो देखो, मध्य काल में ऐसे क्रियाकलाप करने हैं, जिन क्रियाकलापों से राष्ट्र में देखो, प्रजा में शान्ति हो राष्ट्र में देखो, यदि आज कोई मृत्यु से विजय होना चाहते हों, वह याग करने वाले बनें, आज राजा देखो, जो राष्ट्र के नायक हैं, वह अपने गृह में देखो, याग करने लगें तो देखो, आज ही इनकी आयु प्रबल हो जाएं, और इनकी मृत्यु नही होगी, क्योंकि इन्हें ज्ञान भी हो जाएगा, जब मैं यह विचारता चाहता हूँ, कि इनके गृहों में याग होना चाहिए, परन्तु उन्हें भय है, कि मोहम्मद वादी यह न कह दें हिन्दु प्राणा प्राणा कृति यह आर्य बन गया है, याग करने लगा है, यदि ईसा के मानने वाला यह न कह दे, पश्चिम से ऐसी ध्वनि न आ जाएं, देखो, इस भारत भूमि पर याग करने लगा है राजा, अरे, यह सब उनकी धृष्टता का एक मूल है अरे, मानो

जब शुद्ध विचार कार्यों को नही कर पाते, अशुद्धों में देखो, तुम्हारा हृदय मन मग्न होता है, जब तुम देखो, मछली क उदघाटन करते हो अमृता कर सकते हो तुम याग को अपने गृह में नही रचा सकते, जिससे तुम्हारा आयु प्रबल हो जाएगा, मेरे जीवन का मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे बहुत सी वार्त्ता प्रगट कराई हैं, यहाँ राजा अनुष्ठान करते रहे हैं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव राजा सगर की चर्चा कर रहे थे, राजा सगर के यहाँ प्रतिवर्ष मानो देखो, अश्वमेध याग होते थे, इन्द्र के यहाँ अश्वेमध याग होते थे, इन्द्र का नामोकरण देखो, उद्गीत रूप में आता रहता है, आज जिस राम की गाथा का वर्णन प्रत्येक प्राणी कर रहा है, राम प्रातःकालीन याग करता था, और याग करके देखो, अपने राष्ट्र को यह संदेश देता था कि प्रत्येक गृह में विचारों की और देखो, साकल्य की सुगन्धि आनी चाहिए। यह उनका संदेश था परन्तु उस संदेश को तुम ग्रहण करने वाले बनों जब यह विचार आता रहता है। जब मैं निकृष्ट काल को दृष्टिपात करता हूँ, और भव्यता में मैं इसके ऊपर सन्तुलना करता हूँ, तो आश्चर्य चकित हो जाता हूँ।

महाराजा रघु का जीवन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह वर्णन कराया, कई यागों में ले गये, परन्तु देखो, महाराजा रघु जो राम के वंशलज कहलाते थे देखो, राजा रघु ने तो सर्वत्र याग कर दिया था, और ब्रह्मचारी जब उनके लिए दक्षिणा लेने के लिए अपने पूज्य गुरु के लिए आए तो उन्होंने देखो, कहा सम्भो ब्रह्मा देवत्वां क्या अमृतं देखो, जब वह एक सूक्ष्म पात्र में उनका देखो, जल को ले करके राजा रघु ऋषि वरतेन्तु के द्वारं ब्रह्मे उनके द्वार पर पंहुचे, तो उन्होंने कहा जल ब्रहे मेरे प्यारे! देखो, वह अपने में आश्चर्य हो गये, उन्होंने कहा राजन! मैं तो यह विचार करके आया था, कि मुझे लाखों मुद्रा चाहिए, और गुरु को दक्षिणा देनी है, और इन पात्रों में यह तुम दे रहे हो, राजा ने कहा प्रभु! आप आसन ग्रहण कीजिए, मैं यह अमृतां दिव्यां मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी यह वर्णन कराया है, क्या जब देखो, राजा रघु ने देखो, कुबेर पर आक्रमण करने का विचार किया, रात्रि का काल था, अपने राष्ट्रों नायकों के द्वारा राजा रघु ने यह अपने में विचार

बनाया कि आज हम कुबेर को विजय करें। जब कुबेर को यह प्रतीत हुआ कि राजा रघु ऐसा महापुरूष है। जो सर्वत्र याग करने वाला है, और ब्रह्मचारी को दक्षिणा देनी है, तो उस समय ब्रह्मा कृता सुतः देखो, वह महाराज कुबेर ने अपने कुबेरों से कहा जिनके द्वारा द्रव्य था, जाओ रघु को द्रव्य प्रदान करके आओ, राजा रघु के यहाँ जब याग को देखो, कुबेर के यहाँ द्रव्य स्वर्ण मुद्रा आ गई, मुद्रा आ जाने के पश्चात उन्होंने देखो, वह प्रदान की, लीजिए भगवन! महाराज रघु बड़े प्रसन्न हुए। अब वह द्रव्य जितना देना था, वह ब्रह्मचारी ने स्वीकार कर लिया, अब द्रव्य रह गया है, कुबेर को अपने यहाँ उस द्रव्य को नही चाहता और वह द्रव्य राजा रघु भी नही चाहता वह ब्रह्मचारी को देना चाहता है। और ब्रह्मचारी यह चाहता है कि मुझे इतना द्रव्य प्राप्त हो, जितना मुझे लेना है, वह मुझे पर्याप्त हो गया है, मैं इस द्रव्य को नही लूंगा, अब देखो, इसमें जब संघर्ष हो गया देखो, महाराजा कुबेर के और राजा के ब्रह्मचारी के मध्य में तो वशिष्ठ मुनि और ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हुआ, और उन्होंने यह कहा कि यह जो द्रव्य तुम नही लेना चाहते, यह गऊओं के आहार में इस द्रव्य को प्रदान किया जाएं। जब मानो देखो, इस प्रकार के यागों की पूजा का जब प्रसंग आता है। तो मेरा अन्तरात्मा गद् गद् हो जाता है परन्तु जब मैं आधुनिक काल में इन पशुओं को और गऊओं को राजा के विचारों से नष्ट होता, जब दृष्टिपात करता हूँ तो हृदय दुखित हो जाता है जब विचार आता है कि प्रत्येक गृह स्वामी को अपने यहाँ गऊओं का पालन करना है। जब यह विचार आता है कि प्रत्येक मानव और राजा के यहाँ भी एक गऊ होनी चाहिए, उसका दुग्धाहार करना चाहिए, क्योंकि राजा रघु के यहाँ एक कामधेनु गऊ थी, राम के यहाँ एक गऊ थी, देखो, वह अपने में कृषि का उद्गम करके उसे अन्न दे करके उस दुग्ध का आहार करते रहे हमारे यहाँ। जब मैं विचारता रहता हूँ, क्या दूसरे जितने भी रूढ़ियों के आचार्य भी गऊओं के दुग्ध का आहार करके वह भी महान बनें है। बुद्धि विकसित हुई है, और पशुओं का पालन करने वाला मानो देखो, महानता में गमन करता रहता है, क्योंकि वह मन का विषय है, वह मन की धारा है, मन चाहता हैं क्योंकि मन भी पशु है, और पशु में वह प्रसन्न रहता है, तो इसीलिए वह पालना में

रत्त रहना चाहिए। राजा के यहाँ याग हो और याग के पश्चात कामधेनु जो दुग्ध है, दुग्धहार करा करके हमारे यहाँ ऐसे ऐसे ऋषि हुए हैं, जिन्होंने देखो, गऊ के घृत के द्वारा और गऊ के ही दुग्ध के द्वारा जो याग किया जाता है, देखो, जिससे वायुमण्डल पवित्र बनता है, तो ऋषि मुनियों ने यह बड़े नृत्त किए हैं, आचार्यों की प्रतिभा रही है, महाराजा वशिष्ठ के यहाँ माता अरूणधती और ब्रह्मचारी जन गऊ घृत से याग करते रहे हैं, राम ने जब चौबीस वर्ष का अनुष्ठान किया था, तो प्रातःकालीन वह गऊ के द्वारा वह याग करते रहे, क्योंकि देखो, कामधेनु गऊ ने महारजा इन्द्र के यहाँ से प्राप्त हुई, महाराजा इन्द्र ने देखो, वह प्रदान की और उस गऊ के आहार करना, गऊ के दुग्ध के पान करना, और घृत के द्वारा याग करना, यह राम का क्रियाकलाप रहा, मानो समय पर जब देखो, यहाँ महात्मा बाल्मीकि आश्रम में देखा जब दिव्या सीता का आगमन हुआ और वह आयुर्वेदाचार्य थे। क्योंकि आयुर्वेद को जानने वाले देखो, रघु वंश में यह परम्परा रही क्योंकि देखो, जब भी सन्तान का उपार्जन हुआ, यह नियमावली बनी रही थी, कि क्या राजा के राष्ट्र में मानो जो भी राजलक्ष्मियों के सन्तानों का जन्म हो, वह आयुर्वेदाचार्यों के गृहों में होना चाहिए। और वहीं अस्त्रों शस्त्रों की विद्या माता और आचार्यों को देनी चाहिए। यह प्रायः देखो, राष्ट्र में सीता को भयंकर वनो में मानो देखो, यह कहा कि तुम्हारे सन्तानं ब्रह्मे वह सन्तान का जन्म कहाँ हुआ बालमीकि आश्रम में, बाल्मीकि मुनि और देखो, वह सब प्रातःकालीन देखो, सीता याग करती रहती थी। याग में परणित होना याग में अपने जीवन को हूत कर देना यह क्रियाकलाप एक महानता का एक कर्म है। जिससे वायुमण्डल पवित्र हो, ब्रह्मचारी किसी प्रकार की ऐसा वायु उसे स्पर्श न कर जाएं, जिस वायु से उसका निधन हो जाएं या उसकी अन्तरात्मा का निधन हो जाएं। तो इस प्रकार का विचार हमारे यहाँ, परम्परागतों से रहा है। तो मैं आज इसीलिए प्रसन्नता में की यह भूमि पर मानो देखो, यह हमारी आकाशवाणी जा रही है मानो देखो, यह भूमि किसी काल में देखो, यह राजस्थली के रूप में रही है, कहीं देखो, यह भूमि न्यायालय के रूप में रही, कहीं यह भूमि देखो, दुराचार क्षेत्र में रही है, कहीं यही भूमि शमशान भूमि बन करके रही है, और आज

प्रसन्नता है, कि पुनः से एक याग भूमि बन गई है। याज्ञिक भूमि बन करके मानो देखो, मानव को भिन्न भिन्न प्रकार की प्रेरणादायक स्रोत बनी हुई है।
जब यह विचार आता रहता है तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को प्रायः धन्यवाद देता रहता हूँ और मेरा यह अन्तरात्मा कहता है कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, मानो देखो, तेरे जीवन में एक यागमयी जीवन चलता रहे ऐसी मेरी मनोकामना रहती है कि मैं सदैव, मेरा अन्तरात्मा क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव तो बड़े बड़ेअध्ययनों की चर्चा करते हैं, इनका विशाल जो अध्ययन है, वह महानता में गमन करता रहा है, परन्तु देखो, मैं यह कहता रहता हूँ, असुतां देखो, साधारण अपनी वाणी में, मैं अपने विचारो में यही कि देखो, यज्ञमान मानो देखो, सदैव इनके जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। उनके जीवन की प्रतिभा महान बनी रहे, और जिस भूमि पर यह याग का आयोजन हो रहा है, यह हमारे जिए सबके लिए देखो, यह भूमिका देखो, जैसे भी इसके संस्कार देखो, वह वह पनपे जाते हैं, वह पनपाए जाते भी हैं, जैसे देखो, जिनके विचार पनपाने के लिए देखो, पुनः से यागों का समय आता रहा और देखो, उस भूमि को दमन करने के लिए तरंगों को दमन किया गया, जो तरंगें पुनः से ऊभर करके हमारे समीप आ गई हैं, हमारे समीप मानो ऊर्ध्वा बन करके हमारे अन्तर्हृदयों में देखो, उनका प्रवेश हो गया है। मैं विचार देता हुआ दूरी न चला जाऊं यह वह भूमि है, जहाँ देखो, वह द्रोणाचार्य ने याग किया वेद व्यास ने याग किया और वेद व्यास ने देखो, विज्ञानशाला के लिए भी बहुत से अमृतां देखो, यहाँ एक काल ऐसा आया, जिस काल में देखो, पोथियों का विनाश हुआ, एक काल ऐसा आया जो पोथियों का क्योंकि रूढ़िवादी जो होते हैं, एक जैन समाज आया था, जो महावीर के मानने वाला परन्तु देखो, उस समाज ने पोथियां नष्ट कर दी। अग्नि के मुखारबिन्दु में परणित कर दी। देखो, यह अज्ञान कैसे यह रूढ़िवाद क्यों आया, क्योंकि वेद के शब्द अशुद्ध हो गये, वेद के शब्दों की विवेचना नही कर सके। वह उसका अध्ययन नही कर सकें। परन्तु देखो, अपने हृदयों की मनों की जैसी वेदना वैसा ही क्रियाकलाप प्रारम्भ हुआ, जब मैं यह विचारता रहता हूँ, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह प्रगट कराता रहता हूँ,

क्या इस वाक् में मुझे जाना नही हैं, मैं इन क्षेत्रों में किसने क्या किया है, परन्तु मैं यह अवश्य विचारता रहता हूँ, कि हे राजन! यदि तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है। अपनी आयु को दीर्घ बनाना चाहता है, तू कहीं देखो, किसी भी स्थलियों में अपने जीवन के लिए याग करना चाहता है, राजन! तू स्वतः याग करने लग तेरा मृत्यु का क्रियाकलाप तेरे समीप और देखो, मृत्यु का भय समीप न रह सकेगा। तेरा क्रियाकलाप इतना महान और पवित्र बनता चला जाएगा मानो देखो, यह यह विचार प्रायः तेरे ही कर्मों के अनुसार तेरे ही क्रियाकलापों के अनुसार समाज उसी को बरतने लगेगा। जब समाज में सुगन्धि आ जाएगी तो देखो, एक दूसरे को नष्ट भी नही करेगा, और रूढ़िवाद समाप्त हो जाएगा। यहाँ मैं कहता रहता हूँ यहाँ कोई नानक के मानने वाला है, मानो देखो, उनके विचारों से समाज दूरी चला गया है, मोहम्मद के मानने वालों का विचार भी दूरी चला गया, उनके मौलिक जो विचार है वह सुगन्धित रहे हैं, परन्तु देखो, जब आलस्य और प्रमाद में जब कोई भी कटुता का कोई भी सम्प्रदायों का जन्म होता है, वह कटुताओं में ही उसका विनाश हो जाता है, मैं यह कहता रहता हूँ, जब एक एक पोथी के निर्माण अपने हृदय के विचारों को यह समाज दमन करने वाला है, दमन नही होना चाहिए। उसका विचार क्योंकि वह स्वतन्त्र है वह प्रभु के राष्ट्र में है, और उसने मानो उसके हृदय से किसी पोथी का निर्माण किया है, तो उसका निर्माण किया हुआ उसके हृदय की वार्त्ता को स्वीकार करो। वह तो परमात्मा की वाणी है, हृदय तो हृदय में ही तो परमात्मा का वास रहता है, और उस वाणी को जो अपने में ग्रहण करता है। अरे, उसका अपने में उन विचारों का अध्ययन किया जाएं और अध्ययन करके जो सत्य को सत्य कहता है, और अशुद्ध को अशुद्ध कहता है, वही तो समाज में प्रभु के राष्ट्र में पवित्र माना जाएगा, अन्यथा पवित्रता कैसे आयेगी पवित्रता का ह्रास होता जा रहा है।

प्रत्येक सम्प्रदाय अपने में पवित्रता का ह्रास कर रहा है, परन्तु एक दूसरे की भाषा विचार हृदय की वेदना को नष्ट करना चाहता है, मैं इन विचारों में नही जाना चाहता हूँ, केवल यह विचार विनिमय हमारा है, कि हम अपने में महान बनते हुए एक दूसरे

के विचारों को हनन करने वाले न बनें चाहे राजा हो चाहे समाज हो परन्तु चाहे देखो, योगेश्वर हो प्रत्येक मानव अपने विचारों में महान है, और उन विचारों को श्रवण करो, उन विचारों को मानो देखो, उन विचारों में एक महानता का जो दर्शन है, उसी का तो अध्ययन करना है, जो हृदय से तरंगें उत्पन्न होती है, उन्हीं तरंगों का अन्तरिक्ष में देखो, वही शोधन और वही देखो, विकृतियां बन करके रहती हैं। जब मानव का वाणी विवाद समाप्त हो जाता है, उसमें अशुद्धियां आ जाती हैं, तो वायु मण्डल अशुद्ध हो जाता है, और जब मानव सत्यवादी बन जाता है, विचारों को धारण करता है, वही मानो देखो, अपने में पवित्रता की आभा में रत्त हो जाता है, आज मैं विशेष चर्चा नही विचार तो बहुत देने हैं, उच्चारण करने के लिए हैं, परन्तु इतना समय आज्ञा नही दे रहा है, विचार केवल यह है, कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाता हुआ मेरा तो अन्तिम एक ही वाक् रहता है, कि मेरा जो अन्तर्हृदय है, वह यज्ञमान के साथ रहता है, हे यज्ञमान! तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तुम्हारे द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहे, उसका दुरूपयोग न हो, मानो उसका सदुपयोग होता रहे। तुम्हारे द्रव्य में महानता का जन्म हो, मानो देखो, ऐसी मेरी भावना रहती है, इसके साथ मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ कटुता को त्याग करके अमृतां अपने में कुछ विचार दिये, परन्तु कटुता तो इनका स्वाभाविक एक गुण ही माना गया है, विचार आता रहता है, आज का विचार बड़ा भव्य और पवित्र और राष्ट्र के लिए मानो देखो, जो इनका संदेश है, वह बड़ा विचित्र है, क्या राजा को जो प्राचीन काल में देखो, हमारे यहाँ याग में परणित रहे हैं, राजा वास्तव में जो याग करता रहता है, तो उसकी मृत्यु नही होती और उसका जो विचार है राजा का उसकी जो मनोवृत्तियाँ है। वह याग में परणित हो करके देवता उसकी रक्षा करते हैं, और देवताजनों को जो त्याग देता है, वह मृत्यु को प्राप्त होता है, ऐसा हमारा मन्तव्य आज

का विचार अब समाप्त अब वेदों का पठन पाठन।

१७ 14 05 1989 पुष्प 57 आत्मवेत्ता और ब्रह्मवेत्ता कौन

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, कि आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है, और उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है। क्योंकि वह सर्वज्ञ है, और जितना भी यह जड़ जगत और चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है। उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात आते रहते हैं, मानो वह दोनों प्रकार के जगत में निहित रहते हैं। जड़ और चेतना में उसी की प्रतिभा है। क्योंकि जड़वत में भी वे परमपिता परमात्मा एक मौलिक रूपों से प्रायः विद्यमान रहते हैं, इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती और उसकी अनन्तता के ऊपर हम सदैव चिन्तन और मनन करते चले जाएँ। क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने, परम्परागतों से बेटा! उसकी महती के ऊपर बड़ा महान चिन्तन किया है और इस अनुपमता को जानने के लिए, अपने को त्याग और तपस्या में ले गएं हैं। क्योंकि जब तक मानव त्याग और तपस्या में परणित नहीं होता तब तक उस परमपिता परमात्मा की महती को हम जान नहीं पाते। क्योंकि वह इतना अनन्तमयी है, एक एक कण कण में व्याप्त है, और वह व्यापता हुआ जड़ और चैतन्य, दोनों को स्थिर किए रहता है। तो इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती है अथवा अनुपमता है उसके ऊपर विचार विनिमय करते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। क्योंकि यह संसार एक आवृत्ति कहलाता है। इसमें प्रत्येक मानव अपनी अपनी विचित्र उड़ानें उड़ता रहता है। मानव सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के, वर्तमान के काल तक अपने अपने दृष्टिकोण से इस संसार के ऊपर मनन और चिन्तन करता रहा है।

मेरे पुत्रों! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान हो करके,

अपने में अनुभव करते रहे और यह विचार विनिमय करते रहे कि वह जो परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं मानो उसका ज्ञान और विज्ञान कितना अनुपम है। मानो देखो, जब मानव ने यह विचार किया, द्वितीय मानव इसी आभा को लेकर चिन्तन करने लगा, कि परमपिता का जो अनुपम है, वह आध्यात्मिकवाद है। क्योंकि प्रत्येक मानव के हृदय में, एक आकाँक्षा लगी रहती है, कि मेरी अन्तरात्मा शान्त हो जाएं। मेरी अन्तरात्मा में किसी प्रकार की भी विकृतियाँ न रहे, और न यह विचार रहे कि मेरी मृत्यु आने वाली है। यह भी मानव को चिन्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि जो शरीरम् विकृतं ब्रह्माणो लोकम् शरीर का जो निर्माण हुआ है, या किसी भी वस्तु का निर्माण हुआ है उसका विच्छेद होना, विकृत होना बहुत अनिवार्य होता है। जब हम इसके ऊपर और मनन करना प्रारम्भ करते हैं तो ऋषि मुनि यह मनन करते हैं कि आत्मा में शान्ति कैसे स्थापित हो? विचार आता रहता है, दार्शनिक कहता है, कि आत्मा को शान्ति उस काल में होती है, जबकि संसार का जितना भी अवयव हमें दृष्टिपात आ रहा है, इस संसार को अपने में जब समेट लेता है, तो आत्मा में शान्ति की स्थापना हो जाती है, और जब तक इस संसार में वह सिमटता नहीं है, मानव इस बिखरे हुए जगत को अपने में नहीं समेट लेता, तब तक वह आत्मवेत्ता नहीं और आत्मा में शान्ति की स्थापना नहीं कर सकता। तो मेरे प्यारे! हमारे यहाँ यह सर्वभौम एक सिद्धान्त माना गया है, कि प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकाँक्षा लगी रहती है, कि मैं अन्धकार से प्रकाश में चला जाऊँ, मेरे जीवन में अन्धकार न रहे। इस प्रकार अपनी आभा में रत्त होने वाला अपनी वृत्तियों में रत्त रहना चाहता है।

आज मैं तुम्हें, विशेष चर्चा न देता हुआ, विचार यह देता चला जाऊँ कि हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है? वेदमन्त्र की प्रतिभा हमें किस मार्ग के लिए प्रेरित कर रही है? आज मुझे कहीं से यह प्रेरणा आ रही है कि आत्मा के सम्बन्ध में कोई विचार विनिमय दिया जाएं। क्योंकि आत्मवेत्ता बनना, प्रत्येक मानव के हृदय की एक अभिलाषा बनी हुई है, और वह यह चाहता है, कि मैं आत्मवेत्ता बन जाऊँ। तो मेरे प्यारे! जैसे सृष्टि के प्रारम्भ में, प्रत्येक मानव, अपने में समाहित हो गया है, और समाहित होने से ही मुनिवरों!

देखो, उसमें समा जाता है और उसी में वो अपने को समेट लेता है और वह शान्ति की आभा में रत्त हो जाता है।
आओ, मेरे पुत्रों! आज मैं तुम्हें एक ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूँ, जहाँ बेटा! नाना जिज्ञासु विद्यमान हो करके, आत्मा के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते रहे हैं। मेरे पुत्रों! देखो, मुझे जहाँ वशिष्ठ मुनि महाराज का जीवन स्मरण आता है, और भी नाना ऋषि मुनियों के जीवन की प्रतिभा अथवा उनकी महानता का वर्णित वृत विचार हमारे समीप आता रहता है। तो विचार क्या मुनिवरों! देखो, आओ,आज मैं तुम्हें एक ऐसे आसन पर ले जाना चाहता हूँ, जहाँ ऋषि मुनि अपनी आत्म शान्ति के लिए, अपने में रत होते रहे हैं। और मुनिवरों! देखो, अपने में विचार वृत्तियों में रत्त होना उनका प्रायः कर्त्तव्य माना गया है। मेरे प्यारे देखो, एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे ब्रह्मनिष्ठ कहलाते थे ब्रह्मवेत्ता बनना आश्चर्य नहीं होता। ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता है जो शोकातुर नहीं होता। वह सदैव एक रस रहने वाली उसकी प्रवृत्ति बन जाती है, तो वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि विश्वामित्र दोनों का एक विचार विनिमय हो रहा था। महर्षि विश्वामित्र ने कहा हे प्रभु! यह ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? तो महर्षि वशिष्ट मुनि महाराज ने कहा कि ब्रह्मवेत्ता वह होता है जो अपनी अन्तरात्मा को जान लेता है। अन्तरात्मा को कैसे जाना जाता है? अन्तरात्मा को जब तक कोई मानव नहीं जानता जब तक प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को नहीं जान लेता। क्योंकि हमारे यहाँ दो प्रकार के यागों की विवेचना परम्परागतों से आती रही है, एक आध्यात्मिक याग है, और एक भौतिक याग कहलाता है। जब तक वह भौतिक याग को आध्यात्मिकवाद में नहीं समेट लेता तब तक मानव याज्ञिक नहीं कहलाता। वह आत्मा के सम्पर्क में जब तक प्रवेश नहीं करता, तब तक मुनिवरों! देखो, वह अपने में पूर्णत्व याज्ञिक नहीं कहलाता।
तो मेरे प्यारे! महर्षि विश्वामित्र ने कहा प्रभु! ये आध्यात्मिक और भौतिक याग किसे कहते हैं? तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि भौतिक याग तो वह कहलाता है, जो सर्वभूतों में एक परमात्मा का दर्शन करने वाला है, और वह मानव प्रत्येक साकल्य

को परमात्मा की दी हुई सम्पदा स्वीकार करता है, और वह अग्न्याधान करता हुआ अग्नि के समीप जाता है। और अग्नि से कहता है हे अग्ने! तू आ और मेरे हृदय में प्रदीप्त हो जा। हे अग्ने! तू आ प्रदीप्त हो करके मेरे साकल्य को स्वीकार कर और देवताओं को तू उसे प्रदान कर। उस यज्ञमान और उद्गगाता की पुकार को वह स्वीकार करता हो और स्वीकार करके अग्नि प्रदीप्त हो जाती है और उस अग्नि को मानो देखो, देवताओं के लिए वह अग्नि प्रत्येक साकल्य को अपने में धारण करती हुई, मानो देखो, उससे देवताओं की हवि बन जाती है, वही तो देवताओं की हवि कहलाती है। यह भौतिकवाद कहलाती है, और प्रत्येक पदार्थ मुनिवरों! उससे आच्छादित हो जाता है, ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहने वाले भी उसी से आच्छादित हो जाते है। तो मेरे प्यारे! वह अग्निम् ब्रह्म यह अग्नि देवताओं का मुख कहा जाता है और उस मुखारबिन्दु में जो साकल्य प्रदान किया वह सामूहिकता में परणित कर देती है, विज्ञान का युग आ जाता है। विज्ञान की वृत्तियों में रत्त रह करके मानव नाना प्रकार के पदार्थों को अग्नि के सम्मुख ला करके ओत प्रोत करा देता है वहीं मुनिवरों! देखो, दूषित वायुमण्डल भी हो जाता है, परन्तु देखो, उस दूषिता को नष्ट करने के लिए मुनिवरों! यह अग्न्याघान किया जाता है, जिससे मुनिवरों! देखो, सर्वत्र मानव एक रस हो करके उसकी आराधना और उसकी महानता का वह गुणगान गाने लगे हैं। परन्तु इसको हम भौतिक विज्ञान या भौतिक याग कहते हैं। जहाँ मुनिवरों! देखो, अग्नि है, यज्ञशाला है, जल आपोमयी ज्योति है, और यज्ञमान, उदगाता, अध्वर्यु विद्यमान हो करते अपने में याग करने लगते हैं। मेरे प्यारे! यहाँ अध्वर्यु नाम, हमारे यहां वैदिक साहित्य में, अध्वर्यु उसे कहते हैं जो हिंसा से रहित होता है, जो हिंसा में आने वाला नहीं है।

आचार्यों ने बेटा! राजा का नाम भी अध्वर्यु नियुक्त किया है, और अध्वर्यु नाम मुनिवरों! देखो, उस मानव को अध्वर्यु कहते हैं, जो याग का धिपति कहलाता है और हिंसा से रहित होने वाले याग को अपने में स्वीकार करता है वह अध्वर्यु कहलाता है। हे अध्वर्यु! आ तू हमारे अग्नि के मुखारबिंदु में साकल्य को प्रदान कर। ऐसी प्रार्थना करता हुआ वह याग में, भौतिकता में रत्त हो जाता है। और वह प्रत्येक अणु और परमाणु में रत्त

हो करके वही साकल्य रूप बन करके मेरे पुत्रों! वायुमण्डल को वह पवित्र बना देता है, तो उस याग का नाम भौतिकवाद कहा जाता है, और भौतिक विज्ञानवेत्ता इसी की पुकार में बेटा! देखो, अपने को रत्त कर देते हैं, तो अभ्युदय हो जाता है। वह प्रकाश में अपने को ले जाने का प्रयास करता है। द्वितीय जो विज्ञान है वह आध्यात्मिकवाद कहलाता है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा लगी रहती है कि मैं आध्यात्मिकवाद को जानना चाहता हूँ, जिससे आत्मा में एक महानता का जन्म हो जाएं या आत्मवेत्ता अपने को ब्रह्मनिष्ठ स्वीकार करें।

ब्रह्मवेत्ता

तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा हे विश्वामित्र! हे ऋषिवर! मैंने जितना अध्ययन किया उतनी वार्त्ता प्रगट करूंगा, और विशेष वाक् मैं प्रकट नहीं कर पाऊंगा। परन्तु मेरा विचार यह बना है, मेरा अध्ययन है कि अमृतम् आध्यात्मिकवाद, आध्यात्मिक याग में, जब प्रवेश हो जाता है, तो उस समय मानव के हृदय में सर्वस्व साकल्य बन जाते हैं। जैसे मानव की पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, और पांच ज्ञानेन्द्रियों का जो विषय है वह हृदय में समाहित हो जाता है, हृदय में अगम्य हो जाता है जैसे मानव के हृदय में इन्द्रियों से जागरूकता आई, मानव ने रूप को दृष्टिपात किया नेत्रों के समीप, मानो देखो, नेत्रों की प्रतिभा वह हृदय में रूप समाहित हो जाता है। घ्राण ने नाना प्रकार की मंद सुगंध को लिया वह भी हृदय में है और श्रोत्रों ने नाना प्रकार के शब्दों को ग्रहण किया अपने में आलिंगन किया है उसकी भी प्रतिष्ठा, मुनिवरों! देखो, मानव के हृदय में समाहित हो जाती है। हृदय से हृदय का मिलान होता है, त्वचा में प्रीति है वह भी हृदय में ओत प्रोत हो जाती है। प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, उसका जो स्वरूप है वह मानव की इन्द्रियों में अमृताम हृदानी, वह हृदय में समाहित हो जाती है, और जब हृदय में समाहित हो जाती है तो हृदय अमृताम्, जो यौगिक होते हैं वह अपनी इन्द्रियों पर सयम करते हुए उनका साकल्य बनाते हैं। जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके नाना प्रकार के साकल्य को एकत्रित करके उसको संस्कृत कर देता है और

उसमें आवृत्तियों में रत्त हो जाता है। इसी प्रकार जो योगाभ्यास करने वाले हैं, साधक जो प्राणी हैं वे हृदय में ही मुनिवरो! सर्वत्र जगत को दृष्टिपात करते हैं और वे उसका साकल्य बना करके उनकी तरंगों को जानने लगते हैं और तरंगों को जानकर के जितना भी संसार का ज्ञान और विज्ञान है या परमात्मा का जितना विज्ञान है उसको निहारने लगते हैं और इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना करके वह मौन हो जाते हैं, और मौन हो करके वह हृदय रूपी यज्ञशाला में जो अग्नि प्रदीप्त हो गई, जो ज्ञान रूपी अग्नि का अवधान हो गया है उसमें उस साकल्य की वह आहुति प्रदान कर देता है और वह साकल्य को जब प्रदान करता है तो वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।

ऋषि ने जब यह उत्तर दिया कि वह ब्रह्मवेत्ता बन जाता है, तो महर्षि विश्वामित्र ने कहा हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ यह ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? जब यह वाक्य उन्होंने कहा तो ऋषि ने कहा कि हे भगवन्! ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता है जो ब्रह्म को यह निश्चय कर लेता है कि ब्रह्म है परन्तु जो है का प्रसंग है वह उसकी अन्तरात्मा में जो समाहित हो जाता है और वह उसी में रत्त हो जाता है उसको ब्रह्मवेत्ता कहते हैं। पुनः विश्वामित्र ने वशिष्ठ से यह प्रश्न किया कि महाराज! ब्रह्मवेत्ता कौन कहलाता है? उन्होंने कहा ब्रह्मवेत्ता वह है जो परमपिता परमात्मा को एक एक कण में स्वीकार करता है मानो देखो, उस कण कण को एकत्रित करके उसको साकल्य बना करके जो ब्रह्म अग्नि जागरूक हो रही है, जो ब्रह्म का बखान कर रही है वह जब उसमें प्रविष्ट हो जाती है वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।

आत्मवेत्ता

महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि प्रभु! आपने मेरे प्रश्नों का उत्तर तो दे दिया, परन्तु मुझे आत्म शान्ति प्राप्त नहीं हुई। मेरे हृदय में पुनः यह प्रश्न रह गया है कि आत्मवेत्ता कौन होता है? उन्होंने कहा कि तुम आत्मवेत्ता भी जानना चाहते हो या ब्रह्मवेत्ता? उन्होंने कहा प्रभु! मैं आत्मवेत्ता भी जानना चाहता हूँ। उन्होंने कहा आत्मवेत्ता वह कहलाता है जो प्रत्येक पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय को एकत्रित करता हुआ और उसमें यह स्वीकार

कर ले कि वह ज्ञानयुक्त है, और वह मुनिवरो, आत्म ब्रह्मणाम् व्रते आत्मा को रथी स्वीकार करता हुआ और मन को सारथी स्वीकार करता हुआ, जो गतिवान् होता है, आत्मा के ऊपर आश्रय त्याग देता है, और वह, ब्रह्मनिष्ठों ब्रह्मणा व्रते आत्मवेत्ता कहलाता है।

महर्षि विश्वामित्र ने कहा हे प्रभु! यह तो मुझे स्वीकार हो गया है, परन्तु मेरा यह पुनः प्रश्न है कि आत्मवेत्ता कौन होता है? उन्होंने कहा हे ऋषिवर! आत्मवेत्ता वह होता है, जो इस संसार को अपने में समेट करके और यह विचार लेता है, यह अध्ययन कर लेता है, कि प्रत्येक प्राणी मात्र जितना भी है, यह जो परमात्मा का रचाया हुआ जगत् है, यह अपने अपने कर्मफल और मानो, किए हुए कर्त्तव्यों के ऊपर अपने जीवन की प्रतिभा को ओत प्रोत करा देता है। उसी में, उसी आँगन में यह गमन कर रहा है और इस विचार को इतना गम्भीर मुद्रा में ले जाएं, कि आत्म तत्त्व तक गमन कर जाएं, वह आत्मवेत्ता कहलाता है।

मेरे प्यारे! महर्षि विश्वामित्र ने कहा हे प्रभु! यह मुझे स्वीकार है, परन्तु मैं यह और जानना चाहता हूँ कि आत्मवेत्ता कौन कहलाता है? महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, कि हे ऋषिवर! हे विश्वामित्र! ये आत्मवेत्ता वह कहलाता है जो नम्रता की आभा में परणित हो जाता है, जो अपने में यह स्वीकार कर लेता है कि परमात्मा निरभिमानी है मुझे भी निरभिमानी बनना है, और परमात्मा अकाय है, मुझे भी काया के शरीर के ऊपर अभिमान नहीं करना चाहिए। परमात्मा द्रव्यपति है, वह द्रव्यपति होता हुआ भी निरभिमानी है, स्वाभित्व है तो इसीलिए जब वह अपने को परमात्मा की छत्र छाया में ले जाता है। और यह स्वीकार कर लेता है कि मैं आत्मवेत्ता बनूं। यह शरीर आत्मा के कारण ही चैतन्य बना रहता है, क्रियाशील रहता है, क्रियावान रहता है तो वह आत्मवेत्ता कहलाता है।

महर्षि विश्वामित्र ने कहा हे प्रभु! आपको धन्य है। उन्होंने कहा कि परमात्मा निरभिमानी कैसे है? उन्होंने कहा परमात्मा रचयिता है, निर्माण करने वाला है, परन्तु उसका कोई अप्रत्न नहीं है, वह निरभिमानी है वह नम हैं, तो इसलिए उसकी नम्रता के ऊपर विचार

करना चाहिए। महर्षि विश्वामित्र ने यह वाक् स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! आत्मवेत्ता बनने के लिए मैंने यह प्रयास किया, मैं जानना चाहता हूँ, कि ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? उन्होंने कहा ब्रह्मवेत्ता वह कहलाता है, जो अपने अंतःकरण में नाना प्रकार जो संस्कार विद्यमान होते हैं जो उन संस्कारों को जान लेता है, संस्कृत कर लेता है वह केवल संस्कारों से विहीन जो हो गया है। जिसका अंतःकरण वह परमपित परमात्मा मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करता हुआ, परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जो ब्रह्म को प्राप्त होता है वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।

इन्द्र उपाधि

मेरे पुत्रों! ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया, अपनी आत्म विवेचना का वर्णन करते हुए, उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! मैं यह वाक् और जानना चाहता हूँ भगवन! कि ब्रह्मण राम ने भी यह आपसे प्रश्न किया था और मैं भी कर रहा हूँ। इतने में क्रीड़ा करता हुआ, एक कीड़ा आ गया। उन्होंने कहा प्रभु! यह प्रश्न आपसे राम ने भी किसी काल में किया था, जबकि वह विद्यालय में अध्ययन करते थे, और मैं भी यह कर रहा हूँ भगवन्! जब आप कर्मों की गति और ब्रह्मवेत्ता का वर्णन करते हैं प्रभु! यह जो कीड़ा कर रहा है, यह क्या है? यह कीड़ा ही बना रहेगा? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने ध्यानावस्थित हो गएं और आत्मा में लीन हो करके, ब्रह्म की आभा में परणित हो करके वे जब जागरूकता में आए, उन्होंने कहा हे विश्वामित्र! ये जो क्रीड़ा कर रहा है इसका मानो देखो, क्रीड़ा कर रहा है ये तीन समय इन्द्र बन लिया है, और इन्द्र होने के पश्चात् भी यह कीड़ा बना हुआ है। कर्म की गति बड़ी विचित्र होती है। परमात्मा का राष्ट्र एक अनुपम है। इन्द्र कौन होता है? हमारे यहाँ इन्द्र नाम की भिन्न भिन्न उपाधियों में वह अलंकृत रहा है। विचारने वाला प्रसंग है कि वह अमृतम् ब्रह्मे, इन्द्र वह कहलाता है जो 101 अश्वमेध याग करता है। हमारे यहां अश्वमेध राजा करता हैं। अश्व कहते हैं राजा को, और मेध कहते हैं प्रजा को। जो प्रजा और राजा मिल करके जिस याग को करते हैं, वह याग अश्वमेध कहलाता है। और जो इस प्रकार अश्वमेध याग वह राजा

करता है जिसका संसार में कोई भी शत्रु नहीं होता, और शत्रु जब होता है तो उसको वह विजय करता है और विजय करता हुआ, पुनः जब याग करता है, याग में जब वह परणित हो जाता है, तो इस प्रकार के 101 अश्वमेध याग करने वाले को इन्द्र कहते हैं। वह इन्द्र उपाधि से अलंकृत होता है। ऋषि कहता है कि हे ऋषिवर! यह जो कीड़ा है, यह मानो अपने जीवन, अपने सृष्टिकाल में 101 अमृतम् यागम् करने वाला, तीन समय इन्द्र की उपाधि से अलंकृत हो चुका है, और उसके पश्चात् भी, यह देखो, कर्म इतना विशाल है, इतना कर्म व्रती कहलाता है कि पुनः यह कीड़ा का कीड़ा बना हुआ है। महर्षि विश्वामित्र आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने कहा हे वशिष्ठ! आपने कैसे जाना कि यह तीन समय इन्द्र बन लिया? उन्होंने कहा मैंने इसके अंतःकरण में जो संस्कार निहित है उन संस्कारों की प्रतिभा और उसमें निहित संस्कारों के आधार पर इसका अध्ययन किया है।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? हम आध्यात्मिकवेत्ता बनें। परन्तु आध्यात्मिकवाद है क्या? इसके ऊपर विचारना है कि आध्यात्मिकवाद वह कहलाता है, जहाँ अपने क्रियाकलापों से, कर्मफल से, वह अपनी आत्मचेतना में परणित हो जाएं, आत्मवेत्ता बनने के लिए तत्पर हो जाएं तो वह आत्मवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ कहलाता है। मुनिवरों! देखो, मेरे प्यारे! आत्मवेत्ता बनने के लिए प्रत्येक मानव की आकांक्षा लगी रहती है। तो महर्षि विश्वामित्र ने यह प्रश्न किया कि महाराज! हम यह और जानना चाहते मैं कि प्रत्येक मानव के हृदय में ऐसी आशंका और आवृत्तियों में विचार क्यों बनते रहते हैं? कि मैं आत्मवेत्ता बन जाऊंगा, या मैं आत्मा के ऊपर अपने में अनुशासित हो जाऊं? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज बोले कि हे ऋषिवर! यह इसलिए रहती है, मानो क्योंकि वह संसार के अवयवों में जाना नहीं चाहता। उसका आत्मा प्रेरणा देता रहता है, और वह प्रेरणा का स्रोत बन करके, परमात्मा को प्राप्त होना चाहता है। इस प्रकार के उपदेश जानने वाला ऋषिवर, बेटा! अपने में महानता के ऊपर गमन करने लगा, उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! जब ऋषि ने उन्हें इस प्रकार आत्मा की चर्चाएं की और उन्होंने पुनः ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए प्रश्न किया कि महाराज! ब्रह्मवेत्ता कौन होता है? उन्होंने कहा

कि ब्रह्मवेत्ता वह होता है, जो ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है। ब्रह्मवर्चोसि कौन होता है? ब्रह्मवर्चोसि वह कहलाता है, जो ब्रह्म का चिंतन करता हुआ, मनन करता हुआ अपने को प्रभु में समाहित कर देता है, और प्रभु को अपने में समाहित कर लेता है, वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।

मेरे प्यारे! साधना के, इन विचारों के संदर्भ में ऋषिवर अपना विचार करने लगा। मैं तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने को आया हूँ कि हमारे यहाँ नाना प्रकार के कर्म हैं, फलों के साथ में भी आत्मा का चिंतन है, आत्मा का मनन हैं और उन मानो देखो, कर्म फलों को समाप्त करना है, अंतःकरण को संस्कारों से विहीन करना है तभी हम मुनिवरों! मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण कर सकेंगे। हमारे यहाँ अश्वमेध याग करने वाला राजा है, और यह नाना प्रकार की उपाधियों से अलंकृत किया जाता है। इन्द्र हुआ, विष्णु हुआ, शिव हैं, ब्रह्मा हैं यह सब एक प्रकार की उपाधियां मानी गई हैं जिन उपाधियों के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विवेचना होती रहती है। आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय क्या, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते इस सागर से पार हो जाएं।

बेटा! देखो, प्रत्येक मानव आत्म शान्ति की आराधना करता रहता है, मनन करता रहता है, कहीं एक दूसरा द्रव्य में आत्म शान्ति पाना चाहता है, कहीं पति पत्नी अपने में आत्म शान्ति मिलन हो करके चाहते हैं। कहीं चन्द्रमा के विज्ञानवेत्ता आत्म शान्ति में प्रवेश होना चाहते हैं! कहीं सूर्य विज्ञान में लग जाते हैं, परन्तु विचार केवल आत्मा में शान्ति है। अरे, आत्म शान्ति जब होती है, जब अपनी अन्तरात्मा में इन्द्रियों का साकल्य बना करके, वे उसमें ओत प्रोत कर देते हैं, और वे अग्नि को अपना मुख स्वीकार करते इसी प्रकार हृदय में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है उस में साकल्य प्रदान करना है और आत्मवेत्ता बन करके, अध्वर्यु बन करके आध्यात्मिक रूप में प्रवेश करना है।

यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस

संसार सागर से पार हो जाएं। बेटा! आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानने वाले बने और उसकी महती को जान करके, इस सागर से पार हो जाएं, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों का संवाद बड़ा विचित्र रूप में परणित होता रहा है। इसी संदर्भ में उन दोनों के प्रश्न उत्तर की चर्चाएं कल भी प्रगट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा।

ओ३म् देवा आभ्यां रथं मानंत्वाहां। ओ३म् जनिता रथं आभ्यां गतं मात्रृषि वरुणास्यमा आपा रेवं आभाहांम्। ओ३म् यश श्याम वायु रथं आपा अग्नं रेवं आभ्यां दधही वायहाम। अच्छा भगवन! आज्ञा। नोएडा 14 5 1989

१८ 15 05 1989 पुष्प 57 महर्षि विश्वामित्र और महर्षि वशिष्ठ का संवाद

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जो सर्वज्ञ है और जो मानो देखो, अतिमानव है उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन प्रत्येक वेदमन्त्र बेटा! उसकी अनुपमता का वर्णन कर रहा है। वे परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है मानो वह सर्वत्र एक एक परमाणुवाद में गति प्रदान करने वाले हैं तो उस परमपिता परमात्मा की हम महिमा अथवा उसकी उपासना हम करते चले जाएं ओर अपने में यह धारयामि बनायें धारणा अब्रहे क्या हम उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं तो बेटा! उस परमपिता परमात्मा की जो महती है, अथवा उसकी जो अनन्तता है। वह अनन्तमयी मानी गई है, मानो वे परमपिता परमात्मा अमूल्य है, और वह पुरोहित कहलाते हैं, जो पराविद्या को प्रदान करने वाले हैं। उन्हें यह प्रायः भान होता रहता है, कि हम उस परमपिता परमात्मा को जानते हुए, अपने में महान उस देव की महिमा का सदैव अपने में गुणगान गाते रहे, और उसका चिन्तन और मनन करते रहें। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है मानो वह ऐसा अनुपम है, ऐसा अनन्तमयी है, सृष्टि के प्रारम्भ से ले

करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, परन्तु नाना ब्रह्मवेत्ता हुए हैं। कोई भी मानो ऐसा नही जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान मानो उसके ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। वह सीमा में आने वाले नही हैं, वह सीमा से रहित है, वह अनुपम है, तो इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा जो अनन्तमयी है। मानो जो अपने में इस विश्व को धारण कर रहा है, हम उस परमपिता परमात्मा की महती को जानते चले जाएं, और उसकी महानता के ऊपर सदैव मनन और चिन्तन होना चाहिए। क्योंकि मानव अपनी गम्भीर मुद्रा में परम्परागतों से ही, परणित होता रहा है। और अपने में यह विचारता रहा है कि मैं उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त करने वाला बनूं, और मैं अपने में आध्यात्मिकवेत्ता बनूं, क्योंकि प्रत्येक मानव जिस आकांक्षा में लगा हुआ है कि मेरे जीवन में सदैव एक आनन्द की अनुभूति होनी चाहिए, वह मानो देखो, आनन्द की अनुभूति चाहता है। एक मानव जो द्वितीय मानव जो विचारक है, वह यह कहता है कि परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह सृष्टि के प्रारम्भ से चला आ रहा है। परन्तु वह ज्ञान और विज्ञान इतना अनन्तमयी माना गया है। जिसके ऊपर हमें विचारना है, मेरे पुत्रों! देखो, प्रत्येक मानव कि एक ही अभिलाषा बनी रहती है कि मैं आत्मवेत्ता बनूं, और मेरे अन्तर्हृदय में जो आत्मा विद्यमान है, जिसके कारण मैं क्रियाशील बना हुआ हूँ, और मैं अपने में मानो देखो, गतिवान हूँ, और ज्ञान और विज्ञान मेरा एक आभूषण माना गया है। तो इसीलिए मैं परमपिता परमात्मा का जो आनन्दमयी जगत है, आनन्दमयी जो स्रोत है, उसे हम अपने में धारयामि बनाएं तो मुनिवरों! देखो, मानव के हृदय में जब यह आकांक्षा बनी रहती है, अमृतां मृत्युञ्जं ब्रह्मणे लोकां मानो वह ब्रह्मणे ब्रह्मे लोकां वाच सम्भव ब्रहे वह मानो देखो, अपने में ही उस प्रभु को जानने के लिए सदैव तत्पर रहा है।

चिन्तन का माध्यम

तो आओ मेरे प्यारे! देखो, आत्म चिन्तन करने वाले आत्मा का चिन्तन करते रहते हैं, आत्म का चिन्तन कैसे होता है? यह प्रत्येक मानव के हृदय में मेरे पुत्रियों और ममतव

के हृदयों में सदैव ऐसे विचार बना रहा है। कि क्या हम मानो देखो, चिन्तन कैसे करें चिन्तन का क्या माध्यम है? मेरे पुत्रों! देखो, एकान्त स्थली में विद्यमान है, और विद्यमान हो करके प्रभु का चिन्तन कर रहा हैं, और उसके समीप एक वेदमन्त्र आ रहा है, और वेदमन्त्र कहता है, आत्म ब्रह्मणो ब्रहा सम्भव ब्रहे व्रत्यं देवं ब्रह्मा आत्मा मेरे पुत्रों! देखो, इन वेद मन्त्रों में मानव लग जाता है और मनन करने लगता है और यह कहता है कि आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? और यह प्रकृति क्या है? मेरे प्यारे! देखो, इसी मनन और चिन्तन में वह संलग्न हो जाता है। और मेरे पुत्रों! आत्म स्वरूप को जानने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है, और उसके हृदय में यह आकांक्षा तो लगी हुई है कि मैं आत्मवेत्ता बन करके इस संसार सागर से मैं पार हो जाऊं। प्रत्येक मानव के हृदय में यह चिन्तन और मनन वृत्तियों में रत्त रहा है। बेटा! एक मानव चिन्तन कर रहा है, वह प्रभु का चिन्तन करते हुए अपने में धारणा कर रहा है। क्या ये चारों प्रकार की सृष्टि कहलाती है। मानो ये सृष्टि सबसे प्रथम स्थावर है, और स्थावर में वह पा ही दृष्टिपात करता है, और विचारता है कि इसमें मुझे कुछ प्राप्त हो रहा है अथवा नही। मानो ज्ञान उत्पन्न हो रहा है, अथवा नही। तो इस प्रकार देखो, बेटा! वह मनन करना प्रारम्भ कर देता है। ये आत्मा ज्ञान स्वतः रहता है, आत्मा मानो स्वतः ज्ञानी है, वह अज्ञानी नही, वह मानो देखो, आत्मा सदैव प्रकाशमान है, वह प्रकाशवाला भी नही, यह जो आत्मा है यह मानो एक शाश्वत है, मेरे पुत्रों! देखो, वह गतिवान है, किसी की सहायता को प्राप्त करता हुआ, तो मेरे प्यारे! देखो, उस अन्तरात्मा को जानना चाहिए, और इसी का नाम मनन कहलाया जाता है। जो यह गम्भीरता से चिन्तन करता है, यह कहता है, कि हे आत्मा! तू महान बन करके तू संसार की आभा को प्राप्त होते मेरे प्यारे! देखो, आत्म चिन्तन करने वाला आत्मा का चिन्तन कर रहा है। आत्मा को भोजन दे रहा है, क्योंकि आत्मा को भी भोज्य दिया जाता है। सभी मुनिवरों! देखो, यह ज्ञान और विज्ञान की ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ने लगता है।

तो आओ मेरे पुत्रों! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ, विशेष विचारों में न ले जाता हुआ, कि हमारा वेदमन्त्र, हमें क्या प्रेरणा दे रहा है हमें वेद का मन्त्र क्या कह

रहा है जिसके ऊपर हम अपने में अपनेपन का भान करते हुए और आत्म चिन्तन करते चले जाएं। क्या वे परमपिता परमात्मा मानो एक सजातीय कहलाता है। और उस परमपिता परमात्मा के जो गर्भ में जो भी क्रीड़ा रही है अथवा क्रियाकलाप हो रहा है, वह प्रायः सर्वत्र प्राणी मात्र के हृदयों में वही गतियां आ रही हैं। मेरे प्यारे! वह गतिवान है, ब्रह्मा हे आत्मा! तू मानो शाश्वत है हे आत्मा! तू मानो ज्ञान और विज्ञान से पिरोयी हुई है। हे आत्मा! तू मानो देखो, तू उस ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्म निष्ठ बनने वाले मानो अपने में प्रवणां ब्रहे अपने में धारयामि बनना चाहती है। मेरे प्यारे! देखो, आत्मवत् अपने में महान है, सम्भूति ब्रह्मणां ब्रहे लोकां महान वायु सम्भवा, मेरे पुत्रों! देखो, जैसे वायु जैसे वेग में गमन करता है, वायु अपने में मानो देखो, वह सत्ता को ले करके गमन करता है। तो उसी आभा में हमें प्रायः परणित हो जाना चाहिए जिससे बेटा! देखो, हमारे जीवन में एक धारयामि एक अनुपम धारणा बन जाएं जिससे हम आत्मवेत्ता बन जाएं और मुनिवरों! देखो, अपने में महान बन करके सागर से पार हो जाएं।

चिन्तन व मनन

तो आओ मेरे पुत्रों! देखो, वेद का ऋषि क्या कह रहा है, मैं तुम्हें वही ले जाना चाहता हूँ, जहाँ मानो आध्यात्मिक विज्ञान को कैसे शाश्वत बनाता है, मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है मैं बेटा! इससे पूर्व काल में तुम्हें महर्षि विश्वामित्र और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चा हम कर रहे थे, मेरे पुत्रों! देखो, जो भौतिक विज्ञान मानो देखो, विकृतियों में रत्त हो जाता है। उसे प्रायः मानव जानना चाहता है तो महर्षि विश्वामित्र मुनि महाराज बेटा! अपने आसन पर विद्यमान अपने में ये मनन कर रहे थे कि आत्मा क्या है जिसके आश्रित मानो देखो, मैं विद्यमान हूँ। मेरे प्यारे! वे परमपिता परमात्मा क्या है? जिस परमपिता परमात्मा के गर्भ में यह ब्रह्माण्ड गतिवान हो रहा है। मेरे पुत्रों! देखो, उसी परमपिता परमात्मा की महती और अनुपमता के क्षेत्र में प्रायः हमें

रमण करना चाहिए, ऐसा मुनिवरों! देखो, वेद का आशय यह उद्गीत गा रहा है।

महर्षि वशिष्ठ और महर्षि विश्वमित्र का सम्वाद

आओ मेरे पुत्रों! मैं दूरी न चला जाऊं, महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों की वार्त्ता प्रारम्भ होने लगी, उन्होंने कहा हे प्रभु! आप आत्म स्वरूप को अनेकता में स्वीकार करते हो, या एकोकी मे स्वीकार करते हो? मेरे प्यारे! देखो, जब यह महर्षि विश्वामित्र ने यह प्रश्न किया, तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह कहा कि एक स्वरूप में तो आत्मा अनन्तमयी मानी गई है, परन्तु एक दार्शनिक यह कहता है, क्या जब आत्म चेतना में मानव रत्त हो जाता है, तो यह काल समाप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, जब महर्षि विश्वामित्र ओर महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का यह संवाद प्रारम्भ होने लगा।

इन्द्र क्या है?

हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ, कि यह इन्द्र क्या है? तो मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि यह जो इन्द्र है, एक उपाधि है, मानो इन्द्र उसे कहते हैं, जो एक सौ एक अश्वमेध याग कर लेता है। अश्वमेध याग वह करता है, तो इस ब्रह्माण्ड में मानो पृथ्वी मण्डल पर याग कर रहा है। वह पृथ्वी मण्डल के प्राणियों को प्रसन्न युक्त बना दे, वह मानो देखो, वह अश्वमेध याग करने का उसे अधिकार होता है। मेरे प्यारे! देखो, जब वह याग करता है, तो एक सौ एक अश्वमेध याग करने के पश्चात उसे इन्द्र की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। वह कौन करता है? उसे मानो उस आभा में उसे कौन परणित कर रहा है? क्योंकि इन्द्र तो उनके आश्रित है, और देखो, वह भी उनके आश्रित मानी गई है, तो मानं ब्रह्मणे व्रतां देवं ब्रह्मा वायु व्रहे अस्वताम् दिव्यं ब्रहे ब्रह्मा मेरे पुत्रों! देखो, महर्षि विश्वामित्र ने जब यह कहा तो वशिष्ठ मुनि महाराज ने उसका उत्तर देना प्रारम्भ किया और उन्होंने कहा कि यह जो इन्द्र है, यह इन्द्र मानो देखो, एक सौ एक याग करने के पश्चात उपाधि को प्राप्त हो जाता है। वह इन्द्र बन जाता है। परन्तु इसी प्रकार ऋषि ने जब यह कहा तो महर्षि विश्वामित्र ने कहा प्रभु! यह इन्द्र कौन है? यह इन्द्र कैसे निर्वाचित होता है? उन्होंने कहा हे ऋषिवर! यह जो इन्द्र है,

यह मानो देखो, यह आध्यात्मिकवाद से पर अलंकृत किया जाता है। इसमें आध्यात्मिकवाद के पुठ लगती है, और अग्न्याध्यान करने वाला देखो, अग्नि के मुखारबिन्दु में मानो वह साकल्य और देवताओं का भोज्य प्रदान करता रहता है।

तो मेरे पुत्रों! देखो, जब यह ऋषि ने वर्णनं ब्रहे अपने में धारयामि बनाया तो देखो, उसकी आभा एक विचित्र बन गई, और उन्होंने कहा यह जो इन्द्र है, ऋषिवर! यह इन्द्र वह कहलाता है, जो मानो देखो, आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों को अपनें में धारण करता है। महर्षि विश्वामित्र बोले कि प्रभु! यह आध्ययात्मिकवाद क्या है, देखो, आध्यात्मिकवाद को मुझे वर्णन कराईए हे प्रभु! देखो, आध्यात्मिकवाद उसे कहा जाता है, जो मानो देखो, आत्मचिन्तन में सदैव संलग्न रहता है। इसी प्रकार यह जो इन्द्र है, इन्द्र उसे कहा जाता है, जो इन्द्रो भव प्रमाणं ब्रहे मानो देखो, जो ब्रह्म का चिन्तन करता है। क्योंकि वह तपश्चर में रत्त होता है, वेदमन्त्रों का जब उद्गीत गाता है, अश्वमेध याग करने वाला, जो वेदमन्त्रों में उद्गीत है, जो वेदमन्त्रों में रहस्यतम है, उसे वह बखान कर देता है। मेरे प्यारे! वह इन्द्र कहलाता है। जो अन्तरात्मा को बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों को अपने में स्पष्टीकरण करता रहता है। मेरे प्यारे! देखो, महाराजा विश्वामित्र ने कहा, प्रभु! यह भी मेरे विचार में आ गया परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि प्रभु! यह इन्द्र कौन है? किसे इन्द्र कहते है? उन्होंने कहा इन्द्र उसे कहते हैं जो परमपिता परमात्मा जो इन्द्र है, जो सर्वत्र संसार का, स्वामीतव करने वाला है। जो इस संसार का मानो देखो, ब्रह्मण्डं ब्रव्हे नेतृत्व करने वाला है, वह इन्द्र कहलाता है। मानो देखो, इन्द्र भवोस्तं ब्रह्मा वह इन्द्र देवताओं का धिराज कहलाता है, उन्होंने कहा प्रभु! ये भी मेरे विचार में आया, परन्तु इन्द्र शमम् ब्रह्मे यह इन्द्र कौन है? उन्होंने कहा कि महर्षि विश्वामित्र अमृतां ब्रह्मणे देखो, क्या हे ऋषिवर! देखो, इन्द्र वह कहलाता है। जो मानो देखो, देवताओं का क्या, धिराजों का भी धिराज है। जो आध्यात्मिकवाद को और भौतिक विज्ञान दोनों का अंगो उपांगों से जानने वाला है। वह इन्द्र कहलाता है, वह इन्द्र को अपृतं वह अलंकृत किया जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने यह वाक् स्वीकार कर लिया। परन्तु कुछ समय मौन रह करके, बोले कि हे ऋषिवर! यह

इन्द्र कौन है? उन्होंने कहा इन्द्र वह है जो ब्रह्म ज्ञानियों का भी मानो देखो, ब्रह्म ज्ञान प्रदान करने वाला है। जो अश्विनी कुमारों जैसे महापुरूषों को जो अग्नं ब्रह्मा जो देखो, उनको वह ब्रह्म विद्या प्रदान करने वाला हो, जिसके अन्तरात्मा में, मानो किसी के प्रति मानो देखो, राग होता है, न द्वेष होता है, और न विडम्बना होती है, मानो देखो, एक ही शास्वत बन करके रहता है। मेरे प्यारे! देखो, उसे इन्द्र कहा जाता है। जो ब्रह्म ज्ञान को प्रदान करता है, महाराजा विश्वामित्र ने कहा प्रभु! यह ब्रह्म ज्ञान क्या है? उन्होंने कहा ब्रह्म ज्ञान आत्मा के जो अव्यय वृत्ति रूप है, मानो देखो, उसको ब्रह्म ज्ञान कहते हैं। ब्रह्म ज्ञान कहते हैं जो निर्णय देने वाला हो।

मुझे स्मरण आता रहता है, मानो देखो, एक समय सतोयुग के काल में सम्प्रदायों का एक सम्मेलन हुआ, महापुरूषों का एक सम्मेलन हुआ, और विचार विनिमय करते मानो देखो, उस समय राजा नहुष मानो देखो, उस याग के धिपति को निर्वाचित किया गया ब्रह्मणे व्रताप्रहे मेरे प्यारे! देखो, जब वह निर्वाचित हुए, तो उस समय देखो, राजा ने कहा क्या शास्त्रार्थ होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, निर्णय करने वाला राजा है, और ऋषि मुनि अपने में मानो देखो, विचार विनिमय कर रहे हैं। और उसी विचार विनिमय करते देखो, यह निर्णय लिया जा रहा है, कि ब्रह्म क्या है? मानो देखो, ब्रह्म वह है, जो संसार के एक एक कण कण में विद्यमान है, जैसे देखो, परमपिता परमात्मा वह है जो जैसे हमारे यहाँ उन्होंने एक उदाहरण देते हुए कहा मानो देखो, एक क्या हम ब्रह्मे श्वेत्ता मुनि महाराज ने एक समय बेटा! एक परमाणु के ऊपर अध्ययन करने लगे। जब परमाणुवाद के ऊपर अध्ययन करते करते, उस परमाणु को विभक्त किया गया। तो उन्हें बेटा! देखो, समाधि में प्राण और मन को एकाग्र रूप होते ही मानो देखो, उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगा, मानो देखो, यह एक एक कण कण में ब्रह्माण्ड सृष्टि का चित्रण अपने में धारण करने वाला है। मानो वही तो ब्रह्मवेत्ता कहलाता है, वह राजा होता है। राजा देखो, प्रजा में जब इस प्रकार का निणार्य देता है, न तो सम्प्रदाय रहती है, न मानो देखो, वहाँ एक रस की एक रस हो करके मुनिवरों! देखो,

अपने में ब्रह्मवेत्ता बन करके अपने में राष्ट्र को ऊँचा बनाता है।

मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब मुनिवरों! देखो, भगवान राम का जीवन भी मुझे स्मरण आता है, जब बेटा! देखो, वह प्रातःकालीन याग में परणित होते, तो उनकी उपदेश मञ्जरी में यही कहा जाता था, यही वह उद्गीत गाते थे, कि हमारा राष्ट्र तो मानो देखो, विष्णु राष्ट्र होना चाहिए जिससे देखो, हमारे राष्ट्र में पालना की प्रवृत्ति महान होनी चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक गृह में सुगन्ध हो, देखो, विचारों की सुगन्धि और मुनिवरों! देखो, वेदमन्त्रों की ध्वनि होनी चाहिए। जिससे मुनिवरों! देखो, राष्ट्र ऊँचा बने यह भगवान राम के देखो, बड़े भव्य विचार और उनकी क्रियाकलापता बड़ी विचित्र मानी गई। तो मेरे प्यारे! मैं साहित्य में तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें यह उच्चारण करना चाहता हूँ, कि राजा देखो, ब्रह्मवेत्ता हो और इन्द्र बन करके जब वह शासन करता है, तो राष्ट्र और समाज ऊँचा बनता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने पुनः यह प्रश्न किया कि महाराज! इन्द्र क्या है? तो उन्होंने कहा यह जो इन्द्र है, यह वह है जो मानो देखो, इन्द्रियों से शासन करने वाला हो, जो इन्द्रियों पर शासन करता है, इन्द्रियों के विषयों को जानता है। जो मैंने तुम्हें पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था बेटा! प्रत्येक इन्द्रियों का जो स्वरूप है, प्रत्येक इन्द्रियों का जो वास्तविक स्वरूप माना गया है। उसका एक साकल्य बनाता है। जैसे यज्ञमान नाना प्रकार की वनस्पतियों को एकत्रित करके मानो वह साकल्य मानो वह चरु बनाता है। इसी प्रकार देखो, जो आध्यात्मिकवेत्ता होते हैं, जो इन्द्र है, वह इन्द्रियों के विषयों को एकत्रित करता है, और एकत्रित करके जो मानो देखो, जो ज्ञान रूपी अग्नि मानो प्रदीप्त हो रही है। उस ज्ञान रूपी अग्नि में प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, उसका साकल्य बना करके चरु बना करके उसमें बेटा! स्वाहा कर देता है। वह देखो, अंगों और उपांगों से योग को जानने वाले को मुनिवरों! देखो, इन्द्र कहा जाता है। मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् श्रवण करते हुए अपने में देखो, महर्षि बड़े प्रश्न हुए, और उन्होंने कहा प्रभु अमृतं राजं प्रव्हा लोकां उन्होंने कहा कि जो इन्द्र बनता है, वह नम्र होता है, और वह नम्रता से अपने राष्ट्र को अपने जीवन को उन्नत बनाता रहता है, वह

शरीर रूपी राष्ट्र को जानता है, जब वह बाह्य राष्ट्र को देखो, उन्नत बनाता है। यदि उसका आन्तरिक जगत आन्तरिक राष्ट्र ऊर्ध्वा में नही है, तो वह मानो देखो, वह बाह्य जगत को भी ऊर्ध्वा में नही ले जा सकेगा।

विष्णु क्या है?

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब यह वर्णन किया, तो महर्षि विश्वामित्र मेरे प्यारे! देखो, ऋषि से बोले कि हे प्रभु! मैं यह और जानना चाहता हूँ, भगवन! यह विष्णु क्या है? उन्होंने कहा तुम विष्णु को क्यों जानना चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! मेरी अभिलाषा है, क्योंकि प्रत्येक मानव इस आकांक्षा में लगा रहता है, कि जितना भी प्रभु का यह ब्रह्माण्ड है, उसे मैं जानने वाला बनूं। मानो उसको मैं अपने में धारण करने वाला बनूं। ऐसी मेरी भी एक आकांक्षा बनी हुई है, तो उन्होंने कहा कि यह जो विष्णु है, यह एक शब्दों में कई प्रकार के इसके स्वरूप माने गएं हैं। जैसे विष्णु नाम पालन करने वाले को कहते हैं, और यहाँ विष्णु के बहुत से पर्यायवाची शब्द बनते हैं। जो भी पालना करता है, उसी का नाम विष्णु है, जैसे हमारे यहाँ विष्णु नाम परमपिता परमात्मा को कहते हैं। जो परमपिता परमात्मा जो पालन कर रहा है। वह नाना प्रकार के रूपों में मानो देखो, मानव को उन्नत बना रहा है, मेरे प्यारे! देखो, अणु और परमाणु के गर्भ में भी पालना का एक स्रोत बना हुआ है। तो जो पालना करने वाला है, उसका नाम विष्णु है, हे विष्णु! तू कल्याण करने वाला है। हे विष्णु! तू पालना में रत्त करने वाला है। मेरे प्यारे! देखो, वह विष्णु नाम जहाँ परमपिता परमात्मा का है। वहाँ विष्णु नाम मेरे पुत्रों! देखो, आत्मा का नाम भी विष्णु है। देखो, जब तक मानव के शरीर में वास कर रहा है, इसकी पालना का नृत्त हो रहा है, परन्तु जब आत्मा इससे निकस जाता है, तो शून्यता को प्राप्त हो जाता है। तो पालना का प्रसंग भी मानो इसी के साथ रत्त हो जाता है। तो विचार आता रहता है, तो मुनिवरों! देखो, यहाँ परमपिता परमात्मा का नाम विष्णु जो कल्याणकारी है, आनन्दवत् के देने वाला है, मेरे प्यारे! देखो, वह आत्म ब्रह्मे आत्मा का नाम विष्णु है, और विष्णु नाम सूर्य का है, और विष्णु नाम बेटा! देखो,

राजा को भी कहा गया है। तो यहाँ भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्दों में मुनिवरों! देखो, विष्णु की विवेचना होती रहती है। और विष्णु नाम मुनिवरों! देखो, राजा का नाम भी विष्णु है। मेरे पुत्रों! देखो, जो अमृतां ब्रह्मा जो मुनिवरों! देखो, सूर्य मण्डल में जो शासन करने वाला है। उस राजा का नाम भी विष्णु कहा जाता है, परन्तु विष्णु नाम मेरे पुत्रों! देखो, स्वरूप में यह कि जो वह पालन करता है, उसी का नाम विष्णु कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, विष्णु ब्रह्मणे व्रते देवाः राजा वह पालना कर रहा है। माता पालना कर रही है। इसीलिए उसका नाम भी विष्णु कहा जाता है। परन्तु देखो, यहाँ जब वह विष्णु अपने में पालना में सफलता को प्राप्त हो जाता है, तो उसको विष्णु के नामों से अलंकृत किया जाता है। वह उपाधि को प्राप्त हो जाता है मेरे प्यारे! देखो, महर्षि विश्वामित्र बोले कि महाराज! यह विष्णु कौन है? उन्होंने कहा कि यह विष्णु चतुर्भुज वाला है। मानो देखो, चतुर्भुज कहलाते हैं उसके मुनिवरों! देखो, उसके एक भुज में उसके में पदम होता है, द्वितीय भुज में गदा होती है, तृतीय भुज में चक्र होता है, और चतुर्थ में शंख होता है। मानो देखो, जो प्रजा का स्वामीतव करने वाला देखो, राजा को भी त्याग दो, वह ऐसा मानो देखो, मानवतव हो जो चारों प्रकार की प्रवृत्ति को अपने में धारण करने वाला हो। मेरे प्यारे! देखो, वह पालना में क्या अमृताम् देखो, वह चरित्र में सुसज्जित होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, पदम नाम है गदा का, मानो देखो, जो अपनी इन्द्रियों पर संयम करने वाला ब्रह्मवाता प्रव्हे मेरे प्यारे! देखो, वह विष्णु कहलाता है मानो देखो, जो चक्र को ले करके गमन करने वाला, चक्र कहते हैं जिसमें बुद्धिमता होनी चाहिए वह योगेश्वर होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, चतुर्थ में शंख ध्वनि होती है, वेद गान गाने वाला हो, वेदों का उद्गीत गाने वाला हो, जैसे जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विर्सग पाठ, उदात्त और अनुदात्त में जो गान गाने वाला है, मेरे पुत्रों! वह चर्तुमुखी कहलाता है उसका नाम विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, विष्णु ब्रह्मणे मुनिवरों! मेरे प्यारे! देखो, पुनः क्या वेद के ऋषि ने प्रश्न किया कि महाराज! यह विष्णु कौन है? उन्होंने कहा कि विष्णु वह कहलाता है, जो मानो देखो, अपनी इन्द्रियों का पालन करता है, और इन्द्रियों के विषयों को जान करके, जो मोक्ष की

पगडराडी को ग्रहरा कर लेता है, उसका नाम विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, जहाँ, परमपिता परमात्मा का नाम वाची कहलाता है, वहाँ विष्णु नाम मानव का कहलाता है, जो बेटा! देखो, विष्णु बृद्धम जो अपनी इन्द्रियों पर नृत्त करने वाला, नृत्त करता रहता है।

मेरे पुत्रों! देखो, जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में, तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था मुनिवरों! देखो, जो अपने अक्षय क्षीर सागर में विश्राम करता हुआ, शेष नाग की शैय्या पर विश्राम करने वाला है शेष नाग की शैय्या पर विश्राम करता है, वही मुनिवरों! देखो, विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, वह शेष नाग क्या है? पांचों फनों वाला जो शेष नाग है। मेरे प्यारे! देखो, पांचों फनों वाला शेष नाग वह है जो मुनिवरों! देखो, यह अमृतां ब्रह्मणे कृतं मुनिवरों! देखो, जो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह ये पांचों विषय कहलाते हैं, जो इनके ऊपर संयम करने वाला है। मेरे प्यारे! इनको नीचे दबा कर लेता है, यह पांचों फनों वाला शेष नाग है, आत्मवत् बेटा! जब योग में प्रवेश कर जाता है। वह योगेश्वर बन करके, अपने में अपनेपन का भान करते हुए संसार सागर से पार होने के लिए सदैव तत्पर रहता है। उसका नाम विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और महर्षि विश्वामित्र ने कहा धन्य है, प्रभु! मेरा तो एक प्रसंग और रह गया है, क्या आप विष्णु मेरे हृदय में आकांक्षा बनी रहती है कि विष्णु कौन है? मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा कि विष्णु वह है जो रजोगुरा, तमोगुरा और सतोगुरा को जानने वाला है, मानो देखो, जो इनसे भी ऊर्ध्वा में उड़ाने उड़ता है, उसका नाम विष्णु कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, वह शून्यतव को प्राप्त होता हुआ, आत्मवेत्ता बन करके, आत्मा में लीन हो करके, और वह प्रभु की आभा में अमृतं देखो, जैसे अमृत बन करके बेटा! अमृततता को प्राप्त कर लेता है, वह मानो देखो, अमृता बन जाता है, उसका नाम मानो देखो, यहाँ विष्णु स्वरूप माना गया है। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि बड़े प्रसन्न हुए, महर्षि विश्वामित्र ने कहा प्रभु! आपको धन्य है परन्तु मैं एक ही वाक् और जानना चाहता हूँ कि विष्णु किसे कहा जाता है? उन्होंने कहा कि विष्णु उसे कहते हैं जो निरभिमानी कि जिसे अभिमान नही होता, जो मानो देखो, नम्र रहता है,

और नम्रता से ही मुनिवरों! देखो, प्रभु के जगत को दृष्टिपात करता है, और यह विचारता है कि मेरा जो प्यारा प्रभु है, वह देव है, वह नम्र है, वह एक रस रहने वाली चेतना है, एक रस रहने वाला अभ्योदय होता रहता है, जो इन विचारों को अपने में धारण करता है, वह विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे देखो, ऋषि अपने में शान्त हो गएं, उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! मेरे पुत्रों! देखो, ये प्रश्न उस समय किए थे, जब उन्होंने मुनिवरों! देखो, उन्हें राजर्षि कह करके सम्बोधित किया था। और जब वह मानो अभिमान को त्याग करके, निरभिमानी हो गएं थे, तो जब मानो देखो, उन्होंने यह कहा कि ब्रह्मणे व्रतां ब्रह्मे ऋषि व्रताः आईए ब्रह्मर्षि मुनिवरों! देखो, जब तक मानव में नम्रता नही आ जाती, मानव में निरभिमानता नही आ जाती है, जब तक मुनिवरों! देखो, वह अपने में ब्रह्मवेत्ता नही कहलाता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, इस वाक् को ले करके वह शान्त हो गएं और शान्त होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा प्रभु! आपको धन्य है। मेरे प्यारे! महर्षि विश्वामित्र बड़े तपस्वी थे, और वह अपने में महान कहलाते थे। मेरे प्यारे! देखो, उस समय वशिष्ठ ने कहा हे विश्वामित्र! तुम्हारा ज्ञान और तुम्हारा जो तप है, प्रश्न करने की जो तुम्हारा तप है, जिसके ऊपर मानवीयतव स्थिर रहता है। तो इसीलिए आज तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मैंने संक्षिप्त से दिया है।

विचार आता रहता है कि ऋषि ने जब इस प्रकार वाक् प्रगट किए तो वे मौन हो गएं और उन्होंने कहा प्रभु! मैं आगे प्रश्न तो किसी काल में ही करूंगा आज मैं विशेष प्रश्न नहीं कर पाऊंगा। विचार केवल यह कि हमारे यहाँ आत्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह बड़ा अनुपम है और परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ स ले करके नाना ब्रह्मवेत्ता होते चले आए हैं परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमा बद्ध कर सके। वो सीमा से रहित हैं, वे सीमा में आने वाले नहीं है, वे सीमा ब्रहे, उसका ज्ञान भी इतना अनंतमयी माना गया है। आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते हुए और उसे सर्वज्ञता में स्वीकार करते हुए इस सागर से पार हो जाएं। वह एक एक कण कण में व्याप्त हैं ऋषि मुनियों का एक समूह विद्यमान होता रहा है और उन्होंने एक एक परमाणु

का विभाजन किया। मुझे स्मरण आता रहता है शिकाम केतु उद्दालक मुनि के यहाँ जब यह निर्णय होने लगा, अमृताम ब्रह्मणों लोकाम् उनकी विज्ञानशाला में एक एक परमाणु का अग्नि की धारा के ऊपर अन्वेषण होता रहा तो अग्नि की धाराओं को जानते जानते महर्षि शिकाम केतु उद्दालक ने अपना निर्णय दिया कि अग्नि की धारा पर प्रत्येक शब्द विद्यमान हो जाता है और वही शब्द मुनिवरों! देखो, द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता है और वह द्यौ में प्रवेश होता हुआ, अपने पूर्वजों का दर्शक बन करके अपने विज्ञान की आभा में रत्त हो जाता है।

मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विज्ञान की विशेष चर्चाये प्रगट करने नहीं आया हूँ, आज मैं विज्ञान के ऊपर कोई अपना विचार नहीं देना चाहता हूँ क्योंकि विज्ञान अपने में अनंतमयी है और आध्यात्मिकवाद अपने में अनंतमयी है। जब आत्मा का चिंतन करने वाला आत्म चिंतन करता है कि मेरे शरीर में रहने वाले आत्मा! तू चैतन्य है। मानो तू ज्ञान युक्त है। मुनिवरों! देखो, वह अजर अमर वह अभय नित्यम् ब्रह्मे, तू सदैव रहने वाला है। हे आत्मा! तू मेरे शरीर में वास कर रहा है और तेरा जो लोक है, जहाँ तू वास कर रहा है वह पञ्च महाभूत कहलाता है और पञ्च महाभूतों में तू रत्त रहने वाला है ये पञ्च महाभूत मुनिवरों! देखो, आत्मा का गृह है आत्मा का स्थान है उसी में वह वास करता रहता है और इसलिए मुनिवरो, पञ्च महाभूतों में यह इन्द्रियां समाहित रहती हैं इसीलिए इन्द्रियों का साकल्य बना करके वह आत्मा में आत्मामयी प्रकाश को रत्त करने वाला है और उसी को जान करके इस सागर से पार हो जाओ।

आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या? हम परमपिता परमात्मा की महती और अनंतता को जानते हुए, उस परमपिता परमात्मा को यज्ञोमयी स्वरूप स्वीकार करते हुए और वह विष्णु रूप जो पालन करने वाला है उसको जानते हुए इस सागर से पार हो जाएं। आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ मैं कोई व्याख्याता भी नहीं हूँ केवल परिचय देने चला आता हूँ और वह परिचय क्या है कि हम आत्मतत्व को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। आत्मा का चिंतन अन्तर्मुखी हो करके उसका मनन किया जाता है उसके ब्रह्माण्ड को

जाना जाता है। नाना प्रकार के ब्रह्माण्ड हमारे समीप आते रहते हैं। आत्मा का ब्रह्माण्ड भिन्न है परमपिता परमात्मा का ब्रह्माण्ड भिन्न है। इस लोक का जो ब्रह्माण्ड है जो विज्ञान के वाङ्‌मय में ले जाता उसका ब्रह्माण्ड अनंत वृत्तियों में रत्त हो जाता है।
एक समय, मुझे स्मरण आता रहता है, महर्षि भारद्वाज से ब्रह्माचारी कवंधि ने यह कहा था कि हे भगवन्! यह आत्मा का ब्रह्माण्ड कितना विशाल है? तब महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा कि यह जो आत्मा का ब्रह्माण्ड है वह बड़ा अनंतमयी कहा कि यह जो आत्मा का ब्रह्माण्ड है वह बड़ा अनंतमयी माना गया है उसको जानते जानते मानव की इन्द्रियां थकित हो जाती हैं और उसका ब्रह्माण्ड अंत में परमात्मा के ब्रह्माण्ड से समन्वय हो जाता है। दोनों का मिलान हो जाता है, इन्द्रियों का विषय अवृत बन जाता है। जब यह निर्णय दिया तो भारद्वाज मुनि महाराज से ब्रह्मचारी कबंधि और सुकेता ने एक समय वेद का अध्ययन करते हुए एक वेदमन्त्र उन्होंने उच्चारण किया और यह कहा उद्गीताम् आत्मम् ब्रव्हे वृतम, कि प्रभु यह आत्मा कैसी है? उन्होंने कहा यह आत्मा हमारे शरीरों में वास करने वाला है और ज्ञान और विज्ञान से युक्त है वह उसी में रत्त होती शरीर को क्रियाशील बना रही हैं यह क्रिया में रत्त है। आत्मवेत्ता जो चिंतन करते हैं तो चिंतन करते करते अन्न को त्याग देते हैं। कहीं अन्न को ग्रहण करने लगते हैं तो जल के ऊपर अपने को निर्धारित कर देते हैं। जब जल का पाल करते करते पुनः अन्न का ग्रहण करने लगते हैं तो उन्हें मुनिवरों! देखो, चित्त के मण्डल की अनुभूति हो जाती है और चित्त मण्डल में जो जन्म जन्मांतरों के संस्कार विद्यमान होते हैं उन संस्कारों को वह जागरूक कर लेता है और संस्कारों को जागरूक करता एक समय, उसी का अध्ययन करते करते, मनन करते करते मुनिवरों! देखो, संस्कारों से इस चित्त के मण्डल को विहीन कर लेता है और करता हुआ आत्मवेत्ता परमात्मा की आभा को प्राप्त करता मोक्ष की पगडण्डी को प्राप्त कर लेता है।
यह है बेटा! आज का वाक! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ केवल परिचय मैंने दिया है इससे आगे का परिचय मैं किसी अन्य काल में प्रगट करूंगा आज का वाक् यह समाप्त होने जा रहा है। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि परमपिता

परमात्मा अनंतमयी है। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, मानव कोई ऐसा विज्ञानवेत्ता नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान सीमा से रहित है वह सीमा में आने वाला नहीं है। यह है बेटा! आज का वाक, अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चायें कलप्रगट कर सकूंगा। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा के अनंतमयी ब्रह्माण्ड में गमन करते हुए, अपने में अपनेपन का भान करते हुए, ज्ञान और विज्ञान में रत्त होते हुए इस सागर से पार होने का हम प्रयास करें। अब वेदों का पठन पाठन होगा इसके पश्चात् यह वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।